स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

MAAH-106 N

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास (319 ईस्वी से 550 ईस्वी तक)

(Political History of Ancient India (319 A.D. to 550 A.D.)

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

सन्देश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति श्रीमती आनंदीबेन पटेल जी की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षाा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावाा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। कोविड-19 संक्रमण काल ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जबकि कोविड-19 के संक्रमण काल में तथा कोविड-19 के बाद भी मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो रही है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश, परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ायाा गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकाायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, बेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी है। वर्तमान की विषम परिस्थितियों के दृष्टिगत विश्वविद्यालय ने मुख्यमंत्री तथा प्रधानमंत्री राहत कोष में अंशदान देने का भी प्रयास किया है।

भौतिक अधिसंरचना की दृष्टि से विश्वविद्यालय निजी स्रोतों से ही निरन्तर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा है। विश्वविद्यालय के शिक्षकों, परामर्शदाताओं, क्षेत्रीय समन्वयकगण, अध्ययन केन्द्र समन्वयकगण तथा कर्मचारियों की एकता व कर्मठता ही वह ऊर्जा पिण्ड है जिसके बल पर विश्वविद्यालय जीवंत व प्रकाशवान है। मुझे विश्वास है कि इसी ऊर्जा पिण्ड की सहायता से यह विश्वविद्यालय देश, प्रदेश तथा समाज को अपनी सेवाओं व योगदान प्रदान कर और अधिक समृद्ध, सुदृढ़ और गौरवशाली बनाने में अपनी भूमिका अदा कर सकेगा। मैं समस्त विश्वविद्यालय परिवार के प्रति आदर व आभार व्यक्त करती हूँ।

प्रो. सीमा सिंह
कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व

MAAH-106 (N)

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास

(319 ईस्वी से 550 ईस्वी तक)

Political History of Ancient India

(319 A.D. to 550 A.D.)

पाठ्यक्रम

इकाई	इकाई का शीर्षक	पृष्ठ संख्या
इकाई –1	गुप्त साम्राज्य के उदय से पूर्व उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति	3–8
इकाई –2	गुप्तों का उद्भव एवं मूल स्थान	9–21
इकाई –3	गुप्तों का प्रारंभिक इतिहास (चंद्रगुप्त–प्रथम तक)	22–34
इकाई –4	समुद्रगुप्त की उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य विस्तार, रामगुप्त की ऐतिहासिकता	35–47
इकाई –5	चंद्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य विस्तार	48–62
इकाई –6	कुमारगुप्त की उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य विस्तार	63–72
इकाई –7	स्कन्दगुप्त कीं उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य विस्तार	73–84
इकाई –8	हूणों का आक्रमण और उसका प्रभाव	85–94
इकाई –9	गुप्त–वाकाटक संबंध	95–106
इकाई –10	गुप्त साम्राज्य के विघटन के कारण	107–117
इकाई –11	भारत के परवर्ती गुप्त वंश–मौखरी वंश, वल्लभी के मैत्रक, मालवा का यशोधर्मन	118–127
इकाई –12	इलाहाबाद स्तंभ अभिलेख	128–139
इकाई –13	चंद्र का महरौली लौह स्तंभ अभिलेख	140–149
इकाई –14	स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख	150–160
इकाई –15	कुमारगुप्त प्रथम का मंदसौर अभिलेख एवं भानुगुप्त का एरण अभिलेख	161–169

MAAH-106 N

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास (319 ईस्वी से 550 ईस्वी तक)
(Political History of Ancient India (319 A.D. to 550 A.D.)

परामर्श समिति

प्रो.सीमा सिंह, कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

कर्नल विनय कुमार कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो.जे.एन.पाल पूर्व आचार्य प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो.हर्ष कुमार आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो.राजकुमार गुप्ता आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
प्रो.राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यलय, प्रयागराज

डॉ.सुनील कुमार सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास,समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई लेखक

डॉ.शिवाकान्त त्रिपाठी सह आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, म.प्र.
1—7

डॉ. सुबास चन्द पाल असि. प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास (संविदा)
समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि.,प्रयागराज
8—15

सम्पादक

प्रो.ओम प्रकाश श्रीवास्तव पूर्व आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम समन्वयक

डॉ.सुनील कुमार सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

(c) **उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज— 211021**

मुद्रित वर्ष— अक्टूबर, 2023

ISBN : 978-81-19530-03-8

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन—उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रकाशक— कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
मुद्रक— मेसर्स चन्द्रकला प्राइवेट लिमिटेड, प्रयागराज

इकाई–1 गुप्त साम्राज्य के उदय से पूर्व उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 उत्तर भारत में राजतंत्र

1.3 उत्तर भारत में गणतंत्र

1.4 उत्तर भारत में विदेशी शक्तियाँ

1.5 सारांश

1.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची एवं सहायक पाठ्य पुस्तक

1.0 प्रस्तावना

गुप्तों के उदय के पूर्व उत्तर भारत के इतिहास में विभाजन तथा संघर्ष दृष्टिगोचर होता है। सार्वभौम शक्ति के अभाव में अनेक छोटे–छोटे राज्यों का उदय हो चुका था तथा कुषाण आदि महत्वपूर्ण साम्राज्य का पतन हो चुका था। बी0ए0 स्मिथ महोदय ने इस काल को सर्वाधिक अंधकारपूर्ण काल कहा है। भारतीय राज्यों में गणतांत्रिक तथा राजतांत्रिक, दोनों प्रकार का शासन था। इसके अतिरिक्त कुछ विदेशी शक्तियों की उपस्थिति भी दृष्टिगोचर होती है।

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :–

- कुषणों के पतन के बाद तथा गुप्तों के उदय के पूर्व उत्तर भारत के राजनीतिक स्थिति के विषय में, जान सकेंगे।
- गणतांत्रिक एवं राजतांत्रिक राज्यों तथा उनके शासकों के विषय में जान पायेंगे।
- उत्तर भारत में विदेशी शक्तियों की स्थिति के विषय में समझ सकेंगे।
- उन परिस्थितियों से अवगत हो पायेंगे जिनके कारण चक्रवर्ती गुप्त शक्ति का उदय हुआ।

1.2 उत्तर भारत में राजतंत्र

गुप्त वंश के उत्थान के पूर्व उत्तर भारत में अनेक शक्तिशाली राजतंत्र अस्तित्व में थे। जिनका विवरण निम्नलिखित है –

गुप्त वंश के उदय के पूर्व तथा कुषाणों के पतन के पश्चात् के उत्तर प्रदेश तथा मध्य भारत के कुछ भाग नागवंशी शासकों के अधिकार में आये। पद्मावती, मथुरा तथा कान्तिपुर के शासन का विवरण पुराणों से प्राप्त होता है। पुराणों के अनुसार, मथुरा में सात तथा पद्मावतमी में नौ नागवंशी राजाओं ने शासन किया। पद्मावती नागवंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र था जिसकी पहचान विद्वत्जन मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले के समीपस्थ पद्मपवैया नामक स्थान से करते हैं। पद्मावती के नाग अपने कंधों पर शिवलिंग वहन करते थे इसलिए वे भारशिव कहलाते थे। भारशिव नरेशों द्वारा चलाये गये सिक्कों पर शैव धर्म के प्रतीक नन्दी तथा त्रिशूल के चित्र उत्कीर्ण मिलते हैं। अतः विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि वे शैव मतानुयायी थे। उपलब्ध सामग्री के आधार पर सर्वाधिक विवरण इस वंश के शासक भवनाग के प्राप्त होते हैं, जिसने सम्भवतः 305 से 340 तक शासन किया था। भवनाग की पुत्री का विवाह वाकाटक नरेश प्रवरसेन प्रथम के पुत्र के साथ हुआ था। वाकाटक अभिलेखों में भावनाग को भारशिवाना महाराज कहा गया है।

प्रयाग प्रशस्ति में पद्मावती के भारशिव शासक नागवंश शासक नागसेन क उल्लेख प्राप्त होता है जो समुद्रगुप्त के समय पद्मावती का शासक था तथा समुद्रगुप्त के समय मथुरा गणपति नाग के शासन में था। तीसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक पद्मावती तथा मथुरा के नागों का प्रसार मथुरा, धोलपुर, भागरा ग्वालियर, कानपुर, झांसी तथा बाँदा के भूभागों तक हो गया था।

तीसरी शताब्दी ई0 के प्रथमार्थ में मौखरियों की एक शाखा पद्मावती के पश्चिम बड़वा में शासन कर रही थी, जो सम्भवतः पश्चिमी क्षत्रपों अथवा नागों के सामंत रहे होंगे। महासेनापति बल 239 ई0 में इस वंश के शासक के रूप में गद्दी पर आसीन थे। बल के तीन पुत्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। तीनों पुत्रों ने एक–एक त्रिरात्र यज्ञ का अनुष्ठान किया था तथा पाषाण यूप का निर्माण करवाया था। पाषाण यूपों पर लेख भी उत्कीर्ण है। मघों का राज्य पद्मावती के दक्षिण–पूर्व में स्थित था। आरम्भ में इस राज्य का विस्तार तात्र बघेलखण्ड तक ही सीमित था, किन्तु कालान्तर में यह राज्य कौशाम्बी फिर फतेहपुर तक विस्तृत हुआ। इस वंश के प्रथम ज्ञात शासक वाशिष्ठीपुत्र भीमसेन हैं, जिसका पुत्र कौत्सीपुत्र पोठसिरि हुआ जिसने बंधोगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। कौशाम्बी से शक संवत्, 81(159 ई0) भद्रमघ का एक लेख प्राप्त हुआ है। भद्रमघ ने 155 के आसपास कौशाम्बी को कुषाणों से छिन लिया था। भद्रमघ ने सिक्के भी उत्तीर्ण करवाये थे। भद्रमघ के

पश्चात् शिवमध तथा उसके पश्चात् वश्रमण ने सत्ता की बागेडोर सम्भाली। वैश्रमण ने अपने साम्राज्य का विस्तार फतेहपुर तक किया। कौशाम्बी में मेघराजवंशों के शासकों ने तीसरी शताब्दी ई0 के मध्य तक शासन किया।

उस समय अहिच्छत्र तथा अयोध्या में भी राजतांत्रिक शासन व्यवस्था थी। बरेली जिले के रामनगर के रूप में अहिछत्र की पहचान होती है जहाँ से मित्र वंश के शासकों का नाम पता चलता है। कुछ सिक्कों के ऊपर अंकित 'अच्यु' की पहचान विद्वान् प्रयाग प्रशस्ति में उल्लिखित अच्युत नामक शासक से करते हैं। अयोध्या से प्राप्त सिक्कों में धनदेव, विशाख देव, मूल देव आदि राजाओं का नाम प्राप्त होता है। प्रयाग प्रशस्ति से उस समय के पाँच अन्यराजतंत्रों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है किन्तु उन राज्यों के शासकों के विषय में विस्तृत जानकारी नहीं मिल पाती। वे राज्य थे– समतट (पूर्वी बंगाल), उवाक (असम के नीगाँव में स्थित), कामरूप (असम), नेपाल तथा कर्तपुर (कुमायूँ में स्थितकतुरियाराज)। प्रयाग प्रशस्ति में आर्यावर्त के नौ शासकों का वर्णन मिलता है जिसका समुद्रगुप्त ने प्रसभोद्धरण की नीति के तहत उन्मूलन किया है। इन शासकों के राज्यों का नाम नहीं वर्णित है। ये शासक– रूद्रदेव, मत्तिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मा, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, नन्दी एवं बलवर्मा थे।

1.3 उत्तर भारत में गणतंत्र

गुप्तों के उदय से पूर्व उत्तर भारत में राजतंत्रों के साथ–साथ गणतांत्रिक राज्य भी अस्तित्व में थे। जिनका विवरण निम्नलिखित है –

मालवा गणराज्य के उदय के पूर्व मालवा गणराज्य के लोगों का निवास स्थान सम्भवतः मंदसौर था। जिस समय सिकन्दर का आक्रमण हुआ था, उस समय मालवा गणराज्य के लोग पंजाब में निवास करते थे। बाद में वे पूर्वी राजपूताना क्षेत्र में आकर बस गये। महर्षि पाणिनी ने 'आयुधजीवी संघ' के रूप में मालवागणराज्य का उल्लेख किया है। इस गणराज्य लगभग 6 हजार सिक्के प्राप्त हुए हैं। जिन पर मालवानामजय, 'मालवजय' तथा 'मालवगणस्य उत्कीर्ण' है, जिसकी प्राचीनता विद्वानों ने दूसरी से तीसरी शताब्दी के मध्य निर्धारित की गई है। सिक्कों पर उत्कीर्ण लेख द्वारा ही मालवा गणराज्य के गणतंत्र शासन पद्धति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। नहपान के नासिक लेख में उनके द्वारा मालवों को पराजित करने की सूचना मिलती है। मन्दसौर से प्राप्त लेखों में मालव संवत् का ही प्रयोग प्राप्त होता है। चतुर्थ शताब्दी के समाप्ति तक उनका राजनैतिक अस्तित्व बचा रहा। समुद्रगुप्त ने इन्हें पराजित कर अपने अधीन कर लिया था।

अर्जुनायन प्रजाति के लोगों का शासन क्षेत्र आगरा। जयपुर का क्षेत्र था।

प्रयाग प्रशस्ति से इनके समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकारने क उल्लेख मिलता है। प्रथम शताब्दी के सिक्कों पर उत्कीर्ण 'अर्जुनायनान्' अर्जुनायनानामजय' इनके गणराज्य होने की सूचना देता हैं जूनागढ़ अभिलेख से रूद्रदामन् एवं यौधेयों के मध्य संघर्ष का विवरण प्राप्त होता है। इस लेखानुसार वे अत्यंत शक्तिशाली थे। कुषाणों के पूर्व इनका निवास स्थान उत्तरी राजपूताना तथा दक्षिणी पूर्वी पंजाब का क्षेत्र था। बाद में कुषाणों ने 'उन्हें' पराजित कर अपने अधीन कर लिया था, किन्तु ये अधीनता कुषाण साम्राज्य के पतन तक ही रही। कुषाणों के साम्राज्य के पतन होने के पश्चात् यौधेयों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। यौधेयों के आरंभिक सिक्कों पर 'यौधेयन' तथा बाद के सिक्कों पर 'यौधेय गणस्यजय' उत्कीर्ण है। लुधियाना से 'यौधयानाम् जयजन्मधराणाम' उत्कीर्ण मिट्टी की मुहर प्राप्त हुई है। यौधेय के साम्राज्य में सतलज के दोनों ओर की भूमि अर्थात् जेहियावार तथा बहावलपुर सम्मिलित था। इनके उपास्य देवता कार्तिकेय थे। कुणिन्द नामक एक गणराज्य यमुना तथा सतलज के मध्य मध्य के भू–भाग में स्थित था। विष्णु पुराण में कुणिन्दों को 'कुलिन्दोपत्यकाः' अर्थात् पर्वतघाटी का निवासी कहा गया है। टालमी के भूगोल में 'कुलिन्डेने' शब्द की प्राप्ति होती है। कुणिनद के कुछ सिक्कों पर कुणिन्द का अंकन है तथा कुछ पर कुणिन्दगणस्य अंकित है। विद्वानों द्वारा इनका काल निर्धारण पहली शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व के मध्य निर्धारित किया गया है।

प्रथम शताब्दी ई0 एवं द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य झेलम तथा चिनाब के निचले भाग में शिवि लोगों का निवास था। बाद में उन्होंने चित्तौड़ के समीप माध्यमिकों से अपना राज्य स्थापित कर लिया था। यह माध्यमिका से उनके सिक्के भी प्राप्त होते हैं।

गंगा घाटी में लिच्छवियों ने पुनः अपनी शक्ति को केन्द्रित कर स्वयं को पुनर्स्थापित कर लिया था। विद्वानों ने इस समय लिच्छिवियों के दो राज्यों की ओर संकेत किया है। प्रथम उत्तरी बिहार जिसकी राजधानी वैशाली में थी तथा दूसरा प्रयाग प्रशस्ति में वर्णित नेपाल। गुप्त सम्राट चंद्रगुप्तप्रथम् ने लिच्छिवि राजकुमारी कुमारदेवी साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था।

आभीर गणराज्य को परीप्लस में अबिरिया कहा गया है तथा महाराष्ट्र से भी इनका एक लेख प्राप्त हुआ है। गुप्तों के उदय के समय में अस्तित्व में था। चिनाब तथा राबी नदियों के बीच प्रदेश में मद्रक नामक गणराज्य स्थित था, जिनकी राजधानी संभवतः स्यालकोट थी। कुछ विद्वानों के अनुसार, मध्य प्रदेश के वर्तमान नरसिंहपुर जिले में प्रार्जुन गणराज्य स्थित था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि से प्राप्त एक लेख में सनकानीक जाति के एक सामन्त का उल्लेख प्राप्त होता है।

सम्भवतः भिलसा के आस–पास का क्षेत्र इनके शासन क्षेत्र में था। भिलसा के उत्तर में स्थित काकपुर में काक जाति का शासन था तथा दामोह में 'खरपरिकप्रजाति' के लोग शासन करते थे।

इन गणराज्य के अतिरिक्त औदुम्बर, उत्तमभद्र, वृष्णि आदि कुछ अन्य छोटे गणराज्य भी अस्तित्व में थे।

1.4 उत्तर भारत में विदेशी शक्तियाँ

गुप्तों के उदय से पूर्व भारत में विदेशी शक्तियाँ भी विद्यमान थी। ससैनियन सम्राट शापुर प्रथम (242–272) ने कुषाणों को पराजित कर पेशावर से सिन्धु नदी घाटी तक के क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। 283 ई0 में इसी वंश के वहराम द्वितीय ने कुछ राज्यों को अपनी सीमा में मिला लिया। शापुर द्वितीय (309–379) के काल में भी यह अधिकार बना रहा। अल्तेकर महोदय के अनुसार पेशावर का कुषाण राजा किदार, शापुर के अधीन था, जिसने समुद्रगुप्त की सहायता से स्वयं को ससैनियत अधिपत्य से मुक्त कर दिया। प्रयाग लेख में किसी कुषाण शासक के लिये 'देवपुत्रशाहिषाहानुषाहि' प्रयोग हुआ है, सम्भवतः वह कुषाण शासक किदार ही है। मुद्राओं से समुद्रगुप्त के समय तक मध्य पंजाब में शीलद तथा गडहर जातियों के शसन, के विषय में भी पता चलता है। कुषाण की छोटी शाखा किदर कुषाण के सरदार किदार ने पंजाब में शाक–शीलद शासन का विनाश किया। यह समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार करता था। प्रयाग प्रशस्ति में मरूण्ड नामक एक विदेशी जाति के का भी उल्लेख मिलता है, जिसके टालमी महोदय ने साकेत क्षेत्र का नरेश बताया है।

1.5 सारांश

तृतीय शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्द्ध में तथा चतुर्थ शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भिक दिनों में गुप्तों के उदय से पूर्व उत्तर भारत में अराजकता एवं अव्यवस्था व्याप्त थी। सार्वभौम शासक की अनुपस्थिति में छोटे–छोटे युद्धों में जन–धन की हानि हुई तथा विदेशी शक्तियाँ भी प्रभावी हुई। विकेन्द्रीकरण, अराजकता अव्यवस्था एवं विभाजन की इस परिस्थिति ने गुप्तों के उदय का मार्ग प्रशस्त किया।

1.6 निबन्धात्मक प्रश्न

- गुप्तों के उदय के पूर्व भारत के गणराज्यों पर प्रकाश डालिए।
- गुप्तों के उदय के पूर्व उत्तर भारत के राजनीतिक पर टिप्पणी कीजिए।
- गुप्तों के उदय के कारणों पर प्रकाश डालिए।

- गुप्तों के उदय के पूर्व उत्तर भारत में किन–किन विदेशी शक्तियों का शासन था, विवरण दीजिए।

1.7 संदर्भ ग्रन्थ एवं सहायक पाठ्य सामग्री

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1970
2. गुप्त, परमेश्वरी लाल, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग–2, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2012
3. उपाध्याय, प्रो0 डॉ0 वासुदेव, प्राचीन भारतीय मुद्राएँ, मोतीलाल बनारसीदास, 2016
4. पाण्डेय, राजबली, प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2015
5. बनर्जी, राखलदास–द एज ऑफ एम्पिरियल गुप्ताज, वाराणसी, 1983
6. मजूमदार, रमेशचंद्र, अल्तेकर, अनन्त सदाशिव– द वाकाटक गुप्त एज, वाराणसी, 1954
7. गोयल, श्रीराम, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, जोधपुर, 1995
8. मजूमदार, आर0सी0– द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल, वाल्यूम–3, मुम्बई
9. शर्मा, रामशरण, प्रारम्भिक भारत का परिचय, नई दिल्ली, 2009
10. स्मिथ, विंसेंट– अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, 1924
11. राय, उदय नारायण– गुप्त राजवंश तथा उसका युग, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996
12. चट्टोपाध्याय, सुधाकर, अर्ली हिस्ट्री ऑफ नार्थ इण्डिया, प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स, कलकत्ता, 1958
13. झा, द्विजेन्द्र नाथ एवं रीमाली के0एम0, प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990

इकाई–2 गुप्तों का उद्भव एवं मूल निवास स्थान

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्रमुख स्रोत

2.4 गुप्त वंश की उत्पत्ति

2.4.1 गुप्तों की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न मत

2.5 गुप्तों का मूल निवास स्थान

2.6 मूल्यांकन

2.7 सारांश

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

2.9 संदर्भ ग्रंथ एवं सहायक उपयोगी पाठ्यपुस्तक

2.1 प्रस्तावना

कुषाणों और सातवाहन के पश्चात् लगभग तीसरी शताब्दी में भारत में तीन नए राजवंशों का उदय हुआ, मध्य भारत के पश्चिम में नाग वंश, मध्य भारत के पूर्व में गुप्त वंश और दक्कन में वाकाटक वंश। इन राज्यों ने साम्राज्यवादी प्रतिद्वन्दिता के स्थान पर आपसी सहयोग की राजनीति को महत्व दिया। शीघ्र ही गुप्तों के नेतृत्व में भारत को भौगोलिक एकता में बांधने का प्रयत्न किया गया। गुप्त वंश का साम्राज्य मौर्य साम्राज्य की तरह विशाल नहीं था, परन्तु हिन्दू धर्म से सम्बन्धित संस्थाओं के विकास एवं हिन्दू संस्कृति की दृढ़ता पूर्वक स्थापना तथा कला शिल्प, साहित्य, व्यापार और आर्थिक क्षेत्र में नवीन प्रयोगों और प्रवृत्तियों के विकास के कारण भारतीय इतिहास में गुप्त युग का महत्वपूर्ण स्थान है। गुप्त वंश के समय उत्तर भारत की राजनैतिक एकता, सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिति तथा आर्थिक समृद्धि के कारण कई विद्वान इस युग को क्लासिक युग अथवा स्वर्ण युग कहते हैं।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन पश्चात् आप

- उन ऐतिहासिक साधनों को जान पायेंगे जिनसे गुप्त वंश के विषय में महत्वपूर्ण जानकारियां मिलती हैं।
- गुप्त वंश के उदय के कारणों से परिचित हो सकेंगे।
- गुप्त वंश के शासकों की उत्पत्ति के साहित्यिक स्रोत, ऐतिहासिक तथा अन्य स्रोत से परिचित होंगे।
- गुप्तों के मूल स्थान से संबंधित विभिन्न विद्वानों के मत से परिचित होंगे।

2.3 गुप्त वंश के उत्पत्ति के स्रोत

गुप्त वंश के शासकों को उदय राजनैतिक विकेन्द्रीकरण को समाप्त एकछत्र शासन करने की महत्वाकांक्षा के साथ हुई। इस वंश के शासकों ने अपने अदम्य उत्साह, संगठन, प्रतिभा, निशति एवं विदग्ध मति तथा निरंतर प्रयासों द्वारा अपने उत्कर्ष काल में अपने साम्राज्य की सीमा का विस्तार पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में गुजरात तक किया। इन शासकों ने अपनी सैन्य शक्ति के बल पर कुषाण तथा शकों का उन्मूलन किया एवं हूणों का दमन किया। गुप्त अभिलेखों में 'धरणिबन्ध', 'कृत्स्नपृथिवीजय' तथा 'निखिलभुवनविजय' आदि पदों का प्रयोग गुप्त शासकों के लिये किया गया है।

गुप्त शासकों ने भावी पीढ़ियों के हेतु अनुकरणीय आदर्शों की स्थापना की जिसकी प्रशंसा विदेशी लेखकों द्वारा भी की गयी। गुप्त काल में हुए कला साहित्य समेत विविध क्षेत्रों में हुए विकास से प्रभावित होकर अनेक इतिहासकार ने पेटीक्लीज, आगस्टस एवं तांग युग जैसे कालों से इस युग की तुलना की है। गुप्त वंश का इतिहास हमें साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोतों द्वारा ज्ञात होता हैं।

साहित्यिक स्त्रोतों में पुराण सर्वप्रथम है। पुराणों की रचना भविष्यवाणी शैली में की गयी है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पुराणों के वंशानुचरित खण्ड का महत्व अत्याधिक है। वायु पुराण, विष्णु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण से गुप्त वंश के प्रारम्भिक इतिहास के विषय में जानकारी प्राप्त होती हैं। स्मृतियों से भी गुप्तकालीन सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था से सम्बन्धित विवरण प्राप्त होता है। बृहस्पति, कात्यायन, नारद एवं पराशर स्मृतियों से गुप्तकालीन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। कामांदक के नीतिसार का रचनाकाल चन्द्रगुप्त प्रथम का शासन काल माना जाता है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक तथा प्रशासन के बारे में जानकारी प्राप्त होतीहै। शूद्रक द्वारा रिचत मृच्छकटिकम् तथा वात्सायन के कामसूत्र से गुप्तकालीन सामाजिक, प्रशासनिक, कला एवं संगीत से सम्बन्धित रोचक जानकारी प्राप्त होती है। कालिदास की रचनाओं में भी गुप्तकालीन प्रशासन तथा धर्म से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त होती है। कालिदास ने ऋतुसंहार, कुमारसंभव, मेघदूत, रघुवंश, मालिविकाग्निमित्रम्,

विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञानशांकुन्तलम् आदि ग्रंथों की रचना की। विशाखदत्त के देवीचन्द्रगुप्तम् नाटक से रामगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इन ग्रंथों के अलावा वज्जिकाकृत 'कौमुदी महोत्सव' अमरसिंह कृत अमरकोश, सोमदेव कृत कथासरित्सागर, भासकृत स्वप्न वासवदत्ता आदि ग्रंथों से भी गुप्तकालीन विवरण प्राप्त होते हैं। बौद्ध ग्रंथ आर्यमंजुश्रीमूलकल्प, में भी गुप्त शासकों सम्बन्धित विवरण प्राप्त होते हैं। जैन ग्रंथ जिनसेनसूरीकृत हरिवंशपुराण से भी गुप्त शासकों के विषय में सूचना प्राप्त होती है।

भारतीय साहित्य के अतिरिक्त विदेशी यात्रियों के विवरण भी गुप्तकालीन इतिहास के महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। चीनी यात्री फाहियान का भारत आगमन चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन में हुआ था। उसके विवरण में मध्यदेश की जनता का वर्णन प्राप्त होता है। सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण कुमारगुप्त प्रथम, बुधगुप्त, बलादित्य आदि शासकों का उल्लेख प्राप्त होता है। नालन्दा महाविहार की स्थापना कुमार गुप्त द्वारा कराई गयी थी, यह उल्ल्ेख ह्वेनसांग के विवरण में ही प्राप्त होता है।

2.3.3 पुरातात्विक स्रोत

भारतीय भू–भाग के अनेक क्षेत्रों से बड़ी संख्या में गुप्तकालीन अभिलेख प्राप्त हुए है जो गुप्तकालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक तथा शासन व्यवस्था की जानकारी का प्रमुख स्त्रोत हैं।

अभिलेख

ये अभिलेख स्तम्भ लेख, शिलाफलक लेख एवं ताम्रपत्र लेखक के रूप में है। ये सभी लेख विशुद्ध संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं। चम्पू शैली में लिखे गये अभिलेख संस्कृत भाषा एवं साहित्य के विकास को प्रमाणित करते हैं। अभिलेख के प्राप्ति स्थानों से गुप्त शासकों के साम्राज्य निर्धारण में भी सहायता प्राप्त होती हैं। कुछ अभिलेखों में वंशावली, ऐतिहासिक घटनाएँ तथा शासकों की उपलब्धियों का भी काव्यात्मक विवरण प्राप्त होता है।

हरिषेण विरचित प्रयाग प्रशस्ति वस्तुतः एक चरित काव्य हैं जिससे समुद्रगुप्त के राज्याभिषेक, दिग्विजय एवं उसके व्यक्तित्व का विस्तार से वर्णन किया गया है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि से प्राप्त गुहालेख में उसके दिग्विजय (कृत्स्नपृथिवी विजय) का वर्णन प्राप्त होता है। बंगाल से प्राप्त अभिलेखों गुप्तों के बंगाल पर अधिकार की ओर संकेत करते हैं। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में प्रसिद्ध सुदर्शन झील के पुननिर्माण का वर्णन है। स्कन्दगुप्त के भितरी स्तम्भ लेख से हूण आक्रमण के विषय में जानकारी प्राप्त होती हैं। भानुगुप्त के एरण अभिलेख में

सैनिक गोपराज के देहान्त तथा उसकी पत्नी के सती होने का वर्णन उत्कीर्ण है जो सतीप्रथा का प्रथम अभिलेखीय प्रमाण है। समसामयिक वंशों के अभिलेख यथा– वाकाटक वंश के अभिलेख, कदम्ब वंश के अभिलेख, मिहिरकुल के अभिलेख तथा यशोधर्मन् के अभिलेख भी गुप्त वंश के विषय में सूचना प्रदान करते हैं।

मुद्राएँ–

गुप्त शासकों द्वारा जारी किये गये स्वर्ण, रजत तथा ताम्र मुद्राएँ भारतीय भू–भाग के अनेक केन्द्रों से प्राप्त हुए हैं। स्वर्ण मुद्राओं को 'दीनार', रजत मुद्राओं को 'रूपक या रूप्यक' तथा ताम्र मुद्राओं को मापक कहा जाता है। राजस्थान के बयाना नामक स्थान से गुप्तयुगीन स्वर्ण मुद्राओं का सर्वाधिक विशाल ढेर प्राप्त हुआ है। मुद्राओं पर अंकित तिथियों से शासक के शासन काल के विषय में तथा प्राप्ति स्थान से शासन क्षेत्र के विषय में सूचना प्राप्त होती है। मुद्राओं पर उत्कीर्ण आकृति तथा लेख विशिष्ट प्रकार की सूचना प्रदान करते है। जैसे– एक स्वर्ण मुद्रा के मुखभाग पर चन्द्रगुप्त एवं कुमारदेवी की आकृति तथा पृष्ठभाग पर 'लिच्छवयः' का उत्कीर्णन चन्द्रगुप्त तथा लिच्छवी राजकन्या कुमारदेवी के वैवाहिक सम्बन्ध की सूचना देता है। समुद्रगुप्त द्वारा चलाये गये अश्वमेध प्रकार के सिक्के उसके अश्वमेध यज्ञ की सूचना तथा वीणावादन प्रकार के सिक्के उसके संगीत प्रेमी होने की सूचना देता हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय का व्याघ्र हनन प्रकार के सिक्के उसके शकविजय की सूचना देते हैं। भिलसा तथा एरण पुरास्थल से प्राप्त रामगुप्त की मुद्राएँ उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध करने में सहायक होती है। मुद्राओं के अध्ययन से शासन काल एवं शासन क्षेत्र के अन्य राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था के विषय में भी सूचना प्राप्त होती है। मुद्राओं की शुद्धता एवं तौल से समृद्ध आर्थिक स्थिति तथा मिलावट से पतनोन्मुख आर्थिक स्थिति की सूचना प्राप्त होती हैं।

इनके अलावा भितरी से प्राप्त धातु मुहर तथा बसाढ़ एवं नालंदा से प्राप्त मिट्टी की मुहरें भी गुप्त युगीन जानकारी का महत्वपूर्ण स्त्रोत है।

स्मारक–

गुप्तयुगीन मन्दिर, स्तम्भ, मूर्तियाँ एवं चैत्य–गुहा द्वारा शासक एवं लोक आस्था एवं धार्मिक विश्वास को समझने में सहायता प्राप्त होती हैं। मन्दिरों में तिगवाँ का विष्णु मन्दिर, भूमरा का शिव मन्दिर, नचना–कुठार का पार्वती मन्दिर, देवगढ़ का दशावतार मन्दिर, भीतरगाँव तथा लाड़खान के मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये मन्दिर अपनी वास्तुगत विशेषता के लिए प्रसिद्ध है। मन्दिरों के अलावा देवगढ़, खांह, करमदण्डा, सुल्तानगंज, मथुरा आदि पुरास्थलों से विष्णु, शिव, बुद्ध आदि देवताओं की मिलती है जो गुप्तयुगीन शासकों के धार्मिक सहिष्णुता की सूचना प्रदान करती हैं। इनके साथ बाघ तथा अजंता की गुफाओं से गुप्तयुगीन लौकिक

तथा धार्मिक विषय चित्र तत्कालीन समाज की विकसित चित्रकला का परिचय देते हुए सामाजिक वेशभूषा, श्रृंगार, प्रसाधन एवं धार्मिक विश्वास को समझने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

2.4 गुप्त वंश की उत्पत्ति

गुप्त नरेशों के अभिलेखीय, मौद्रिक एवं साहित्यिक साक्ष्यों के गुप्तों की उत्पत्ति के प्रश्न पर मौन होने के कारण इस प्रश्न का अद्यतन ऐसा कोई उत्तर प्राप्त नहीं हो सका है जिस पर विद्वानों का मतैक्य हो। भिन्न–भिन्न विद्वानों ने गुप्तों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में भिन्न–भिन्न अवधारणाएँ प्रदान की है। काशी प्रसाद जायसवाल ने गुप्तों की जाति 'शूद्र' स्वीकारा है। गौरी शंकर ओझा एवं डॉ0 पांथरी आदि विद्वान गुप्तों को क्षत्रिय करते हैं तथा हेमचन्द्र राय चौधरी ने गुप्तों को ब्राह्मण माना है। अल्तेकर, एलन, आयंवार, रामशरण शर्मा एवं सत्यकेतु विद्यालंकार आदि विद्वानों के अनुसार गुप्त वैश्य जाति के थे। परमेश्वरी लाल गुप्त गुप्तों के गुण एवं कर्म की बात करते हैं।

2.4.1 गुप्तां की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न मत

शूद्र उत्पत्ति का मत–

एलेन, बी0 जी0 गोखले एवं काशी प्रसाद जायसवाल आदि विद्वानों ने गुप्तों को शूद्र जाति से सम्बन्धित किया है। जायसवाल महोदय ने ''कौमुदीमहोत्सव' नामक एक नाटक ग्रंथ का सहारा लेकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि गुप्त शासक निम्न वर्ण से सम्बन्धित होने के कारण अपनी जाति का उल्लेख अपने अभिलेखों में नहीं किया। कौमुदी महोत्सव नाटक की कथा का सारांश इस प्रकार हैं–

''सुन्दरवर्मा नामक एक क्षत्रिय राजा मगध पर शासन करता थां स्वयं का कोई पुत्र न होने के कारण उसने एक व्यक्ति को गोद लिया जिसका नाम चण्डसेन था। चण्डसेन को राजाओं मे कारस्कर कहा गया है। कुछ समय बाद सुन्दर वर्मा को पुत्र प्राप्ति हुई जिसका नाम कल्याण वर्मा था। कल्याण वर्मा के जन्म से निराश चण्डसेन ने लिच्छवियों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया तथा युद्ध में सुन्दरवर्मा की हत्या कर स्वयं मगध नरेश के पद पर आसीन हुआ। इन घटनाओं से कल्याणवर्मा के जीवन को लेकर चिंतित एवं भयभीत मंत्रियों ने कल्याण वर्मा को पम्पासर नामक स्थान पर भिजवा दिया। इसके पश्चात् उन्होंने चण्डसेन के विरूद्ध विद्रोह भड़काया। उठे विद्रोह को शांत करने के प्रयास में चण्डसेन मारा गया तथा कल्याण वर्मा मगध की राजगद्दी पर आसीन हुआ।''

जायसवाल महोदय ने चण्डसेन की समता लिच्छवियों के सम्बन्ध के आधार

पर गुप्त शासक चन्द्रगुप्त प्रथम से स्थापित की। चन्द्रगुप्त प्रथम का लिच्छवियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध था तथा कौमुदी महोत्सव चण्डसेन के भी लिच्छवियों के साथ सम्बन्ध की पुष्टि करता है। कौमुदी महोत्सव में चण्डसेन को कारस्कर तथा लिच्छवियों को म्लेच्छ कहा गया है। इस आधार पर जायसवाल महोदय चण्डसेन अर्थात् चन्द्रगुप्त को शूद्र वर्ण से सम्बन्धित करते है। जायसवाल महोदय चन्द्रगोमिन के व्याकरण की एक पंक्ति के द्वारा भी गुप्तों को निम्न वर्ण से सम्बन्धित करने हेतु साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसमें 'भजयट्जर्टो हूणान्' लिखा प्राप्त होता है जिसका अर्थ है जर्ट लोगों ने हूणों को जीता था। इस विजय का संकेत स्कन्दगुप्त के हूण विजय की ओर है। इस ग्रंथ में गुप्तों के लिये जर्ट अथवा जाट शब्द का प्रयोग मिलता है। इससे यह सम्भावना है कि वह आधुनिक कक्कड़ जाट के पूर्वज रहे होंगे। इसके अलावा पूना ताम्रपत्र में प्रभावती गुप्त ने स्वयं को धारण गोत्र का बताया है। उसका पति रूद्रसेन द्वितीय विष्णुवृद्धि गोत्रीय ब्राह्मण था अतः यह गोत्र उसके पिता का था जिसका समीकरण जायसवाल महोदय ने जाटों के धारणि शाखा से स्थापित किया है। यह भी निम्न वर्ण के थे। मत्स्य पुराण में उल्लिखित ततः प्रभृति राजानो भविष्यन्ति शूद्र योनयः अर्थात् महानन्दी के पश्चात् शूद्र योनि के शासक पृथ्वी पर शासन करेंगे भी गुप्तों के निम्न वर्ण से सम्बन्धित होने की ओर संकेत करता है।

परन्तु काशी प्रसाद जायसवाल के तर्कों की समीक्षा करने पर उनके तर्क निर्बल प्रतीत होते हैं। कौमुदी महोत्सव नाटक की कथा को आधार माना जाये तो चण्डसेन की उसके बन्धु–बान्धवों समेत हत्या कर दी गयी थी जिससे उसका वंश समाप्त हो गया था परन्तु चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ ऐसी कोई दुर्घटना नहीं हुई थी तथा उसका वंश शताब्दियों तक चला। ऐसी स्थिति में चण्डसेन एवं चन्द्रगुप्त प्रथम निश्चित ही एक–दूसरे से पृथक थे। क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय ने कौमुदी महोत्सव का गुप्तकाल के पश्चात् की रचना बताया हैं।

लिच्छवियों को म्लेच्छ स्वीकारने के स्पष्ट प्रमाण नहीं है। दीर्घनिकाय आदि साक्ष्य लिच्छवियों के क्षत्रिय होने की ओर संकेत करते हैं। जहाँ तक चन्द्रगोमिन के चान्द्र व्याकरण का प्रश्न है सम्भव है इसकी मूल पाण्डुलिपियों में अजयत् गुप्तो हूणान् रहा हो जो कालान्तर में भूलवश 'जप्त' या 'जप्तो' लिख गया हो। जहाँ तक प्रभावती गुप्त के अभिलेख का प्रश्न है, इसमें 'धरणि' एवं 'धारण' की समता नहीं स्थापित की जा सकती क्योंकि उच्चारण के अतिरिक्त दोनों शब्दों में अन्य किसी भी प्रकार की साम्यता नहीं है। मत्स्य पुराण का कथन की सीमा मात्र नन्दों तक ही सीमित हैं क्योंकि नन्दोत्तर काल में अनेक क्षत्रियवंशी एवं ब्राह्मणवंशी शासकों ने शासन किया। अतः उपरोक्त आधारों पर गुप्तों को निम्न जाति का नहीं माना जा सकता।

वैश्य उत्पत्ति का मत

कुछ विद्वानों ने गुप्तों को वैश्य वर्ण से सम्बन्धित किया है जिनमें एलन, एस0 के0 आयंगर, अनन्त सदाशिव अल्तेकर, रोमिला थापर, रामशरण शर्मा प्रभृति विद्वान प्रमुख हैं। अल्तेकर महोदय ने अपने मत की सिद्धि के लिये विष्णु पुराण में उल्लिखित एक श्लोक का सन्दर्भ लिया है जिसमें कहा गया है कि–

'शर्मेति ब्राह्मणस्योवतं वर्मेति क्षत्रसंश्रयम्।

गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्य शूद्रायोः।।'

अर्थात् ब्राह्मण अपने नामांत में शर्मा शब्द, क्षत्रिय वर्मा शब्द, वैश्य गुप्ता शब्द और शूद्र दास शब्द का उपयोग करेंगे।

प्रस्तुत श्लोक के आधार पर अल्तेकर महोदय गुप्त शासकों के नामांत में प्रयोग शब्द 'गुप्त' को वैश्य वर्ण से सम्बन्धित करते हैं। उनके अनुसार गुप्त युग में वर्ण व्यवस्था शिथिल पड़ गयी थी जिसका प्रभाव व्यवसाय चयन में नहीं रह गया था। कदम्ब एवं वाकाटक वंश के लोग ब्राह्मण होकर क्षत्रिय का कार्य कर रहे थे। गुप्तों का सामंत मातृविष्णु ब्राह्मण धर्म का था। स्कन्दगुप्त के काल के इन्दौर ताम्रपत्र में क्षत्रिय वर्ण के अचल वर्मा एवं भृकुण्ड सिंह को 'इन्द्रपुर वणिभ्याम्' अर्थात् इन्द्रपुर का बनिया कहा गया है। गुप्तयुगीन रचना 'मृच्छकटिक' में चारुदत्त नामक ब्राह्मण को सार्थवाह कहा गया है। ऐसे में यदि वैश्य कलोत्पन्न व्यक्ति शासन करता है तो इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

उपर्युक्त मतों के आधर पर गुप्तों को वैश्य वर्ण का नहीं स्वीकार किया जा सकता क्योंकि गुप्तवंश के दूसरे शासक घटोत्कच का नामांत 'गुप्त' शब्द के साथ नहीं हुआ। श्रीगुप्त के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने अपने नामांत में गुप्त शब्द का प्रयोग किया तथा इस वंश की ख्याति इसी नाम से हो गयी। गुप्त नामांत का प्रयोग वैश्य वर्ण के लोगों के अलावा अन्य वर्णों के लोग भी करते थे यथा– कौटिल्य का एक नाम विष्णुगुप्त भी प्राप्त होता हैं, कल्हण की राजतरंगिणी में कश्मीर नरेश मातृगुप्त का उल्लेख मिलता हैं। ऐसे अनेक गुप्तांत नामों का उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य में प्राप्त होता है जो क्षत्रिय वर्ण से सम्बन्धित नहीं है।

क्षत्रिय होने का मत

कुछ विद्वान गुप्तों का सम्बन्ध क्षत्रिय वर्ण से स्थापित करते हैं जिनमें सुधाकर चट्टोपाध्याय, रमेशचन्द्र मजूमदार, गौरीशंकर, हीरानंद ओझा प्रभृति विद्वान प्रमुख है। इनके अनुसार जावा से प्राप्त तन्त्रीकामन्दक नामक ग्रंथ में ऐश्वर्यपाल नामक राजा स्वयं को इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय तथा समुद्रगुप्त का वंशज बताता है। इस

आधार पर गुप्त जन सूर्यवंशी क्षत्रिय वर्ण से सम्बन्धित रहे होंगे। गुप्तों को क्षत्रिय मानने के पक्ष में विद्वतजन पंचोभ एवं सिरपुर के लेख को प्रमाण के तौर पर प्रस्तुत करते हैं। पंचोभ से प्राप्त लेख में गुप्त वंश का उल्लेख है जो पाण्डव अर्जुन के वंशज है तथा सिरपुर के लेख में चन्द्रगुप्त नामक चन्द्रवंशी क्षत्रिय का उल्लेख है जिसकी समता गुप्त शासक चन्द्रगुप्त प्रथम से स्थापित की जाती है। इन लेखों के आधार पर गुप्तों को क्षत्रिय स्वीकार किया गया है। एक तर्क यह भी है कि लिच्छवियों को क्षत्रिय माना गया है तथा गुप्त एवं लिच्छवियों में वैवाहिक सम्बन्ध थे इसीलिए स्थापित हुआ क्योंकि गुप्त लोग क्षत्रिय रहे होंगे परन्तु ये तर्क गुप्तों को क्षत्रिय सिद्ध करने के लिये पर्याप्त नहीं है। जावा से प्राप्त तन्त्रीकामन्दक नामक रचना का काल मध्यकाल है अतः इस रचना को गुप्त शासक के जाति निर्धारण में सहायक नहीं माना जा सकता। पंचोभ से प्राप्त लेख में गुप्त वंश का तो उल्लेख है परन्तु यदि यह गुप्त वंश चक्रवर्ती गुप्त शासकों का वंश होता तो निश्चित ही इस लेख में प्रतापी गुप्त शासकों के नाम प्राप्त होते। सिरपुर अभिलेख के चन्द्रगुप्त की परम्परा गुप्तवंशी की परम्परा से अलग थी इसलिए ये आधार गुप्तों को क्षत्रिय सिद्ध करने के लिये निर्बल हैं। जहाँ तक प्रश्न लिच्छवियों के क्षत्रिय होने का है इस विषय पर विद्वानों में मतैक्यता नहीं है। पालि ग्रंथ लिच्छवियों को 'खत्रिय' तथा मनु व्रात्य कहते हैं। ऐसी संभावना हो सकती हैं कि उनकी शक्ति के कारण क्षत्रिय रूप में उनकी स्वीकार्यता हो गयी हो। यदि लिच्छवि क्षत्रिय होते भी है तो भी लिच्छवियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध के आधार पर गुप्तों को क्षत्रिय मानना तर्कसंगत नहीं हैं क्योंकि अनुलोम विवाह शास्त्रसंगत है जिसमें कन्या का विवाह उसके पिता के वर्ण से उच्च वर्ण में होता है।

ब्राह्मण उत्पत्ति का मत

कुछ विद्वान गुप्तों का सम्बन्ध ब्राह्मण वर्ण से स्थापित करने का प्रयास करते है। प्रभावतीगुप्ता के पूना ताम्र पत्र में उल्लिखित धारण गोत्र (परमभागवतों महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्तस्य दुहिता धारणसंगोत्रा श्रीप्रभावतीगुप्ता) उसके पिता का गोत्र था क्योंकि उसका पति रूद्रसेन द्वितीय विष्णुवृद्धि गोत्र का ब्राह्मण था। धारण गोत्र स्कन्दपुराण में वर्णित ब्राह्मणों के चौबीस गोत्रों में बारहवां है, हेमचन्द्रराय चौधरी महोदय का विचार है कि गुप्त लोग कालिदासकृत मालविकाग्निमित्र में वर्णित अग्निमित्र के प्रधान महिषि धारिणी के वंशज थे परन्तु इस तर्क के पक्ष में सबल प्रमाणों की अनुपलब्धता है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि यह गोत्र प्रभावती गुप्ता के पिता का न होकर उसके पुरोहित का है परन्तु पुरोहित को गोत्र ब्राह्मण नहीं धारण करते थे, क्षत्रिय तथा वैश्य अपने पुरोहित का गोत्र धारण करते थे। ऐसे में यदि प्रभावती गुप्ता ब्राह्मण वर्ण की थी तो वह अपने पुरोहित का वर्ण क्यों धारण करेंगी?

राजा काकुत्सवर्मा के तालगुण्ड अभिलेख में उसकी पुत्री के गुप्तकुल में विवाह का विवरण प्राप्त होता है। कदम्बवंशी लोगों का गोत्र मानव्य था तथा इस वंश का वैवाहिक सम्बन्ध वाकाटक एवं गंग सदृश ब्राह्मण कुल में हुआ था। ब्राह्मणेत्तर कुल में इस वंश के वैवाहिक सम्बन्ध के साक्ष्य नही प्राप्त हुए हैं। ऐसे में यदि गुप्त ब्राह्मण वर्ग के नहीं होते तो कादम्बवंशी द्विजोत्तम ब्राह्मण शास्त्रोल्लंघन कर प्रतिलोम विवाह क्यों करते?

किन्तु जैसा कि मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि ने स्पष्ट किया है, केवल क्षत्रि तथा वैश्य वर्ण के लोग ही अपने पुरोहित का गोत्र धारण करते थे, न कि ब्राह्मण। प्रभावती गुप्ता चूँकि ब्राह्मण वर्ण की थी, अतः उसके द्वारा अपने पुरोहित के गोत्र को धारण किये जाने का प्रश्न नहीं उठता।

किसी प्रारम्भिक गुप्त शासक ने कदम्ब नरेश काकुत्स्थ वर्मा की पुत्री से विवाह किया था। इसकी जानकारी शान्ति वर्मा (कदम्ब राजा) के तालगुण्ड अभिलेख से मिलती है। गुप्त शासकों ने अपनी पुत्रियों का विवाह भी ब्राह्मणों के साथ किया था जैसे चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक राजा रूद्रसेन द्वितीय से हुआ था। बालादित्य एवं भानुगुप्त ने भी अपनी बहनों का विवाह ब्राह्मरण से किया था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त शासक ब्राह्मण जाति के थे। श्रीराम गायेल कहते हैं कि यद्यपि अभिलेखों में क्षत्रिय शासकों के गुप्तों से सम्बन्ध का वर्णन मिलता हैं, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि गुप्त भी क्षत्रिय ही थे। उसी प्रकार गुप्तों की विवाह संधियों से मात्र इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि गुप्त क्षत्रिय से निम्न वर्ग के नहीं थे। इससे उनके वैश्य या शूद्र होने की सम्भावना तो बिल्कुल ही समाप्त हो जाती है, परन्तु उनके ब्राह्मण होने की सम्भावना बढ़ जाती है। उनका यह भी कहना है कि स्कन्द पुराण में धर्मारण्य प्रदेश (पूर्वी उत्तर प्रदेश, मिर्जापुर) में रहने वाले धारण गोत्रीय ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है चूँकि गुप्त भी पूर्वी उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे एवं उनका गोत्र धारण था अतः वे ब्राह्मण थे।

इस प्रकार हम विभिन्न मतों की समीक्षा करने के बाद सिर्फ इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विद्वान अपनी तरफ से गुप्तों को चारों वर्णों से संबंधित करने का प्रयास करते हैं। अतः इस संबंध में ठोस निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है।

2.5 गुप्तों का मूल निवास स्थान

गुप्तों की जाति की तरह उनके आदि स्थान के विषय में भी इतिहासकारों में पर्याप्त मतभेद है। स्पष्ट प्रमाणों के अभाव में गुप्तों के आदि–राज्य का निर्धारण भारतीय इतिहास की एक जटिल समस्या है। इतिहासकारों ने पश्चिमी बंगाल से

लेकर कौशांबी, मगध, वाराणसी और प्रयाग तक को गुप्तों का आदि स्थान सिद्ध करने का प्रयास किया है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश

कुछ विद्वान गुप्तों का मूल निवास स्थान पूर्वी उत्तर प्रदेश का क्षेत्र निर्धारित करते हैं। कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग से गुप्तों के अधिक अभिलेख प्राप्त होते हैं इसलिये इस क्षेत्र को गुप्तों का आदि स्थान मानना अधिक उपयुक्त होगा। करमदण्डा, मानकुँवर, गढ़वा, सारनाथ, भितरी, कहौम, राजघाट, प्रयाग, वाराणसी आदि स्थलों से गुप्तों के अभिलेख प्राप्त हुए है। गुप्तों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिलेख प्रयाग प्रशस्ति की प्राप्ति भी इसी क्षेत्र से हुई है। श्री राम गोयल महोदय की मान्यता है कि किसी भी वंश के आरम्भिक अभिलेख एवं मुद्राओं का प्राप्ति स्थान उसका आदि स्थान होता है। अभिलेखों के साथ–साथ गुप्तों की मुद्रा निधियाँ भी इस क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं परन्तु इन तर्कों से इस समस्या को हल नहीं किया जा सकता। इन तर्कों के विरूद्ध में यह कहा जा सकता है कि यहाँ से प्राप्त होने वाले अभिलेख आदिशासकों के नहीं है। यह चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमारगुप्त प्रथम के काल के हैं। प्रयाग प्रशस्ति मूलरूप से अशोक स्तम्भ है जिस पर कालान्तर में समुद्रगुप्त ने लेख उत्कीर्ण कराया, यह आरम्भ में कौशाम्बी में स्थापित था। पूर्वी मालवा क्षेत्र से भी समुद्रगुप्त, रामगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय कालीन अभिलेख बड़ी संख्या में प्राप्त होते हैं। इसलिये गुप्तों का आदि स्थान निश्चित रूप से पूर्वी उत्तर प्रदेश को नहीं स्वीकार किया जा सकता।

बंगाल

डी0 सी0 गांगुली, रमेशचंद्र मजूमदार व सुधाकर चट्टोपाध्याय प्रभृति इतिहासकार गुप्तों का आदि स्थान बंगाल मानते हैं। इत्सिंग के यात्रा वृत्तांत के आधार पर गांगुली का मानना है कि आरंभिक गुप्त नरेश बंगाल आधुनिक मुर्शिदाबाद के निकट शासन करते थे। इत्सिंग के यात्रा विवरण के अनुसार उसके भारत आगमन (671–695 ई0) के पाँच सौ वर्ष पूर्व हुई लुन नामक एक चीनी यात्री भारतवर्ष आया था। उस समय चि–लि–कि–तो नामक शासक राज्य कर रहा था जिसने चीनी यात्रियों की सुविधा के लिए मि–लि–किआ–सि–किआ–पो–नो (मृगशिखावन) नामक बौद्ध विहार के समीप एक बौद्ध मंदिर का निर्माण करवाया था। यह बौद्ध मंदिर चीन मंदिर के नाम से विख्यात था। इसकी दूरी नालंदा के पूरब में गंगा के किनारे 40 योजन (240 मील) थी। इस मंदिर की आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त उस नरेश ने 24 गाँव दान में दिया था।

डी0सी0 गांगुली, एलन, रमेशचन्द्र मजूमदार एवं सुधाकर चट्टोपाध्याय प्रभृति विद्वानों की मान्यता के अनुसार गुप्तों का आदि स्थान बंगाल है। जबकि गुप्तवंश के

संस्थापक काल 275 ई0 से पूर्व नहीं सम्भव है। दूसरा इत्सिंग के विवरण में वर्णित मि–लि–किया–सि–किया–पा–नो (मृगशिखावन) नामक मठ का समीकरण कुछ विद्वान वाराणसी के सारनाथ से स्थापित करते हैं जिसका समर्थन अधिक विद्वानों ने किया है। ऐसे में इत्सिंग के विवरणों के आधार पर बंगाल को गुप्तों का आदि स्थान नहीं स्वीकारा जा सकता।

एलन ने चि–लि–कि–तो का समीकरण गुप्तवंश के संस्थापक महाराज श्रीगुप्त से किया है। गांगुली के अनुसार इत्सिंग ने जिस दिशा और दूरी का उल्लेख किया है, उसके अनुसार नालंदा से पूरब में 240 मील पर मर्शिदाबाद स्थित है इसलिए गुप्त वंश का संस्थापक इसी के आसपास के क्षेत्र में शासन कर रहा होगा

परन्तु कुछ विद्वान मृगशिखावन का समीकरण वाराणसी के सारनाथ से स्थापित करते हैं।

मगधः

विन्टरनित्ज प्रभृति विद्वान पुराणों को आधार बनाकर मगध के गुप्तों का आदि स्थान मानते है। वायु पुराण में वर्णन आता है कि–

अनुगंगा (अनुगंग) प्रयागञ्च साकेतम् मग धान्स्तथा।

एतान् जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः।।

जिसका अर्थ है गंगा नदी के किनारे प्रयाग, साकेत तथा मगध का प्रदेश गुप्तवंशी राजाओं द्वारा उपभोग किया जायेगा। राय चौधरी महोदय का विचार है कि कोशल तथा प्रयाग का क्षेत्र गुप्त सीमा में चन्द्रगुप्त प्रथम के विजयोपरान्त आया तथा लिच्छवियों के वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा गुप्तों ने उत्तरी विहार का क्षेत्र प्राप्त किया।

विष्णु पुराण की प्राप्त पाण्डुलिपियों में अनुगंगा प्रयागं मागधाः गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति उल्लिखित प्राप्त होता है जिसका अर्थ है– गंगा के किनारे के प्रयाग तथा मगध के प्रदेश पर गुप्त लोग शासन करेंगे। परन्तु ढाका से प्राप्त पाण्डुलिपियों में इसके स्थान पर अनुगंगा प्रयागं च मागधाः गुप्ताश्च मागधान् भोक्ष्यन्ति उल्लिखित हैं। उपरोक्त पाठों में एक में अनुगंगा तथा दूसरे में अनुगंग शब्द प्राप्त होता है तथा ढाका से प्राप्त पाठ में 'मागधान्' शब्द अधिक जुड़ा है परन्तु दोनों ही पाठों में गुप्त के साथ मगध शब्द का जुड़ना मगध के गुप्त के आदि स्थान या शासन क्षेत्र की ओर संकेत करता है।

इस प्रकार निश्चित रूप से कह पाना कि गुप्तों का मूल निवास स्थान कहाँ

है, यह इतिहासकारों के लिये अद्यतन एक जटिल प्रश्न बना हुआ है जिसके उत्तर पर विद्वानों में मतैक्यता का अभाव है। विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने अनुसार गुप्तों का भिन्न–भिन्न आदि स्थान सिद्ध करने का प्रयास किया है।

2.6 मूल्यांकन

श्रीगुप्त और घटोत्कच के द्वारा स्थापित गुप्त वंश को चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने वैवाहिक सम्बन्ध के द्वारा विस्तार प्रदान किया। अपने पितामह और पिता की तरह महाराज की जगह उसने महाराजाधिराज उपाधि धारण की अपने राज्यारोहण के समय एक नया संवत् चलाया। गुप्त वंश के प्रारम्भिक सिक्के भी चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा ही चलाये गए। इस प्रकार गुप्त वंश को एक मजबूत नींव प्रदान करने का कार्य प्रारम्भिक गुप्त शासकों ने किया।

2.7 सारांश

तीसरी सदी में भारत अनेक छोटे राज्यों में विभक्त था, जिनमें से पूर्वी भारत में गुप्त वंश का उदय हुआ। गुप्त वंश का इतिहास उसके अभिलेखों, सिक्कों और तत्कालीन साहित्य विशेष रूप से पुराणों से ज्ञात होता है। गुप्त वंश के संस्थापक श्री गुप्त और उसके पुत्र घटोत्कच महाराज की उपाधि धारण करने वाले छोटे राजा या भू स्वामी थे। इनका मूल निवास वाराणसी के आस–पास का क्षेत्र था। घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम ने प्राचीनकाल से विख्यात लिच्छवी वंश की राजकुमारी कुमार देवी से विवाह किया तथा गुप्त वंश की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। दो राजवंशों के मिलने से गुप्तों के अधीन बिहार, बंगाल और उत्तर प्रदेश का बहुत बड़ा क्षेत्र आ गया। अभिलेखों में चन्द्रगुप्त प्रथम के लिए महाराजाधिराज उपाधि का प्रयोग, उसके द्वारा नये संवत का प्रवर्तन तथा सोने के सिक्के चलाना इस बात का घोतक है कि उसने गुप्त वंश को एक प्रतिष्ठित राजवंश के रूप में स्थापित कर दिया था। इसी कारण उसे गुप्त वंश का वास्तविक संस्थापक भी माना जाता है। प्रारम्भिक गुप्त शासकों ने परवर्ती गुप्तों के लिए एक सशक्त राज्य की आधारशिला रखी।

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. गुप्तों के उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के मत का विवेचन कीजिए।
2. गुप्तों के मूल निवास स्थान पर विद्वानों की मतों की समीक्षा कीजिए।

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूचो एवं सहायक उपयोगी पाठ्य पुस्तक

1. गुप्ता, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1970
2. उपाध्याय, भगवतशरण, गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास, 1969

मजमूदार, आर0 सी0, द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल, वॉल्यूम–3, 1970

3. झा, द्विजेंद्र नाथ एवं श्रीमाली के0 एम0, प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990

श्रीवास्तव, के0 सी0, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, प्रयागराज, 1991

4. बनर्जी, राखलदास, द एज ऑफ एम्पिीरियल ऑफ गुप्ताज, वाराणसी, 1933
5. स्मिथ, विंसेंट, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, 1924
6. गोयल, श्रीराम, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, जोधपुर, 1995
7. पांडेय, विमल चन्द्र, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 2003
8. थापर, रोमिला, भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1975

इकाई–03 गुप्तों का प्रारंभिक इतिहास (चंद्रगुप्त प्रथम तक)

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 स्रोत

3.4 प्रारंभिक शासक

3.5 श्रीगुप्त

3.5.1 कृत कार्य

3.5.2 शासनकाल

3.6 घटोत्कच

3.6.1 संस्थापक

3.6.2 साम्राज्य विस्तार नीति

3.6.3 सामंतीय शासक

3.6.4 उपाधि

3.6.5 शासनकाल

3.7 चंद्रगुप्त प्रथम

3.7.1 वैवाहिक संबंध

3.7.2 परिणाम

3.7.3 साम्राज्य विस्तार तथा विजय अभियान

3.7.4 गुप्त संवत् का प्रवर्तन

3.8 मूल्यांकन

3.9 सारांश

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं सहयोगी पाठय पुस्तक

3.1 प्रस्तावना

कुषाण साम्राज्य के पतन के बाद भारत में जिस नए युग का आरम्भ हुआ, वह गुप्त वंश के नाम से जाना जाता है। जो चौथी शताब्दी ईस्वी से लेकर छठी शताब्दी ईस्वी के पूर्वाद्ध तक अस्तित्व में रहा। गुप्त राजवंश की स्थापना लगभग 275 ईस्वी के आस–पास हो चुकी थी। गुप्त कालीन अभिलेखों तथा अन्य स्रोतों में गुप्तों के प्रारम्भिक इतिहास तथा गुप्तों की वंशावली के विषय में पर्याप्त जानकारी न मिलने से गुप्तों के प्रारम्भिक इतिहास और गुप्त वंश की वंशावली में अत्यधिक मतभेद है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप यह जान सकेंगे कि

- गुप्तों का प्रारंभिक इतिहास किन स्रोतों में वर्णित है।
- गुप्त वंश के आरम्भिक शासकों ने किस प्रकार साम्राज्य स्थापित किया एवं किन नीतियों का अनुसरण किया।
- चंद्रगुप्त प्रथम ने किस प्रकार साम्राज्य विस्तार किया और कितने विजय अभियान किए।
- गुप्त संवत् का आरंभ कब हुआ।

3.3 स्रोत

गुप्तकाल के आरंभिक इतिहास की जानकारी के लिए स्रोतों में तथ्यों का अभाव हैं परन्तु गुप्त कालीन कुछ अभिलेख व सिक्के हैं जिसके माध्यम से गुप्तों के प्रारम्भिक इतिहास और वंशावली की न्यूनाधिक सूचनाएं उपलब्ध होती हैं, ये अभिलेख निम्नवत् है–

- समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति
- कुमार गुप्त का विलसड़ स्तम्भ लेख
- स्कंदगुप्त का भीतरी स्तंभलेख
- स्कंदगुप्त का सुपिया अभिलेख
- प्रभावती गुप्ता का पूनाताम्रपत्र लेख
- प्रवरसेन द्वितीय का रिद्धपुर ताम्रपत्र लेख

इन स्रोतों के द्वारा गुप्तकालीन प्रारम्भिक इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। इन साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि गुप्तों के आदिपुरुष श्रीगुप्त हैं। जिसने गुप्त वंश की स्थापना की।

3.4 प्रारंभिक शासक

गुप्त वंश का प्रारंभिक शासक श्रीगुप्त था जिसने गुप्त वंश की स्थापना की। श्रीगुप्त ने कुषाण साम्राज्य के पतन के पश्चात् उत्तर भारत में व्याप्त अराजकता का लाभ उठाते हुए गुप्त वंश के रूप में एक नवीन वंश की स्थापना की।

अधिकांश विद्वानों की मान्यता हैं कि प्रारम्भिक गुप्त शासक सामंत और छोटे जमींदार थे। रामशरण शर्मा ने इन्हें कुषाणों का सामंत बतलाया है। प्रारंभिक गुप्त शासक स्वतंत्र शासक तो थे परन्तु इनका साम्राज्य विस्तार बहुत छोटा था। रोमिला थापर ने भी इस संबंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं इन्होंने गुप्तों को धनी भूस्वामियों का परिवार कहा है, जिसने धीरे–धीरे अपनी स्थिति सुदृढ़ कर राजनीतिक स्थिति मजबूत कर सत्ता प्राप्त की।

3.5 श्रीगुप्त

गुप्त राजवंश की स्थापना श्री गुप्त के द्वारा 275 ईस्वी में की गई। श्री गुप्त का शासन काल 275 ईस्वी से 300 ईस्वी तक स्वीकार किया जाता हैं। गुप्त अभिलेखों में श्रीगुप्त के शासन काल और राज्य का कोई भी वर्णन हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। स्रोतों में तथ्यों के अभाव से हम यह भी ज्ञात नहीं होता है कि इनका नाम श्रीगुप्त हैं या गुप्त। स्रोत के रूप में दो मुहरें मिली हैं जिनमें से एक के ऊपर संस्कृत तथा प्राकृत मिश्रित मुद्रालेख 'गुप्तस्य' तथा दूसरे के ऊपर संस्कृत में 'श्रीगुप्तस्य' अंकित हैं।

चीनी यात्री इत्सिंग ने अपने यात्रा वृत्तांत में श्रीगुप्त शासक का उल्लेख किया है। इनके पूर्व विवरणों के अनुसार श्रीगुप्त (चे ली की तो) का साम्राज्य विस्तार मगध के पूर्व में नालन्दा से 40 योजन पूर्व तक था। अपनी शक्ति को स्थापित कर श्रीगुप्त ने 'महाराज' की उपाधि धारण की। गुप्तों के उदय के समय महाराज शब्द का प्रयोग कौशांबी के मघों, भारशिवों तथा वाकाटकों में स्वतंत्र शासकों द्वारा किया जा रहा था। अतः ऐसी संभावना बनती है कि श्रीगुप्त भी स्वतंत्र शासक के रूप में रहा होगा।

3.5.1 कृतकार्य

श्रीगुप्त ने बौद्ध धर्म से सम्बन्धित कार्यों में भी अपना योगदान दिया। इसने चीनी बौद्ध यात्रियों के लिए मृगशिखावन के समीप एक विहार का निर्माण कराया और उसका खर्च के लिए 24 गांव दान में दिए। श्रीगुप्त स्वयं बौद्ध अनुयायी नहीं था परन्तु इसने बौद्ध धर्म के विकास में अपना विशेष योगदान दिया। बौद्ध तीर्थस्थलों का भ्रमण करने के लिए बहुत से चीनी यात्री उस समय तक भारत आने लगे थे और उन यात्रियों की सुविधा और आराम को दृष्टि में रखकर श्रीगुप्त ने

यह दान कार्य किया था।

3.5.2 शासन काल

राजा श्रीगुप्त का कोई भी अभिलेख या मुद्रा प्राप्त नहीं हो सका है। इस कारण श्रीगुप्त का शासन काल क्या था इस पर विभिन्न इतिहासकारों में मतभेद हैं–

इतिहासकार राधाकुमुद मुखर्जी श्रीगुप्त का समय 240 ईस्वी से 280 ईस्वी के मध्य मानते हैं परन्तु इतिहासकार विंसेंट स्मिथ, राधाकुमुद मुखर्जी के इस मत से सहमत नहीं हैं।

विंसेंट स्मिथ 319 ईस्वी को चंद्रगुप्त प्रथम का आरंभिक वर्ष मानते हैं और चंद्रगुप्त प्रथम के आरम्भिक वर्ष को आधार मानकर विंसेंट स्मिथ श्रीगुप्त का समय 277 ईस्वी से 300 ईस्वी के मध्य स्वीकार करते हैं। विंसेंट स्मिथ के द्वारा प्रस्तुत इस समय काल को अधिकांश विद्वान स्वीकार करते हैं।

3.6 घटोत्कच

श्रीगुप्त के पश्चात् गुप्त वंश का अगला शासक उसका पुत्र महाराज घटोत्कच सिंहासनारुढ़ हुआ जिसने 300 ईस्वी से 319 ईस्वी तक गुप्त वंश की गद्दी संभाली। प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र और रिद्धपुर ताम्रपत्र में घटोत्कच को गुप्तों को संस्थापक बताया गया हैं। इन अभिलेखों से यह सूचना मिलती हैं कि गुप्तों का प्रथम शासक घटोत्कच था। इसे ही गुप्तों का आदिराज बताया गया है। स्कंदगुप्त का सुपिया अभिलेख जो मध्यप्रदेश के रीवा जिले से प्राप्त हुआ है, इससे भी गुप्तों की वंशावली के विषय में जानकारी प्राप्त होती हैं जिसका आरम्भ घटोत्कच के साथ होता है। घटोत्कच के भी अभिलेख तथा सिक्के नहीं प्राप्त होते हैं।

3.6.1 संस्थापक

स्कंदगुप्त के सुपिया अभिलेख में गुप्त वंश की वंशावली का प्रारम्भ घटोत्कच से माना गया हैं तथा श्रीगुप्त की कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती हैं। वाकाटकों के अभिलेख पूना ताम्रपत्र तथा रिद्धपुर ताम्रपत्र के आधार पर विद्वानों ने घटोत्कच को गुप्त वंश का प्रथम शासक (आदिराज) बताया है परन्तु यह अभिलेख गुप्तों का अधिकारिक अभिलेख नहीं है इस कारण श्रीगुप्त का उल्लेख न होने का तथ्य बहुत महत्व सिद्ध नहीं होता है।

ऐसी संभावना व्यक्त की जाती है कि गुप्त वंश की स्थापना श्री गुप्त ने की किन्तु उसके शासनकाल में उसका साम्राज्य विस्तार अधिक विस्तृत नहीं था तथा गुप्त वंश की स्थिति भी बहुत सुदृढ़ अवस्था में नहीं थी। संभवतः इसी कारण से

वाकाटक के रिद्धपुर ताम्रपत्र तथा पूना ताम्रपत्र में श्रीगुप्त का उल्लेख गुप्तों की वंशावली में नहीं प्राप्त होता रहा होगा।

कुछ इतिहासकारों ने इस संबंध में तथ्यों के आधार पर अपने मत प्रस्तुत किए हैं। इन विद्वानों के अनुसार घटोत्कच ही गुप्त वंश का संस्थापक था तथा गुप्त या श्रीगुप्त इनका आदिपूर्वज की रूप में रहा होगा, जिसके नाम का अविष्कार गुप्तवंश की उत्पत्ति बताने के लिए कर लिया गया होगा परन्तु इस तथ्य से प्राप्त निष्कर्ष तर्क संगत प्रतीत नहीं होता हैं।

गुप्त वंश के अभिलेखों में गुप्त वंश का प्रथम शासक श्रीगुप्त को ही कहा गया हैं। समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति लेख की अट्ठाइसवसीं पंक्ति में उसे महाराज श्री गुप्त का प्रपौत्र कहा गया है। (महाराजश्रीगुप्तप्रपौत्रस्दु महाराजश्रीघटोत्कचपौत्रस्य महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तपुत्रस्य)। कुछ विद्वानों की मान्यता हैं कि घटोत्कच को कुछ लेखों में आदिराजा के रूप प्रतिष्ठि करने का कारण घटोत्कच काल में गुप्त वंश का गंगा घाटी तक राजनैतिक प्रसार एवं गुप्त लिच्छवी सम्बन्ध रहा होगा। अधिकांश विद्वानों के मत से श्रीगुप्त ही गुप्तवंश का आदिराजा रहा होगा।

3.6.2 साम्राज्य विस्तार नीति

श्रीगुप्त के पश्चात् घटोत्कच के काल में गुप्त वंश का विकास हुआ तथा राजनीतिक दृष्टि से साम्राज्य विस्तार हुआ। राज्य को आर्थिक और राजनीतिक लाभ प्राप्त हुआ जिससे इस वंश की प्रतिष्ठा एवं समृद्धि में वृद्धि हुई। अपने शासन काल में घटोत्कच ने अपनी वंश की स्वतंत्रता और प्रगति के लिए बहुत से प्रयास किए तथा साम्राज्य में वृद्धि की। घटोत्कच के काल में गुप्त वंश का विस्तार गंगा घाटी तक हुआ।

इतिहासकारों का मत–

घटोत्कच ने गुप्त साम्राज्य का विस्तार किया परन्तु घटोत्कच ने अपने वंश की सीमाओं का विस्तार किन नीतियों व माध्यमों से किया इसमें विद्वानों में मतभेद हैं। अल्तेकर तथा बसाक महोदय के अनुसार घटोत्कच ने साम्राज्य विस्तार तथा साम्राज्य सुरक्षा नीति के अन्तर्गत लिच्छवियों से अपने वैवाहिक संबंध स्थापित किए जिससे उसके राज्य को लिच्छवियों का संरक्षण प्राप्त हुआ।

संभवतः इसी कारण से वाकाटकों के पूना ताम्रपत्र और रिद्धपुर ताम्रपत्र में घटोत्कच से ही गुप्तों के वंश का प्रारंभ दिखाया गया हैं और घटोत्कच को ही गुप्तों का आदिराज स्वीकार किया गया है।

श्रीराम गोयल का मानना है कि घटोत्कच नागवंशी राजा भवनाग (जिसका शासन काल 300 ईस्वी से 340 ईस्वी तक था) एवं वाकाटक नरेश प्रवरसेन प्रथम (जिनका कार्यकाल 275 ईस्वी से 335 ईस्वी तक था।) के समकालीन थे।

नागवंशी राजा भवनाग और प्रवरसेन प्रथम ने एक साथ मिलकर गठबंधन कर लिया था जिससे गुप्त वंश पर संकट उत्पन्न होने की संभावनाएं बढ़ रही थी, इस परिस्थिति से बचने के लिए घटोत्कच ने लिच्छिवियों से अपने संबंध स्थापित किए और वैवाहिक नीति का अनुसरण करते हुए अपने पुत्र चंद्रगुप्त प्रथम का विवाह लिच्छिवियों की राजकुमारी कुमारदेवी से कराया। इसने चंद्रगुप्त प्रथम तथा लिच्छवी राजकुमारी कुमारदेवी का विवाह संभवतः 305 ईस्वी के आस–पास करवाया इस प्रकार गुप्त तथा लिच्छवियों के मध्य वैवाहिक संबंध स्थापित हुआ।

3.6.3 सामंतीय शासक

गुप्तवंशी शासक घटोत्कच का भी कोई अभिलेख और सिक्का अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है जिससे साक्ष्यों में प्रारम्भिक इतिहास से सम्बन्धित तथ्यों के अभाव में घटोत्कच की किसी भी उपलब्धि का ज्ञान प्राप्त नहीं होता हैं।

घटोत्कच के नाम के पूर्व भी महाराज की उपाधि प्राप्त होती हैं परंतु महाराज शब्द की इतिहासकारों ने एक स्वतन्त्र शासक के रूप में स्वीकार नहीं किया हैं तथा घटोत्कच को भी सामंत शासक बतलाया है। काशी प्रसाद जायसवाल ने प्रारम्भिक गुप्तों को लिच्छवियों का सामन्त बताया है क्योंकि गुप्तों के शासन से पूर्ण मगध पर लिच्छवियों के शासन क्षेत्र में था। सुधाकर चट्टोपाध्याय की मान्यता है कि तीसरी शताब्दी में मगध मुरुण्डों के अधीन था, अतः महाराज गुप्त तथा घटोत्कच मुरुण्डो के सामंत थे। फ्लीट तथा बनर्जी प्रारम्भिक गुप्तों को शकों का सामन्त मानते हैं जो तीसरी शताब्दी ई0 में मगध के शासक थे।

इतिहासकारों में इस विषय पर मतैक्यता का अभाव हैं और इस विविधता के कारण यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि आरम्भिक गुप्त शासक किसकी अधीनता स्वीकार करते थे तथा वे किस सार्वभौमिक शक्ति के सामंत थे अथवा वह सामंत थे भी या नहीं निश्चित रूप से यह भी नहीं कहा जा सकता हैं।

3.6.4 उपाधि

श्रीगुप्त और घटोत्कच महाराज की उपाधि धारण करते थे परन्तु महाराज शब्द भारत के कई स्वतंत्र राजवंशों जैसे **मघ, भारशि, वाकाटक तथा लिच्छवियों** में भी प्राप्त होता है। महाराजाधिराज की उपाधि धारण करने वाला प्रथम गुप्त शासक **चंद्रगुप्त प्रथम** था। ऐसी संभावना व्यक्त की जाती हैं कि शकों में प्रयुक्त क्षत्रप और महाक्षत्रप उपाधियों का अनुसरण करके ही चन्द्रगुप्त प्रथम ने

यह कार्य किया होगा तथा चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद उसके अन्य वंशजों ने भी इसी तथ्य का अनुसरण किया जिससे महाराज शब्द सामंत स्थिति को प्रदर्शित करने लगा परन्तु महाराज की उपाधि का गुप्तों के उदय के समय क्या अर्थ था तथा इस उपाधि से इनका क्या तात्पर्य था यह कहना अत्यन्त कठिन हैं। इनका साम्राज्य विस्तार अत्यन्त सीमित था जो मगध के आस–पास तक ही फैला था। यदि राज्य विस्तार की दृष्टि से देखा जाए तो श्री गुप्त व घटोत्कच दोनों ही छोटे राजा हो सकते हैं अथवा श्री गुप्त और घटोत्कच दोनों ही किसी सार्वभौमिक शक्ति के सामंत प्रतीत होते हैं।

3.6.5 शासनकाल

घटोत्कच के शासन के विषय में विद्वानों में मतैक्यता का अभाव हैं। घटोत्कच ने लगभग उन्नसी वर्षों तक शासन किया। इनका शासनकाल 300 ईस्वी से लेकर 319 ईस्वी तक प्राप्त होता है परन्तु गुप्त अभिलेखों में इससे सम्बन्धित तथ्यों का अभाव होने के कारण इससे सम्बन्धित बहुत अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती हैं।

3.7 चन्द्रगुप्त प्रथम

घटोत्कच के बाद गुप्त वंश का अगला उत्तराधिकारी घटोत्कच का पुत्र **चंद्रगुप्त प्रथम** गद्दी पर बैठा। इसका शासन काल 319 ईस्वी से 350 ईस्वी तक था। चन्द्रगुप्त प्रथम को गुप्त वंश का वास्तविक संस्थापक माना जाता हैं। इसके शासनकाल में गुप्तों की शक्ति के साथ ही साथ प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई तथा इतिहासकारों के अनुसार गुप्त वंश का पहला स्वतंत्र शासक चन्द्रगुप्त प्रथम ही था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने गुप्त वंश को एक साम्राज्य के रूप में स्थापित किया तथा यह प्रारंभिक शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली था, अपनी इस महत्ता को प्रदर्शित करने के लिए चंद्रगुप्त प्रथम ने अपने राज्यारोहण के पश्चात् महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। अभिलेखों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती हैं।

3.7.1 वैवाहिक संबंध

चंद्रगुप्त प्रथम के शासन काल एवं जीवन की पहली महत्वपूर्ण घटना गुप्तों और लिच्छवियों के बीच वैवाहिक संबंध है। लिच्छवियों का संरक्षण, सहयोग और समर्थन प्राप्त करने के लिए चन्द्रगुप्त प्रथम ने यह वैवाहिक संबंध स्थापित किया था। इससे चन्द्रगुप्त प्रथम के दूरदर्शी सम्राट होने की पुष्टि होती है। चन्द्रगुप्त प्रथम का लिच्छवी राजकुमारी कुमार देवी के साथ विवाह की पुष्टि दो प्रमाण करते हैं–

प्रथम चंद्रगुप्त प्रथम और कुमार देवी की विवाह की पुष्टि **कुमारदेवी के**

स्वर्ण सिक्के से होती हैं। यह सिक्का गुप्त काल का सबसे प्राचीनतम स्वर्ण सिक्का हैं जिसे चन्द्रगुप्त प्रथम ने जारी किया था। इस सिक्के को **चन्द्रगुप्त कुमारदेवी प्रकार, लिच्छवि प्रकार, राजा–रानी प्रकार, विवाह प्रकार** आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। **इस तरह के लगभग 25 सिक्के गाजीपुर, टांडा (अंबेडकर नगर), मथुरा, वाराणसी, अयोध्या, सीतापुर और बयाना (राजस्थान के भरतपुर जिले)** से प्रकाश में आये हैं। विभिन्न विद्वानों के अनुसार ऐसा ही एक चांदी का सिक्का भी प्राप्त हुआ हैं, सिक्के की बनावट और आकार–प्रकार स्वर्ण मुद्रा जैसा हैं। अगर इस तथ्य क पुष्टि हो जाती है तो यह प्रमाणित हो जाएगा कि गुप्त वंश में रजत मुद्रा का प्रचलन चन्द्रगुप्त द्वितीय ने न करके सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त प्रथम ने किया था। चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमार देवी प्रकार के इस सिक्के का विवरण इस प्रकार हैं–

मुख भाग–

मुख भाग पर चंद्रगुप्त प्रथम और कुमार देवी की आकृति अंकित है तथा इनके चित्रों के साथ इनके नाम भी दिखाए गए हैं। राजा रानी को कोई वस्तु देते हुए प्रदर्शित हैं जो संभवतः अंगूठी, सिंदुरदानी अथवा कंकड़ जैसी कोई वस्तु है।

पृष्ठ भाग–

इस सिक्के के पृष्ठ भाग पर सिंहवाहिनी देवी (दुर्गा) की आकृति के साथ–साथ ब्राह्मी लिपि में मुद्रा लेख **लिच्छवयः** अंकित हैं।

एलन महोदय ने इन सिक्कों को स्मारक सिक्के कहा है और इनको प्रचलित करने का श्रेय समुद्रगुप्त को दिया है जिसने अपने माता–पिता के विवाह की स्मृति के रूप में इन मुद्राओं का अंकन करवाया था।

अल्टेकर महोदय का विचार है कि कुमार देवी लिच्छवि राज्य की राजकुमारी थी तथा मुद्राओं पर लिच्छवियों का अंकन कुमार देवी के अनुरोध पर किया गया होगा। कुमार देवी अपने पिता की एक मात्र संतान थी और ये लिच्छवि राज्य की उत्तराधिकारी भी थी और कुमारदेवी के साथ विवाह होने से चन्द्रगुप्त प्रथम को लिच्छवि राज्य प्राप्त हो गया और यह मुद्रा दोनों ही राज्यों में प्रचलित करने के उद्देश्य से निर्मित करवाई गई थी।

वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि राजा रानी प्रकार के यह सिक्के लिच्छवियों ने अपनी राजकुमारी कुमार देवी के स्मृति में निर्मित करवाया था।

इन मुद्राओं को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। इन विवादों के कारण हम निश्चित रूप से किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते हैं परन्तु इन मुद्राओं को

देखने से यह प्रतीत होता है कि इन पर लिच्छवियों का प्रभाव अधिक हैं। चन्द्रगुप्त प्रथम का नाम बिना किसी सम्मान सूचक शब्द के साथ अंकित हैं जबकि कुमार देवी के नाम के आगे सम्मान सूचक शब्द 'श्री' जुड़ा हुआ है और लिच्छवि तो अंकित हैं पर गुप्तों के वर्णन नहीं हैं।

लिच्छवियों के वैवाहिक सम्बन्ध की पुष्टि करने वाला दूसरा प्रमाण समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति हैं जिसमें समुद्रगुप्त को 'लिच्छवी दौहित्र' कहा गया हैं अर्थात् वह लिच्छवी कन्या से उत्पन्न हुआ। इन साक्ष्यों के आधार पर चंद्रगुप्त और कुमारदेवी के विवाह की पुष्टि होती हैं।

3.7.2 परिणाम

इस विवाह से गुप्तों को राजनीतिक और आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ। इस विवाह से गुप्त और लिच्छवी दो राज्यों का एकीकरण हो गया। कुमार देवी वैशाली के लिच्छवी राज्य की उत्तराधिकारी थी इसलिए कुमार देवी के पिता के मरने पर चंद्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवि राज्य पर अधिकार स्थापित कर लिया।

के.पी. जायसवाल का मानना है कि गुप्तों ने लिच्छवियों की सहायता से किसी क्षत्रिय राजा को पराजित कर मगध राज्य पर अधिकार कर लिया।

परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार लिच्छवि नरेश पुत्रहीन मरे होंगे, और पुत्र के अभाव में पुत्री और उसके पति का अधिकार उनके राज्य पर हुआ होगा।

वी. ए. स्मिथ के अनुसार कुमार देवी अपने पति के लिए दहेज के रूप में बहुमूल्य प्रभाव क्षेत्र लाई जिससे कालान्तर में चंद्रगुप्त प्रथम ने मगध और आसपास के क्षेत्रों में अपनी स्थिति मजबूत कर ली थी। वैशाली का लिच्छवि वंश इस समय किसी विस्तृत साम्राज्य का स्वामी नहीं था परन्तु प्राचीन क्षत्रिय वंश होने के कारण इसे जो सम्मान प्राप्त था उससे नवोदित गुप्त वंश को राजनीतिक लाभ प्राप्त हुआ।

श्रीराम गोयल लिच्छवि– गुप्त के वैवाहिक संबंध को नाग वाकटाक गठबंधन का परिणाम मानते हैं। इसी कारण गुप्तों ने राजनीतिक वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इससे उन्हें कुछ आर्थिक लाभ भी प्राप्त हुए होंगे क्योंकि लिच्छवि राज्य आर्थिक रूप से भी अत्यन्त संपन्न थ। इसमें बहुमूल्य रत्नों की खानें थी। बुद्धघोष के टीका सुमंगलवासिनी से यह पता चलता है कि पांचवीं शताब्दी ईस्वी में मगध नरेश अजातशत्रु का लिच्छवियों से संघर्ष बहुमूल्य खानों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए हुआ था तथा मगध पर आधिपत्य से गुप्त शासकों का वर्तमान झारखंड की बहुमूल्य खानों पर भी नियंत्रण स्थापित हो गया।

एलन महोदय इस संबंध को सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बताते हैं और यह

मत व्यक्त करते हैं कि लिच्छवियों की सामाजिक कुलीनता के कारण ही गुप्तों को लिच्छवि रक्त पर गर्व था परन्तु यह तथ्य सहीं प्रमाणित नहीं होता हैं क्योंकि तत्कालीन समाज में लिच्छवियों की प्रतिष्ठा अच्छी नहीं थी। **मनुस्मृति में लिच्छवियों को धर्मच्युत कहा गया हैं।** अतः गुप्त लिच्छवि संबंध सामाजिक दृष्टि से कम और राजनीतिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण प्रदर्शित होता है।

इस समय लिच्छवि के दो राज्यों की सूचना मिलती हैं जो वैशाली एवं नेपाल के राज्य थे। लिच्छवियों का प्राचीन राज्य वैशाली था तथा नेपाल में प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी ई0 में उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया। वैशाली के राज्य को चन्द्रगुप्त प्रथम ने कुमार देवी के साथ विवाह कर प्राप्त कर लिया था तथा नेपाल का राज्य समुद्रगुप्त के समय गुप्त साम्राज्य का हिस्सा बना। प्रयाग प्रशस्ति में नेपाल का उल्लेख प्रत्यन्त राज्य के रूप में है। आरम्भ में लिच्छवि एक गणराज्य था जो इस समय तक राज तन्त्रात्मक हो गया तथा कुमार देवी लिच्छवि राज्य की उत्तराधिकारी बनी। इसी कारण से चंद्रगुप्त को विवाह के पश्चात् उसका राज्य प्राप्त हुआ।

हेमचंद्रराय चौधरी की मान्यता है कि चंद्रगुप्त ने शाासक बिम्बिसार के भांति लिच्छवि राजकुमारी से विवाह कर द्वितीय मगध साम्राज्य की नींव डाली। संभवतः इसी विवाह के फलस्वरूप चंद्रगुप्त ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की और अपने विवाह की स्मृति में राजा रानी प्रकार का सिक्का चलवाया।

स्मृतियों में कहा गया है कि पुत्र न होने पर पुत्री का पुत्र उत्तराधिकारी होता हैं। इस आधार पर लिच्छवि के वैध उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त के वयस्क होने तक चन्द्रगुप्त ने कुमार देवी के साथ संयुक्त रूप से शासन किया और समुद्रगुप्त के वयस्क होने पर अधिकार सौंप कर सन्यास ले लिया। इस तथ्य की पुष्टि **प्रयाग प्रशस्ति, एरण अभिलेख तथा रिद्धपुर अभिलेख** से भी होता हैं। चंद्रगुप्त प्रथम ने नवोदित गुप्त राज्य को राजनीतिक सम्मान दिलाया, और समुद्रगुप्त ने इसे एक विशाल साम्राज्य के रूप में स्थापित किया।

इस प्रकार चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमार देवी के विवाह से पूर्वी भारत के दो राज्यों का एकीकरण हुआ और चंद्रगुप्त प्रथम की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति मजबूत हुई तथा चंद्रगुप्त प्रथम को एक बड़े साम्राज्य की प्राप्ति हुई।

3.7.3 साम्राज्य विस्तार तथा विजय अभियान

चन्द्रगुप्त प्रथम से संबंधित कोई भी ऐसा अभिलेख प्राप्त नहीं होता हैं, जिससे उसके राज्य विस्तार का पता लगाया जा सके अथवा उसके साम्राज्य सीमा का निर्धारण किया जा सके। चन्द्रगुप्त के उत्तराधिकारियों और पुराणों के आधार पर

इसका साम्राज्य विस्तार आधुनिक बिहार, बंगाल के कुछ इलाके और पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिकांश भौगोलिक क्षेत्र तक विस्तृत था।

पुराणों में मगध, साकेत व प्रयाग को गुप्तों को क्षेत्र बताया गया हैं। वायु पुराण में कहा गया हैं कि ''गुप्त वंश के लोग गंगा के किनारे प्रयाग तक तथा साकेत और मगध के प्रदेशों पर शासन करेंगे।'' इसमें गुप्त वंश का विस्तार पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में प्रयाग तक बताया गया हैं। यह साम्राज्य सीमा चंद्रगुप्त प्रथम की है, क्योंकि उसके पूर्ववर्ती दोनों शासक साधारण कोटि के थे और उसके बाद का शासक समुद्रगुप्त का साम्राज्य विस्तार इससे अत्यधिक विस्तृत था जिसकी पुष्टि प्रयाग प्रशस्ति से होती हैं। प्रयाग प्रशस्ति अभिलेख के अनुसार आर्यावर्त तथा दक्षिणावर्त में समुद्रगुप्त का शासन था किंतु पश्चिम की ओर प्रयाग के पूर्व में गंगा नदी तक के भू–भाग पर विजय का उल्लेख नहीं मिलता हैं।

रायचौधरी के मतानुसार कौशांबी तथा कोशल के मघ राजाओं को चंद्रगुप्त ने जीतकर उन राज्यों पर अपना एक छत्र शासन स्थापित किया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त प्रथम के साम्राज्य का विस्तार बिहार और उत्तर प्रदेश के अधिकतर भागों तक माना जाता हैं।

परमेश्वरी लाल गुप्त के मातनुसार उसके पुत्र समुद्रगुप्त के द्वारा विजित क्षेत्रों पर चंद्रगुप्त प्रथम का राज्य उत्तर में वाराणसी के आगे गंगा के उत्तर में नहीं होगा, लेकिन उसके राज्य में मध्यप्रदेश के बिलासपुर (वर्तमान में छत्तीसगढ़), रायपुर, संभलपुर, और गंजाम जिले के कुछ हिस्से सम्मिलित होंगे। पश्चिम में विदिशा की सीमा तक तथा पूर्व में बिहार और बंगाल का कुछ क्षेत्र चंद्रगुप्त प्रथम के राज्य में शामिल थे।

3.7.4 गुप्त संवत का प्रवर्तन

चन्द्रगुप्त प्रथम को इतिहास में एक नये संवत् के प्रवर्तन का श्रेय दिया जाता हैं। इसने अपने राज्यारोहरण के उपलक्ष्य में गुप्त संवत् का प्रारम्भ किया। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में गुप्त संवत् को गुप्त काल कहा गया हैं। जे. एफ. फ्लीट गुप्त संवत् का प्रचलन 319–320 ईस्वी में मानते हैं तथा अलबरूनी गुप्त संवत् एवम शक संवत् के मध्य में 241 वर्षों का अन्तर बताते हैं।

शाम शास्त्री प्रभृति विद्वान इस संवत् की प्रारंभिक तिथि 272 ईस्वी स्वीकार करते हैं परन्तु प्रमाणों के आधार पर फ्लीट की तिथि अधिक तर्क संगत प्रतीत होती हैं क्योंकि कुमारगुप्त प्रथम की प्रथम ज्ञात तिथि गुप्त संवत् 96 तथा अंतिम तिथि गुप्त संवत् 136 है तथा मन्दसोर अभिलेख की तिथि 436 ई0 है। अब यदि गुप्त संवत्

को 319 ई0 से प्रारम्भ माना जाये तो कुमार गुप्त का शासन 414–453 ई0 के मध्य आयेगा जो कि उसके शासन काल का भाग है परन्तु यदि हम गुप्त संवत् का आरम्भ 200 अथवा 272 ई0 माने तो मन्दसोर तिथि में अंकित तिथि उसके शासन काल के बाहर जायेगी।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की शासन अवधि गुप्त संवत् के अनुसार 375 ईस्वी से आरंभ होती हैं और शकों की मुद्राओं में शकों की अन्तिम तिथि 304 शक संवत् अंकित है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में शकों की पराजय हुई थी और ऐसा भी सम्भव है जब हम गुप्त संवत् की तिथि 319 ईस्वी मानते हैं।

शशांक के गंजाम लेख में गुप्त संवत् 300 अंकित हैं और यह शासक हर्ष का समकालीन था। गुप्त संवत् की तिथि 319 ईस्वी मानने पर गंजाम लेख की तिथि हर्षवर्धन के समकालीन आती हैं। इन सभी तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता हैं कि गुप्त संवत् का आरंभ 319 ईस्वी में हुआ होगा।

चन्द्रगुप्त ने 319 से लेकर 335 ईस्वी तक राज्य किया। एलन, फ्लीट और स्मिथ मानते हैं कि चंद्रगुप्त प्रथम की मृत्यु 335 ईस्वी में हुई। रमेश चंद्र मजूमदार और परमेश्वरी लाल गुप्त के अनुसार 338 ईस्वी से 345 ईस्वी के मध्य चंद्रगुप्त प्रथम ने अपने पुत्र के लिए राज्य त्याग दिया परन्तु वह कब तक जीवित रहा इसका कोई साक्ष्य नहीं मिलता है।

3.8 मूल्यांकन

श्रीगुप्त और घटोत्कच के द्वारा स्थापित गुप्त वंश के चंद्रगुप्त प्रथम ने अपने वैवाहिक संबंध के द्वारा विस्तारित किया। अपने पितामह और पिता की तरह चन्द्रगुप्त प्रथम ने भी उपाधि धारण की परन्तु इसने महाराज की जगह महाराजाधिराज की उपाधि धारण की तथा इसने अपने राज्यारोहण के बाद गुप्त संवत् का प्रारम्भ किया तथा गुप्त वंश के आरंभिक सिक्के भी चंद्रगुप्त प्रथम द्वारा ही चलवाए गए। निःसंदेह यह एक महान शाासक था कुछ इतिहासकार इसे गुप्त वंश की स्वतंत्रता का जन्मदाता मानते हैं। चंद्रगुप्त प्रथम अपने वंश क वास्तविक संस्थापक था जिसने गुप्त वंश को एक सुदृढ़ और मजबूत नींव प्रदान की।

3.9 सारांश

तीसरी शताब्दी ई0 में पूर्वी भारत में गुप्त वंश का उदय हुआ, जिसका इतिहास उसके अभिलेखों, सिक्कों और साहित्य से ज्ञात होता हैं। गुप्त वंश के आरम्भिक शासक श्रीगुप्त और घटोत्कच महाराजा की उपाधि धारण करने वाले छोटे राजा थे, जो वाराणसी के आस–पास के क्षेत्रों में निवास करते थे। घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवि राजकुमारी कुमार देवी से विवाह कर गुप्त वंश की

प्रतिष्ठा में वृद्धि की। इस विवाह से बिहार, बंगाल और उत्तर प्रदेश का बहुत बड़ा भाग गुप्तों के अधीन हो गया। चंद्रगुप्त प्रथम ने महाराजधिराज की उपाधि धारण की, गुप्त संवत् का प्रारम्भ किया, सिक्के चलवाए और गुप्त वंश को एक प्रतिष्ठित राजवंश के रूप में स्थापित किया तथा परवर्ती गुप्त राजाओं के लिए एक सशक्त राज्य की आधारशिला स्थापित की।

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. गुप्तों के प्रारम्भिक इतिहास पर टिप्पणी कीजिए तथा गुप्त वंश के संस्थापक के विषय में विद्वानों के मतों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
2. चन्द्रगुप्त प्रथम के समय की प्रमुख घटनाओं पर निबंध लिखिए।
3. चंद्रगुप्त प्रथम एवं कुमार देवी के वैवाहिक संबंध के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं सहायक पाठय सामग्री

1. श्रीवास्तव, के. सी., प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, प्रयागराज, 2021–22
2. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, 2011
3. बनर्जी, राखलदास, द एज ऑफ इंपीरियल गुप्ताज, वाराणसी, 1933
4. स्मिथ विंसेंट, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड, 1924
5. उपाध्याय, वासुदेवशरण, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, 1957
6. थापर, रोमिला, भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1975
7. शर्मा, रामशरण, प्रारंभिक भारत का परिचय, नई दिल्ली, 2009

झा, द्विजेंद्र नाथ एवं श्रीमाली, के. एम., प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1994

8. सिंह, उपन्दिर, प्राचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास (प्राचीन काल से 12वीं शताब्दी तक)

इकाई–4 समुद्रगुप्त की उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य विस्तार, रामगुप्त की ऐतिहासिकता

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 समुद्रगुप्त के लेख एवं सिक्के

4.4 कुटुंब और शासन प्राप्ति

4.5 साम्राज्य विस्तार और उसकी उपलब्धियां

4.6 समुद्रगुप्त के विदेश राज्यों से संपर्क

4.7 रामगुप्त की ऐतिहासिकता

4.8 मूल्यांकन

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.10 संदर्भ ग्रंथ एवं सहायक पाठ्य पुस्तक

4.1 प्रस्तावना

चंद्रगुप्त प्रथम ने अपने और कुमार देवी के पुत्र समुद्र गुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था तथापि राज्यरोहण प्राप्ति के लिए समुद्र उसको अपने संबंधियों से संघर्ष करना पड़ा। वह गुप्त वंश काशक्तिशाली और साम्राज्य के शासक सिद्ध हुआ वरन् एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया तथा गुप्त साम्राज्य को अपनी नीतियों से दृढ़ता प्रदान की।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से हम जान सकेंगे

- गुप्त वंश के साम्राज्यवादी शासक समुद्रगुप्त के शासनकाल तथा संबंधित विभिन्न सिद्धांतो को जान सकेंगे।
- प्रयाग प्रशस्ति तथा उसके द्वारा जारी किए गए सिक्को के विषय में जान सकेंगे।
- उसके विजित अभियान तथा विभिन्न राज्यों के संबंध में उसकी नीतियों को जान सकेंगे।
- समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व का चरित्र का विश्लेषण कर सकेंगे।

- रामगुप्त की ऐतिहासिकता का विवरण प्राप्त होगा।

4.3 समुद्रगुप्त के लेख एवं सिक्के

गुप्त काल के सबसे पहले अभिलेख समुद्रगुप्त के समय से प्राप्त हुए हैं। प्रयाग प्रशस्ति 35 फुट ऊंचे पत्थर के गोल स्तन पर अंकित है या एक चप्पू काव्य है। जिसकी रचना समुद्रगुप्त के संधिविग्रहक हरिसेन ने की जो ध्रुवभूति का पुत्र था। यह प्रशस्ति प्रयाग में गंगा यमुना के संगम तट पर स्थित दुर्ग में है। किन्तु चीनी यात्री युवांग च्वांग के प्रयाग वर्णन में इस प्रशस्ति का उल्लेख न होने के कारण विद्वान मानते हैं कि यह यहां से पहले कौशांबी में था। इस अभिलेख को सर्वप्रथम 1834 ई में एक टायर ने प्रकाशित किया है। फ्लीट द्वारा इसका संपादन निष्कर्ष प्रशस्ति लेख के अलंकृत वाक्यांश के आधार पर होने के कारण सर्वथा मान्यत नहीं है। इसके गुणों और सैनिक सफलताओं का वर्णन है। उत्तरदायित्व एवं राज्य शासन प्राप्ति के संबंध में उल्लेख है स्पष्ट नहीं दिखते हैं। इस अभिलेख में समुद्रगुप्त की विजयो की न तिथियां है और न ही उनमें कोई तिथि क्रम है।

एरण का लेख रू समुद्रगुप्त का एक खंडित लेख एरण (सागर, मध्य प्रदेश) से भी मिला है, जो संभवतः किसी सामंत द्वारा उत्कीर्ण कराया गया था। इस लेख में समुद्रगुप्त को पृथु, राघव आदि राजाओं से बढ़कर दानी कहा गया है, जो प्रसन्न होने पर कुबेर तथा रुष्ट होने पर यमराज के समान था। लेख से पता चलता है कि ऐरिकिण प्रदेश (एरण) उसका भोगनगर था। संभवतः समुद्रगुप्त ने अपने दक्षिण भारतीय अभियान के दौरान एरण को ही अपना सैनिक केंद्र बनाया था।

गया एवं नालंदा के ताम्रफलक लेखरू इसके अलावा गया तथा नालंदा से दो ताम्रफलक लेख प्राप्त हुए हैं। इनमें समुद्रगुप्त का नाम और उसकी उपलब्धियाँ उल्लिखित हैं। किंतु फ्लीट और दिनेशचंद्र सरकार जैसे इतिहासकार इस लेख को जाली मानते हैं। नालंदा के ताम्रफलक लेख को यद्यपि के खारमेशचंद्र मजूमदार समुद्रगुप्त की मौलिक मुद्रा मानने का आग्रह करते हैं, किंतु कुछ विद्वान् इसे भी कूटरचित मानते हैं।

मुद्रा – साक्ष्यःसमुद्रगुप्त की छः प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ मिली हैं जिन्हें गरुड़, धनुर्धर, परशु, अश्वमेध, व्याघ्रनिहंता एवं वीणावादन प्रकार के नाम से जाना जाता है। इन मुद्राओं से उसकी अभिरुचि और राज्यकाल की घटनाओं की सूचना मिलती है। इनमें से गरुड़, धनुर्धर, परशु जैसी मुद्राएँ उसके सैनिक जीवन से संबंधित लगती हैं।

गुप्त साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिए मुख्य श्रेय समुद्रगुप्त को ही हैं। समुद्रगुप्त की दिग्विजय के फलस्वरुप मगध और प्रयाग के बीच गंगा के

तटवर्ती मैदान में प्रदेशों का छोटा सा राज्य बढ़कर एक विशाल साम्राज्य बन गया।

4.4 कुटुंब और शासन प्राप्ति

समुद्रगुप्त चंद्रगुप्त प्रथम और कुमारदेवी का पुत्र था। उनकी माता का संबंध लिच्छवी वंश से था। उसका विवाह दत्त देवी के साथ हुआ था। जो संभवतरू कदंब वंश शासक कुकुत्स्थवर्मन की पुत्री थी। परमेश्वरी लाल गुप्ता का मानना है कि उसका विवाह देवी से दक्षिण भारत अभियान का समय हुआ होगा। एरण लेख में कहा गया है कि समुद्र के अनेक पुत्र और पौत्र थे। प्रयाग प्रशस्ति में चंद्रगुप्त प्रथम द्वारा समुद्र को भरी सभा में राज्य प्रदान करने का वर्णन किया गया है। रमेश चंद्र मजूमदार के अनुसार समुद्र गुप्त के राज्यरोहण की तारीख 340–350 ई मानी जाती है। कुछ विद्वानों के अनुसार काच समुद्रगुप्त का भाई था जिसके साथ उसे राज्य सता का संघर्ष करना पड़ा। प्रयाग प्रशस्ति से पता चलता है कि चंद्रगुप्त प्रथम के अनेक पुत्रों में समुद्रगुप्त सबसे योग्य और प्रतिभाशाली था। लिच्छवि राजकुमारी कुमारदेवी का पुत्र होने के कारण भी उसका विशेष महत्त्व था। चंद्रगुप्त ने उसे ही अपना उत्तराधिकारी चुना और अपने इस निर्णय को राज्यसभा बुलाकर सभी सभ्यों के सम्मुख उद्घोषित किया। इस समय प्रसन्नता के कारण उसका सारा शरीर रोमांचित हो उठा था और आँखों में आँसू छलक गये थे। उसने सबके सामने समुद्रगुप्त को गले लगाया और कहा, श्तुम सचमुच आर्य हो, और अब राज्य का पालन करो।श इस निर्णय से राज्यसभा में एकत्र हुए सभी सभ्यों को प्रसन्नता हुई, किंतु अन्य राजकुमारों (तुल्यकुलजों) के मुख मलीन हो गये। चंद्रगुप्त द्वारा समुद्रगुप्त को उत्तराधिकारी नियुक्त करने के निर्णय से संभवतः उसके अन्य पुत्र प्रसन्न नहीं हुए।वाकाटक लेखों में भी समुद्रगुप्त के लिए श्तत्पादपरिगृहीतश शब्द प्रयुक्त है, जिससे स्पष्ट है कि चंद्रगुप्त ने अनेक राजकुमारों में से पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। रमेशचंद्र मजूमदार का अनुमान है कि है समुद्रगुप्त का राज्याभिषेक कर चंद्रगुप्त ने संन्यास ग्रहण कर लिया था।

4.5 साम्राज्य विस्तार एवं उसकी उपलब्धियाँ

इसकी राजधानी पद्मावती थी। पद्मावती की पहचान ग्वालियर (मध्य प्रदेश) में स्थित आधुनिक पद्म–पवाया से की जाती है। इस स्थान से नाग–मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं, जिससे लगता है कि यहाँ भी नाग वंश की कोई शाखा शासन कर रही थी। काशीप्रसाद जायसवाल इसे मथुरा का शासक मानते हैं।

अच्युत और नागसेन संभवतः भारशिव के नागवंश से संबंधित थे। यद्यपि भारशिव नागों की शक्ति का पहले ही पतन हो चुका था, किंतु कुछ क्षेत्रों में इनके

छोटे–छोटे शासक अब भी शासन कर रहे थे। पराक्रमी समुद्रगुप्त ने श्धरणिबंधश के उच्च– आदर्श को प्राप्त करने के लिए इन नागवंशीय शासकों को पराजित कर उत्तर भारत में अपनी सत्ता को सुदृढ़ आधार प्रदान किया और अपनी राजकीय मुद्राओं के ऊपर गरुड़ के को अंकित करना प्रारंभ किया।

कु–कोलकुल में उत्पन्न इस शासक का नाम प्रयाग प्रशस्ति में मिट गया है और मात्रा श्गश अक्षर शेष है। दिनेशचंद्र सरकार जैसे विद्वानों का अनुमान है कि यह गणपतिनाग हो सकता है, जिसका उल्लेख प्रशस्ति की इक्कीसवीं पंक्ति में है।

काशीप्रसाद जायसवाल भ्रमवश कोटकुल की पहचान कौमुदीमहोत्सव में उल्लखित मगधवंश के कल्याणवर्मा से करते हैं। श्कोटश नामांकित कुछ मुद्राएँ पंजाब और दिल्ली से प्राप्त हुई हैं, जिससे लगता है कि इस राजकुल का शासन संभवतः इसी प्रदेश में था। रमेशचंद्र मजूमदार के अनुसार कोतकुल शासक कान्यकुब्ज (पुष्पपुर) का शासक था।

समुद्रगुप्त का दक्षिणापथ अभिमान

समुद्रगुप्त ने दक्षिण मे अभियान चलाया अभिमान। वह दक्षिण भारत के 12 राज्यों पर विजय प्राप्त करने में सफल रहा. समुद्रगुप्त ने दक्षिण के राज्यों के प्रति नीति निर्धारित करने में एक कुशल नीतिज्ञ होने का परिचय दिया. वह अपने साधनों और सामर्थ्य भली– भांति जानता था. उसे ये बात अच्छी तरह पता था कि इन राज्यों में स्थाई रूप से राज्य करना असंभव होगा. समुद्रगुप्त के दक्षिणी अभियान का उद्देश्य वहां के राज्यों को गुप्त साम्राज्य में मिलाना नहीं बल्कि वहां के राजाओं को अपनी प्रभुत्व स्वीकार कराना था. अतः समुद्रगुप्त ने सभी राजाओं को बंदी बनाने के पश्चात उनसे कुछ भेंट और राजस्व आदि लेकर संतुष्ट हो गया और उन्हें अपने–अपने राज्य में शासन करने के लिए मुफ्त कर दिया. समुद्रगुप्त के द्वारा दक्षिण में जीते हुए राज्यों में कोशल,महाकान्तार, कोराल, पिष्टपुर, कांची, वेंगी, देवराष्ट्र आदि प्रमुख थे.

1–कौशल का महेन्द्र, महाकौशल नामक मध्य भारत में इस समय एक महाकौशल नामक प्रसिद्ध राज्य था जिसे भी कहते हैं। इस राज्य में वर्तमान मध्यप्रदेश के विलासपुर और रायपुर आदि क्षेत्र सम्मिलित थे सम्भलपुर, विलासपुर, और रामपुर आदि क्षेत्र सम्मिलित हैं।

2–महाकान्तर का व्याघ्रराज प्रो० राय चौधरी ने महाकन्तर को किसी स्थान विशेष स्थान विशेष का नाम न मानकर उसे मध्यभारत में स्थित कोई वन प्रान्त ही माना है। उनका कथन राज्य में है कि यह वन प्रान्त सम्भवतः जासो रहा होगा। प्रो० रामदास के मतानुसार यह प्रदेश गंजाम और विजिगापटटम को झाड़मन्ड

एजेन्सी के वन्य प्रदेश है।

3–कौशल का मन्तराज–कुछ विद्वानों के मतानुसार कौशल और दक्षिण भारत का कराउ एक स्थान है किन्तु अन्य विद्वान लेखकों ने इसे सोनपुर प्रान्त ही बतलाया है। इस प्रान्त की राजधानी ययाति नगरी थी जो महानदी के तट पर स्थित थी

4–**पिष्टपुर का महेन्द्र**–मद्रास प्रांत में स्थित गोदावरी जिले का नगर पीठपुरम हीपिष्टी पुर है। यहाँ का शासक महेन्द्र के नाम से प्रसिद्ध था।

5–कोट्टीगरि–यह सम्भवतरू गोदावरी जिले के काठूर प्रदेश है।

6–एरण्डपल्ल– गंजाम जिसे चींकाकोल नामक स्थान के निकट एरण्डपल्ली है, जिसे उस समय एरण्डपल्ल कहते है

7–काण्वी–मद्रास के निकट वर्तमान काजोपरम् उस समय काण्वी के नाम से प्रसिद्ध था

8–अवमुक्र का नलराज –इतिहास कारों में अवमुक्र के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। खारवेल्ल के लेख में आधार हाथी गुड़वाने आव जाति के प्रति किंचित उल्लेख मिलते हैं जिनके पर यह निश्चित किया जा सकता है कि आव प्रान्त की राजधानी गोदावरी के समीप पिवृद्धा थी। यहाँ का राजा नीलराज बताया जाता है।

9–बैंगी का हस्तिर्वमन– एल्लौर में स्थित पेड्डु वेगो को बैंगा कहते थे।

10–पालक्क–नंलौर जिसे में स्थित पालकक का शासक उग्रसेन था।

11–देव राष्ट्र का कुबेर –बिजगापट्टम जिले में चल्लमी चलो नामक स्थान का नाम देवराष्ट्र था। जहाँ के शासक वुबैर के नाम से प्रसिद्ध थे

12–कुस्थलपुर का धनंजय– उस स्थान का अभिप्राय अरकार जिले के उत्तर में स्थित कुट्टूलर से है।

आर्यावर्त्त का द्वितीय युद्ध

दक्षिणापथ के अभियान से निवृत्त होने के पश्चात् समुद्रगुप्त ने उत्तर भारत में पुनः एक युद्ध किया जिसे 'आर्यावर्त्त का द्वितीय युद्धश कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम युद्ध में उसने उत्तर भारत के राजाओं को केवल परास्त ही किया था, उनका उन्मूलन नहीं।

राजधानी में उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उत्तर के शासकों ने होने की चेष्टा की। अतरू दक्षिण की विजय से वापस लौटने के बाद समुद्रगुप्त ने पुनः स्वतन्त्र उन्हें पूर्णतया उखाड़ फेंका। इस नीति को प्रशस्ति में श्प्रसभोद्धरणश कहा गया है।

यह दक्षिण में अपनाई गयी श्ग्रहणमोक्षानुग्रहश की नीति के प्रतिकूल थी। समुद्रगुप्त ने उत्तर भारत के राजाओं का विनाश कर उनके राज्यों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। प्रयाग प्रशस्ति की इक्कीसवीं पंक्ति में आर्यावर्त्त के नौ राजाओं का उल्लेख हुआ है। उल्लेखनीय है कि यहाँ उनके राज्यों के नाम नहीं दिये गये हैं।इस प्रकार हैंरू

(i) रुद्रदेव,

(ii) मत्तिल

(iii) नागदत्त,

(iv) चन्द्रवर्मा,

(v) गणपतिनाग,

(vi) नागसेन,

(vii) अच्युत,

(viii) नन्दि,

(ix) बलवर्मा।

उपर्युक्त शासकों में से अनेक के राज्यों की ठीक–ठीक पहचान नहीं की जा सकती। रुद्रदेव सम्भवतरू कौशाम्बी का राजा था जहाँ से रुद्र नामांकित कुछ मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। बुलन्दशहर से श्मत्तिलश के नाम की एक मुद्रा मिली है, अतरू वह इसी भाग का शासक रहा होगा।

नागदत्त के राज्य की पहचान संदिग्ध है। चन्द्रवर्मा पश्चिमी बंगाल के बांकुड़ा जिले का शासक था। वहाँ सुसुनिया पहाड़ी से उसका लेख मिला है। गणपतिनाग तथा नागसेन निश्चयतरू नागवंशी शासक थे जो क्रमशः मथुरा और पद्मावती में शासन करते थे।

अच्युत, अहिच्छत्र (बरेली) का राजा था। नन्दि तथा बलवर्मा के राज्यों की सही पहचान नहीं की जा सकती। आर्यावर्त्त के द्वितीय युद्ध के परिणामस्वरूप समुद्रगुप्त ने समस्त उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के एक भाग पर अपना अधिकार सुदृढ़ कर लिया।

आटविक राज्यों की विजयरू प्रशस्ति की इक्कीसवीं पंक्ति में ही आटविक राज्यों की भी चर्चा हुई है। इनके विषय में यह बताया गया है कि समुद्रगुप्त ने श्सभी आटविक राज्यों को अपना सेवक बना लियाश (परिचारकीकृत सर्वाटविकराज्यस्य)। फ्लीट के मतानुसार उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले से लेकर

मध्यप्रदेश के पुर– प्रदेश में ये सभी राज्य फैले हुये थे।

उत्तर तथा दक्षिण भारत के बीच के आवागमन को सुरक्षित रखने के लिये उन्हें नियन्त्रण में रखना आवश्यक था। लगता है कि जब समुद्रगुप्त दक्षिणी अभियान पर जा रहा था, इन राज्यों ने उसके मार्ग में अवरोध उत्पन्न किया। अतरू उसने उन्हें जीतकर पूर्णतया अपने नियन्त्रण में कर लिया

सीमावर्ती राज्य

सीमान्त राज्य – इन विजयों से समुद्र गुप्त की धाक सारे भारत में जम गयी। उत्तरपूर्व के सीमान्त राज्य और पंजाब मालवा तथा मध्यप्रदेश के गणराज्य आंतकित हो गये उन्होंने समार की अधीनता स्वीकार कर उन्हें कर देकर सम्मानित किया। उत्तरी तथा उत्तरी–पूर्वी सीमा पर स्थित राज्यों की संख्या पाँच है और वे सभी राजतन्त्र हैंरू

(1) समतट,

(2) डवाक

(3) कामरूप,

(4) कर्त्तृपुर,

(5) नेपाल।

इन राज्यों के बाद आदि शब्द लिखा मिलता हैं जो छोटे राज्य रहे होंगे।

(1) मालव,

(2) अर्जुनायन,

(3) यौधेय,

(4) मद्रक,

(5) आभीर,

(6) प्रार्जुन,

(7) सनकानीक,

(8) काक,

प9) खरपरिक।

विजित प्रदेशों के प्रति

समुद्रगुप्त ने विजित राज्यों के प्रति अलग–अलग नीति अपनायी। आर्यावत के राज्यों का उसने पूर्ण उन्मूलन करके उन पर अधिकार कर लिया और अपने साम्राज्य का विस्तार किया। आर्यावर्त के राज्यों के विपरीत दक्षिणापथ के राज्यों को उसने कृपापूर्वक छोड़ दिया। उसकी दक्षिण विजय की नीति ग्रहण (शत्रु पर अधिकार) मोक्ष (शत्रु को मुक्त करना) और अनुग्रह (राज्य को लौटाकर शत्रु पर दया करना) पर आधारित थी। यह प्रतीत होता है कि सुदूर राज्यों पर नियंत्रण स्थापित करने में व्यवहारिक बाधायें आ सकती हैं, ऐसा सोचकर उसने दक्षिणापथ के राज्यों पर अधिकार नहीं किया। उसके दक्षिणापथ अभियान का उद्देश्य आर्थिक भी हो सकता था। पूर्वी घाट पर स्थित राज्यों के राजाओं का राजकोष सम्पन्न रहा होगा और समुद्रगुप्त उस कोष को प्राप्त करने के लिए ही दक्षिण गया होगा। दक्षिण के पश्चिमी घाट में वाकाटक शासकों के साथ उसने कोई संघर्ष नहीं किया, इससे प्रतीत होता है कि गुप्तों और वाकाटकों के मध्य कोई अनाक्रमण सन्धि रही होगी, जो कालान्तर तक चलती रही थी।

4.6 समुद्रगुप्त को विदेशी राज्य से सम्पर्क

समुद्रगुप्त को युद्ध इन विजयों और उनके शायद ए खाने की चर्चा विदेशों भी फैलने लगी अतः सुमद्रगुप्त की मारी शक्ति से आतंकित अनेक विदेशी राज्यों में स्वेच्छा से आत्मसमर्पण करके उसके संरक्षण में रहती स्वीकार और उसे रहना मरण, सुन्दर कुमारियों तथा अनेक मूल्यवान पर्याय भेंट करके प्रसन्न रखने का प्रयास कियाचा इस प्रकार, के शासकों में पश्चिमी पंजाब में आपक शासन करने वाले देवपुत्र तथा अफगानिस्तान के शाही वंश के भासक थे। ये दोनों उनके अतिरिक्त भक, मुझुण्डु शासक कुषाण वंशीय थे और सिंघल द्वीप के राजा के नाम भी इसी श्रेणी के भासकों में आते हैं। प्रयाग के अशोक स्तम्म पर खुदी हुई समुद्रगुप्त को में इनका उल्लेख किया गया है। सिंघल द्वीप प्रशान्त भासक मेघर्वण समुद्रगुप्त समकालीन था। उसने का एक बार अपने देश के कुछ बौद्ध भिक्षुओं को वोधगया को तीर्थयात्रा के लिए भेजा। उन्हें वर्षा भारी असुविधा हुई। मेघवंश को से समुद्रगुप्त जब बौद्ध भिक्षुओं की कठिनाइ दरवार में केजा ने मेघवर्ण को विहार निर्माण की समुद्र गुफ आकांक्षा प्रदान की––मेघवण ने बोधगया में उपाए अपार धन राशि व्यय करके उसमें कराई भगवान यह एक विशाल बिहार निमित कराया और बुद्ध की रत्नाटिल मूर्ति की प्रतिष् बिहार महावौधि संघाराम के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

4.7 रामगुप्त

समुद्रगुप्त के मरने के बाद उसका बड़ा पुत्र रामगुप्त राजसिंहासन पर बैठा। विशाखदत्त के नाटक देवी चन्द्रगुप्तम से जिसके अंश मात्र उपलब्ध हुए है। यह पता चलता है कि समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी रामगुप्त था। रामगुप्त की पत्नी का नाम ध्रुव देवी अथवा धुवस्वामिनी था। रामगुप्त बड़ा ही मी तथा कायर सम्राट था।

कहा जाता है कि रामगुप्त का एक शक सम्राट के साथ संघर्ष हुआ था इस युद्ध में शकों ने रामगुप्त को घेर लिया था। इस प्रकार रामगुप्त की प्रजा घोर विपत्ति में पड़ गई थी अपनी प्रजा की सुरक्षा के लिए रामगुप्त ने अपनी पत्नी भुवदेवी को शक शासक को सौंपने का फैसला कर लिया। धुयदेवी ने अपने भीरू पति का घोर विरोध किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने भाई के इस कार्य की निन्दा की तथा घोर विरोध किया। उसने साम्राज्य की मान मर्यादा की रक्षा के लिए घुवदेवी के भेष में जाकर शक राजा की हत्या कर दी। इस कार्य से चन्द्रगुप्त द्वितीय अपनी प्रजा तथा धुवदेवी की नजर में ऊपर उठ गया। इस घटना के बाद दोनों भाइयों में अनबन हो गयी। रामगुप्त में चन्द्रगुप्त के प्राण लेने के लिए षडयन्त्र करने लगा। अतएव चन्द्रगुप्त ने आत्मरक्षा के लिए पागलपन का बहाना कर दिया। अवसर पाकर उसने रामगुप्त की हत्या कर डाली और उसकी विधवा से विवाह करके स्वयं सम्राट बन बैठा।

रामगुप्त ने किस शक राजा से युद्ध किया था यह कौन था इस पर विद्वानों में बड़ा मतभेद है और दो प्रकार की विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है। डा० राखात दास बनर्जी, आर०एम० दण्डेकर तथा दशरथ शर्मा आदि विद्वानों के विचार में यह शक दिर कुषाण थे। विद्वानों के अनुसार शक शब्द शतेकर जातियों के लिए प्रयोग होता था इसलिए इन लोगों का यह कहना है कि शकपति की पहचान देवपुत्र शाहा शहानुशाही से करना उचित होगा जो कुषाण शासक था। यह लोग समुद्रगुप्त के शासनकाल में पश्चिमोत्तर भारत में शासन करते थे। समुद्रगुप्त ने इन्हें नतमस्तक कर दिया था। सम्भवतः समुद्रगुप्त को मृत्यु के पश्चात् उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ा ली और रामगुप्त पर आक्रमण करके उसे परास्त कर दिया। किन्तु अल्लेकर इस मत को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि शकपति की पहचान किसी शक नरेश से करना ही ज्यादा उचित होगा अपने मत के समर्थन में उसने दो तर्क दिये है। पहला तर्क तो यह है कि गुप्तकाल के प्रारम्भ में शक तथा कुषाण दोनों 1 ही जातियां विद्यमान थी। इनका दूसरा तर्क यह है कि चन्द्रगुप्त के उदयगिरी के गुफा लेख एवं चांदी के सिक्के इस बात की पुष्टि होती है कि उसने शकों का उन्मूलन किया था इसलिए रामगुप्त का विरोधी कोई शक सम्राट ही होना चाहिये। अब प्रश्न यह उठता है कि शक नरेश भारत में किस भाग में शासन करता था भारतीय इतिहास की परम्परा से हमें ज्ञात होता है कि शको का शासन दो स्थानों में था एक मधुरा तथा दूसरा उज्जयिनी जत विद्वानों का अनुमान है कि रामगुप्त का शत्रु कोई उज्जयिनी का एक सम्राट था।

इस बात को लेकर भी विद्वानों में बड़ा मतभेद है कि रामगुप्त तथा शक नरेश के बीच युद्ध कहाँ हुआ था। हर्षचरित के अनुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शक नरेश क हत्या अरिपुर में की थी। जालघर दोजाब के पर्वतीय प्रदेश में था। इस ग्राम का

प्रात तास अलीवाल था। इसलिए डा० के०पी० जायसवाल का मत है यह युद्ध यही अलीवाल या इसके निकट हुआ होगा। एक अन्य प्रति में अरिपुर के स्थान पर नलिनपुर लिखा है अतः मिराशी महोदय ने नलिनपुर को ही युद्ध स्थल माना है जो जलाला के पश्चिम में स्थित है।

भोज के श्रृंगार प्रकाश नामक ग्रंथ में अरीपुर के स्थान पर ही अलीपुर का उल्लेख मिलता है सम्भवतः अलीपुर भरपुर ही रूपान्तरण है। अतएव जालार के समीप अलीपुर ही युद्ध स्थल प्रतीत होता है। डा० भण्डारकर ने काव्य मीमांसा के आधार पर हिमाचल प्रदेश में स्थित कार्तिकेय नगर की युद्ध स्थल निर्धारित किया था। कार्तिकेयपुर के नाम से ही सम्बोधित किया जाता है और अल्मोडा जिले के बैजनाथ ग्राम के पास विद्यमान है। चूंकि मजमूल चल री के अनुसार युद्ध स्थल किसी पर्वतीय प्रदेश में विद्यमान था अतः कार्तिकपुर को ही युद्ध स्थल मानना अधिक उचित क्या चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई की पत्नी व देवी से विवाह किया था। इस प्रश्न को लेकर भी विद्वानों में बसा है

कुछ विद्वानों की यह धारणा रही है कि उसने व देवी के साथ विवाह नहीं किया। परन्तु अब इस मत को निम्न ऐतिहासिकता के आधार पर निर्मूल साबित कर दिया गया है।

देवी चन्द्रगुप्तम् तथा शंकराचार्य की टीका से यह साबित होता है कि ध्रुवदेव रामगुप्त की पत्नी थी। साथ ही गुप्त लख से ज्ञात होता है कि यह चन्द्रगुप्त द्वितीय की भी पत्नी थी। इसलिए इस बात में नेहा मात्र भी सन्देह नहीं रह जाता है कि ध्रुवदेवी के साथ विवाह नहीं किया।

मजमुत उन तवारीख से हमे ज्ञात होता है कि बरमारीस ने रम्मान की हत्या के पश्चात उसकी विधवा स्त्री से किया था क्योंकि नजमुल उल–तारिख च देवी चन्द्र गुप्तन का कथानक एक ही है। इसलिए इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है चंद्रगुप्त द्वितीय ने रामगुप्त की विधवा से विवाह कर लिया था।

4.8 रामगुप्त की ऐतिहासिकता की समस्या

1. इस बात को लेकर भी विद्वानों में बड़ा मतभेद है कि क्या रामगुप्त कोई ऐतिहासिक व्यक्ति था या साहित्यकारा का पात्र था। जो विद्वान रामगुप्त को ऐतिहासिक नहीं मानते वे अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित तर्क देत हैं, सर्वप्रथम तो रामगुप्त की कोई भी स्वर्ण मुद्रा उपलब्ध नहीं है।

2. रामगुप्त की किसी भी मुद्दा पर उसका चित्र नहीं मिलता है जबकि बाकी गुप्त सम्राटों ने अपने चित्र अपनी पर करवाए थे।

3. रामगुप्त की ताम्र मुद्राओं उसके भिन्न–भिन्न नाम प्राप्त होते है अर्थात् राम, भगज, भगत, भग एक भग आदि इस दा विभिन्न राजाओ की हो सकती है। ये

नाम प्राकृत भाषा में उत्कीर्ण है। मुद्राओं के आकार प्रकार भिन्न–भिन्न है इनमें एकरूपता नहीं है।

4.. रामगुप्त की ताम्बे की मुद्राओं का चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अनुकरण नहीं किया। उसके द्वारा चलाई गई भी प्रकार की जा कोई भी रामगुप्त की मुद्रा जैसी नहीं है। यह एक अस्वाभाविक तथ्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि रामगुप्त सम्राट नहीं था। विद्वानों का अनुमान है कि ताम्र मुदाए मालवा के किसी रामगुप्त नामक स्थानीय शासक की है।

5.. रामगुप्त का नाम गुप्त दशावली में नहीं मिलता।

6. रामगुप्त के शत्रु शक नरेश को इतना ताकतवर व रामगुप्त को इतना निर्बल स्वीकार करना कठिन हैं।

7. किसी का निर्बल या सबल होना मात्र पूर्वजों पर ही आधारित नहीं होता। समुद्रगुप्त की शक्ति से भयभीत शक शासक यदि रामगुप्त के काल में पुन, शक्तिशाली हो उठा हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। किसी काल के गौरव एवं गरीना का संरक्षण प्रत्येक व्यक्ति करेगा यह स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। रामगुप्त की कार पुरुषता के कारण गौरवशाली मर्यादा भंग हो सकती थी। जहां तक जनमत के समर्थन का प्रश्न है देवी चन्द्रगुप्तम से स्पष्ट है कि रामगुप्त ने घृणित कार्य परामर्श दाताओं के आश्वासन से ही किया था।

9. नारद समृति के आधार पर विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि पति की मृत्यु के बाद विधवा विवाह निषेध नहीं है। 10. चन्द्रगुप्त द्वारा रामगुप्त की हत्या का भूमित हो सकता है किन्तु यह अविश्वसनीय व असत्य नहीं है। उसकी हत्या के दो कारण सम्मट हैं। प्रथम तो यह कि चन्द्रगुप्त ने रामगुप्त जैसे कायर नरेश का वध देश एवं संस्कृति की रक्षा के लिए किया है दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि चन्द्रगुप्त देवी के प्रति आकर्षित रहा हो।

ऊपर वर्णित तर्कों के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रामगुप्त एक ऐतिहासिक व्यक्ति था और उसने समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय के मध्य एक वर्ष तक शासन किया था।

4.9 मूल्यांकन

समुद्रगुप्त की उपलब्धियां एवं समाज विस्तार समुद्रगुप्त महा साक्षी पराक्रमी अतुलित बलशाली और उत्साही युद्ध था उसमें महान विजेता और कुशल सेनानायके विद्वान थे उसमें महत्वाकांक्षा और साम्राज्य विस्तार की उत्कट अभिलाषा भी भारी मात्रा में थे उसे विजय की एक महान श्रृंखला स्थापित करने तथा अर्धसैनिक शक्ति संपन्न होने के कारण भारतीय नेपोलियन की संज्ञा दी गई है उसने अपने विश्व द्वारा एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जिसमें कई प्रकार के राज्य सम्मिलित हैं सबसे

पहले पाटलिपुत्र के आसपास के स्थापित किया इसके पश्चात उसने स्थापना की। समुद्रगुप्त एक साहसी योद्धा तथा महान् विजेता था। अपने बाहुबल से उसने अपने छोटे राज्य को एक विशाल साम्राज्य में परिणत कर दिया था अशोक के बाद से इतने बड़े साम्राज्य पर और किसी ने भी शासन नहीं किया था। उसकी प्रशंसा में डॉ० स्मिथ का कथन है–वह अपने को भारत का सर्वशक्तिमान् सम्राट् बनाने के महान कार्य में समर्थ हुआ। उसकी वीरता की प्रशंसा करते हुए डॉ० विन्सेन्ट स्मिथ ने उसे श्भारतीय नेपोलियनश की उपाधि से विभूषित किया है। उसने भारत के बाहर भी अन्य राजाओं को अपनी सत्ता मानने के लिए बाध्य किया था।कुछ क्षेत्रों में वह नपोलियन से बढ़कर था। उसे आजीवन विजयश्री प्राप्त हुई जब कि नेपोलियन को वाटरलू और मास्को के युद्धों में पराजय का मुख देखना पड़ा था। उसकी अपूर्व शूर–वीरता और साहस के कारण आतंक मात्र से अनेक राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी।

समुद्रगुप्त एक महान योद्धा के साथ ही बहुत अधिक नीति–निपुण भी था। उसने अन्धे होकर शत्रुओं को जीतने का प्रयास नहीं किया बल्कि बहुत चालाकी से इस कार्य को सम्पन्न किया। आर्यावर्त के राजाओं को उसने उन्मूलित कर डाला और उनके राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया परन्तु दक्षिण केकेराजाओं पर अपना सिक्का जमाने के लिए उसने वहाँ के राजाओं पर विजय प्राप्त करके उनके राज्यों को उन्हीं को वापस कर दिया।सीमान्त राज्यों को अपने प्रभाव क्षेत्र में कर लिया परन्तु विदेशी राजाओं से उसने मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये। वह जानता था कि दूरस्थ प्रदेशों को निरन्तर अपने अधीन रखना कष्टदायक होगा, अतः उसने बड़ी दूरदर्शिता से इन राज्यों को या तो जीतकर उन्हीं राजाओं को वापस कर दिया अथवा उनसे मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया।समुद्रगुप्त महान विजेता, सफल राजनीतिज्ञ होने के अतिरिक्त चतुर कलाकार भी था। साहित्य, संगीत, कला आदि में वह पूर्ण दक्ष था। प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार"वह अपने शास्त्र ज्ञान से देवताओं के गुरु वृहस्पति को और संगीत एवं ललित कलाओं के ज्ञान से नारद तथा तुम्बुरु को भी लज्जित करता था।" उसके साहित्यिक अनुराग से प्रभावित होकर उसका मन्त्री हरिषेण अपनी प्रशस्तिमें लिखता है।

समुद्रगुप्त ही विद्वानों के मनन करने योग्य है। उसी की काव्य–शैली अध्ययन करने योग्य है। उसी की काव्य रचनाएँ कवियों के आध्यात्मिक कोष की अभिवृद्धि करती हैं।हैं।उसका दरबार कवियों, संगीतकारों और विद्वानों से अलंकृत था। उसके समय की एक मुद्रा ऐसी मिली है, जिससे उसका चित्र वीणा सहित बना हुआ है। इससे संगीत के प्रति उसका प्रेम प्रकट होता है। डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है समुद्रगुप्त अद्भुत प्रतिभा का व्यक्ति था, वह न केवल शास्त्रों में कुशल था वरन शस्त्रों में भी वह स्वयं बड़ा सुसंस्कृत वयक्ति था और उसे विद्वानों

को संगति बड़ी प्रिय थी।

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. समुद्रगुप्त के राजनैतिक उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
2. प्रयाग प्रशस्ति के आधार पर समुद्रगुप्त के साम्राज्य विस्तार की नीति को व्याख्यित कीजिये।
3. समुद्रगुप्त के मुद्राओ के आधार पर उसकी साम्राज्य सीमा को निर्धारित करे।

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थएवंसहायक उपयोगी पाठ्य पुस्तकें

1. गुप्ता, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1970
2. उपाध्याय, भगवतशरण, गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास,1969
3. मजूमदार, आर. सी.– द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल,वॉल्यूम दृ 3, 1970
4. झा, द्विजेंद्र नाथ एवं श्रीमाली के.एम., प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990
5. श्रीवास्तव, के. सी.–प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, प्रयागराज, 1991
6. बनर्जी, राखलदास– द एज ऑफ एंपीरियल गुप्ताज, वाराणसी, 1933
7. स्मिथ, विंसेंट– अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी, 1924
8. गोयल, श्री राम–गुप्त साम्राज्य का इतिहास, जोधपुर, 1995
9. पांडेय, विमल चन्द्र–प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 2003
10. थापर, रोमिला, भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1975
11. शर्मा, रामशरण, प्रारंभिक भारत का परिचय, नई दिल्ली, 2009
12. सिंह, उपिंदर, प्राचीन एवं पूर्व मध्य कालीन भारत का इतिहास (प्राचीन काल से लेकर 12वी शताब्दी तक)

इकाई 5 चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियाँ एव साम्राज्य विस्तार

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 चंद्रगुप्त द्वितीय

5.4 चंद्रगुप्त द्वितीय के इतिहास जानने के स्रोत

5.5 उपलब्धियाँ

5.5.1 वैवाहिक संबंध

5.5.2 विजय अभियान

5.5.3 साम्राज्य विस्तार

5.5.4 शासन प्रबंध

5.6 फाहियान के यात्रा विवरण के आधार पर चंद्रगुप्त द्वितीय की शासन व्यवस्था

5.7 सारांश

5.8 निबंधात्मक प्रश्न

5.9 संदर्भ ग्रंथ तथा सहायक पाठ्य समाग्री

5.1 प्रस्तावना

मौर्यों के पतन के पश्चात् उत्पन्न विकेन्द्रीकरण का विदेशी आक्रमणकारियों ने लाभ उठाया। इन आक्रमणकारियों में कुषाणों ने उत्तर भारत के एक विशाल भू–भाग को अपने अधीन कर लिया। तीसरी शताब्दी ई0 भारतीय भू–भाग पर तीन राजवंशों को उदय हुआ ये थे–मध्य देश में नाग, दक्कन में वाकाटक तथा पूर्व में गुप्त। नागों ने कुषाणों की शक्ति को परास्त किया। गुप्तों की वैदेशिक फलस्वरूप तीनों राजवंशों के वैवाहिक सम्बन्ध में बंध जाने के कारण इनके मध्य प्रतिस्पर्धा की सम्भावनाओं का अंत हो गया तथा गुप्तों के साथ ये शक्तिशाली शासक बने।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप पाएंगे–

- गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय के विषय में जानने के स्रोतों से परिचित हो सकेंगे।
- उसकी राजनैतिक उपलब्धियां, उसका धार्मिक दर्शन, साम्राज्य विस्तार, शासन प्रबंध के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

5.3 चंद्रगुप्त द्वितीय

चंद्रगुप्त द्वितीय गुप्त साम्राज्य का एक महानशक्तिशाली शासक एवं कुशल प्रशासक था। गुप्त साम्राज्य की गद्दी पर समुद्रगुप्त के पश्चात उसका पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय बैठा। चंद्रगुप्त द्वितीय समुद्रगुप्त तथा उसकी महिषी दत्त देवी से उत्पन्न हुआ था। गुप्तकालीन लेखों में उसे 'तत्पगृहित' अर्थात उसके द्वारा चुना गया कहा गया है। कुछ विद्वान इसी आधार पर यह मत प्रतिपादित करते हैं कि स्वयं समुद्रगुप्त ने ही चंद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था परंतु हम राम गुप्त के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकते। कुछ विद्वान 'तत्पगृहीत' पद का प्रयोग मात्र निष्ठा प्रदर्शित करने के लिए किया गया ऐसा मानते हैं। अभिलेखीय स्रोतों से पता चलता है कि चंद्रगुप्त द्वितीय ने 375 ईस्वी से 415 ईस्वी तक अर्थात कुल 40 वर्षों तक शासन किया। उसने अपने इस दीर्घ शासनकाल में गुप्त वंश की ख्याति को उच्च चोटी पर पहुंचा दिया था। चंद्रगुप्त द्वितीय कुशल कूटनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी सम्राट था जिसने 'विक्रमादित्य' एवं 'परमभागवत' की उपाधि धारण की थी।

5.4 चंद्रगुप्त द्वितीय का इतिहास जानने के स्रोत

साहित्यिक स्रोत

गुप्तकालीन शासकों का वर्णन पुराणों से भी प्राप्त होता है। विष्णुपुराण एवं वायुपुराण में चन्द्रगुप्त द्वितीय के साम्राज्य विस्तार का उल्लेख प्राप्त होता है।

साथ ही नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति का मांडव नीति शास्त्र तथा नाटकों में देवी चंद्रगुप्त व मुद्राराक्षस से चंद्रगुप्त द्वितीय के काल के घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है। इतिहासकार कालिदास को चंद्रगुप्त द्वितीय का समकालीन मानते हैं अर्थात उनकी रचनाओं (अभिज्ञानशकुंतलम,रघुवंशम, मालविकाग्निमित्रम्) में गुप्तकालीन लोक जीवन की झांकी देखी जा सकती है।

विदेशी यात्री फाहियान पांचवी सदी में गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत आया था और 14 वर्ष तक भारत में रहा। उसने विशेष रूप से भारत में बौद्ध धर्म की स्थिति के विषय में लिखा। फाहियान ने अपने विवरण में मध्य देश के समाज एवं संस्कृति का वर्णन किया है। वह मध्य देश की जनता को सुखी एवं समृद्ध बताता है। चंद्रगुप्त द्वितीय के शासन काल के विषय मेंजानने के

लिये फाहियान का यात्रा विवरण एक महत्वपूर्ण स्रोत की भूमिका निभाता है।

अभिलेख–चंद्रगुप्त द्वितीय के विषय में प्रमुख रूप से निम्नलिखित अभिलेखों से सूचना प्राप्त होती है।

मथुरा स्तंभ लेख–चंद्रगुप्त द्वितीय का सबसे पहला लेख मथुरा से मिला है। यह लेख उसके शासन के पाँचवें वर्ष का है। इसकी तिथि गुप्त संवत् 61 है।

उदयगिरि गुहा लेख –चंद्रगुप्त द्वितीय का दूसरा लेख भिलसा के समीप उदयगिरी पहाड़ी में उत्कीर्ण है। इसकी तिथि गुप्त संवत 72 है। यह लेख उसके अधीनस्थ शासक सनकानीक महाराज का है।

गढ़वा का शिलालेख–चंद्रगुप्त द्वितीय का तीसरा लेख प्रयागराज जिले में गढ़वा से प्राप्त हुआ है। इसकी तिथि गुप्त संवत 77 है। इसमें चंद्रगुप्त द्वितीय की उपाधि परमभागवत का उल्लेख है।

सांची लेख–चंद्रगुप्त द्वितीय का ये लेख मध्यप्रदेश के रायसेन के साँची नामक पुरास्थल से प्राप्त हुआ है। इसकी तिथि गुप्त संवत् 83 है। इसमे उसके सेनापति आम्रकादेव द्वारा ने काकनादवोट विहार को एक गांव व 50 दीनार दान में देने का उल्लेख है। इस लेख में चंद्रगुप्त द्वितीय को देवराज कहा गया है।

उदयगिरि गुहा लेख–यह लेख तिथि विहीन है। लेख में चंद्रगुप्त द्वारा पृथ्वी को जीतने के उद्देश्य से निकलने का उल्लेख मिलता है जिस दौरान वह भिलसा में रुका था।

मथुरा लेख–यह लेख भी तिथि विहीन है। इसमें चंद्रगुप्त द्वितीय तक गुप्त वंशावली का वर्णन प्राप्त होता है।

मेहरौली लौह स्तंभ–चंद्रगुप्त द्वितीय के विषय में जानकारी देने वाला यह लेख तिथिविहिन है। लेख में चंद्र की विजयों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसने वंग प्रदेश में शत्रुओं के एक संघ को पराजित किया था और सिंधु (प्राचीन सप्तसैंधव देश की सात नदियों) को पार करके वाह्लीक (बल्ख) देश तक विजय प्राप्त की थी। दक्षिण में भी उसकी ख्याति फैली हुई थी और वह भगवान विष्णु का परम भक्त था।' राजा के स्पष्ट नाम एवं वंशावली की अनुपलब्धता में विद्वानों में चन्द्र के समीकरण को चन्द्रगुप्त से स्थापित करने में मतभेद है, परन्तु इसका समीकरण चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के साथ अधिक तर्कसंगत है।

इन लेखों के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त द्वितीय की स्वर्ण, रजत एवं ताम्र मुद्राएँ प्राप्त होती हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा जारी किये गये स्वर्ण मुद्राओं का विवरण इस प्रकार है–

धनुर्धार प्रकार के सिक्के अभी तक सर्वाधिक मात्रा में प्राप्त हुए हैं जिनके मुख्य भाग पर 'देवश्रीमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः' तथा पृष्ठ भाग पर 'श्रीविक्रम' अंकित है। मुखभाग पर धनुष बाण धारण किये हुए नरेश तथा गुरुड़ध्वज एवं पृष्ठभाग पर लक्ष्मी की मूर्ति उत्कीर्ण है।

चन्दगुप्त द्वितीय के दो प्रकार के छत्रधारी प्रकार की मुद्राएँ प्राप्त होती हैं जिनके मुख भाग पर दो प्रकार के लेख 'महाराधिराज श्रीचन्द्रगुप्तस्य तथा 'क्षितिमजित्य सुचरितै दिवं जयति विक्रमादित्यः' एवं पृष्ठभाग पर 'विक्रमादितयः' उत्कीर्ण है। मुद्रा के अग्रभाग पर आहुति डालते हुए राजा का अंकन है जिसके पीछे नौकर उसके ऊपर छत्र लिये खड़ा है तथा राजा का बायां हाथ तलवार की मुखिया पर है। मुद्रा के पृष्ठभाग पर कमल के ऊपर खड़ी लक्ष्मी का चित्रांकन है।

पर्यंक प्रकार की मुद्राओं के मुख भाग पर वस्त्राभूषण धारण किये हुए राजा अपने दाहिने हाथ में कमल तथा बायें हाथ को पलंग पर टिकाये हुए पलंग पर बैठे हुए चित्रांकित है तथा पृष्ठभाग पर सिंहासनरूढ़ लक्ष्मी की आकृति अंकित है। मुद्रा के मुख भाग पर 'देवश्रमहाराजधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्य विक्रमादित्य एवं रूपाकृति तथा पृष्ठभाग पर 'श्रीविक्रमः उत्कीर्ण' है। कुछ मुद्राओं के मुख भाग पर परम्भागवत' उत्कीर्ण प्राप्त होता है।

1. अश्वारोही प्रकार की मुद्राओं के मुख भाग पर अश्वरोही राजा की आकृति तथा पृष्ठभाग बैठी हुई देवी का अंकन है। मुख भाग पर 'महाराजाधिराज–श्री चन्द्रगुप्तस्य; तथा पृष्ठभाग पर 'अजितविक्रमः' उत्कीर्ण है।

सिंह निहन्ता प्रकार के सिक्कें उसके शक विजय की सूचना देते हैं। इन मुद्राओं पर विभिन्न लेख उत्कीर्ण हैं। कुछ मुद्राओं पर 'महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः' तथा 'देवश्री महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तः' अंकित है। इन मुद्राओं के पृष्ठभाग पर सिंहारूढ़ देवी दुर्गा तथा मुख भाग पर राजा द्वारा सिंह का शिकार करते दिखाया गया है।

इन स्वर्ण मुद्राओं के अलावा चंद्रगुप्त द्वितीय की रजत मुद्राएँ पश्चिम भारत से प्राप्त हुई है। यह मुद्राएँ गुजरात, कठियावाड़ तथा मालवा विजय के उपरांत प्रचलित करवाई गयी थी। इनके मुख भाग पर राजा की तथा पृष्ठ भाग पर गरुड़ की आकृति प्राप्त होती है। पृष्ठ भाग पर अलग–अलग लेख उत्कीर्ण प्राप्त होते हैं यथा–'परमभागवतमहाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तविक्रमादित्य' तथा 'श्रीगुप्त कुलस्य–महा राजाधिराज श्री गुप्तविक्रमादित्य'। गुप्त शासकों की ताम्र मुद्राएं अत्यंत दुर्लभ है इसका कारण यह था कि छोटे स्तर के क्रय–विक्रय या तो वस्तु विनिमय द्वारा होते थे याकौड़ियों के माध्यम से विनमयहोताथा,फाहियान अपनी यात्रा विवरण में इसका उल्लेख करता है। अल्टेकर महोदय कहते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त

शासकों ने ताम्र मुद्राओं का प्रचलन आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं वरन केवल मुद्रा शास्त्री प्रयोग के लिए किया था। प्राप्त मुद्राओं के अग्रभाग पर श्रीविक्रम या श्रीचन्द्र उत्कीर्ण मिलता है तथा पृष्ठभाग पर गरुड़ की आकृति एवं श्रीचन्द्गुप्त या चंद्रगुप्त उत्कीर्ण प्राप्त होता है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में मिट्टी तथा धातु के मुहर भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त गुप्त कालीन कलाकृतियां भी अनेक स्थलों से प्राप्त हुई है।

इस प्रकार, साहित्यिक तथा पुरातात्विक स्रोत के माध्यम से हमें चंद्रगुप्त के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्त्रोत प्राप्त होते हैं।

5.5 चंद्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' की उपलब्धियाँ

5.5.1 वैवाहिक सम्बन्ध

गुप्त राजाओं ने विदेश नीति के अंतर्गत वैवाहिक संबंधों को महत्वपूर्ण स्थान दिया था। चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने पिता समुद्रगुप्त एवं पितामह चंद्रगुप्त प्रथम की भांति ही अपनी आंतरिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अन्य राजवंशों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किए। राय चौधरी महोदय का मत है कि वैवाहिक सम्बन्ध बनाना गुप्तो की विदेश नीति का महत्वपूर्ण अंग बन गया था, अतः वैवाहिक संबंध की यह नीति चंद्रगुप्त द्वितीय ने भी जारी रखी। चंद्रगुप्त द्वारा बनाये गए वैवाहिक संबंधों का विवरण इस प्रकार है :

नाग वंश के साथ सम्बन्धः—प्रयाग प्रशस्ति मे उल्लेख मिलता है कि समुद्रगुप्त ने कई नाग राजाओं को जीता था। यह नागराजा मथुरा, अहिच्छत्र, पद्मावती आदि में शासन कर रहे थे। चंद्रगुप्त द्वितीयके समय नाग वंश की शक्ति प्रभावशाली बन गयी थी। नाग वंश का सहयोग प्राप्त करने के लिये चंद्रगुप्त द्वितीय ने नाग राजकुमारी कुबेरनागा से विवाह किया जिससे उन्हें एक पुत्री प्रभावती गुप्ता उत्पन्न हुई। आर. सी. मजूमदार अपनी पुस्तक वकाटक गुप्त एज में लिखते हैं कि— नाग वंश मे वैवाहिक संबंध स्थापित कर चंद्रगुप्त द्वितीय ने उनका समर्थन प्राप्त कर लिया जो गुप्तों की स्थापित चक्रवर्ती स्थिति के दृढ़ीकरणमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ।

वाकाटक वंश के साथ सम्बन्ध— नाग राजकुमारी कुबेरनागा से उत्पन्न पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह चंद्रगुप्त द्वितीय ने वकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय के साथ कर दिया। वाकाटको की गणना दक्षिण की प्रतिष्ठित शक्ति के रूप में की जाती है। गुप्ततथा वाकाटक का वैवाहिक संबंध दोनों के लिए ही हितकारी साबित हुआ, वाकाटको तथा गुप्तो के सम्मिलित शक्ति ने शकों का उन्मूलन कर दिया। लगभग चौथी सदी के अंत मेंरूद्रसेन द्वितीय की मृत्यु हो गयी तब 13 वर्ष तक प्रभावती ने

अपने अल्प वयस्क पुत्रों की संरक्षिका के रूप में शासन किया। वकाटक – गुप्त एज पुस्तक में मजूमदार महोदय लिखते हैं कि– प्रभावती गुप्त के शासनकाल में चंद्र ने गुजरात काठियावाड़ की विजय की तथा विधवा रानी ने अपने पिता को हर संभव सहायता प्रदान की।

कदम्ब वंश के साथ सम्बन्ध – तालगुंड अभिलेख में उल्लेख मिलता कि काकुत्सवर्मन् ने अपनी पुत्री का विवाह किसी गुप्त राजकुमार से किया था। कदंबों का शासन कुंतल मे था एवं यह शासक चंद्रगुप्त द्वितीय का समकालीन था। माना जाता है कि कुमारगुप्त प्रथम का विवाह कदंब वंश की राजकुमारी के साथ हुआ था। भोजकृत श्रृंगार प्रकाश एवं क्षेमेंद्र कृत औचित्यविचारचर्चा से ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त ने कालिदास को दूत बनाकर कुंतल भेजा था जहा से वापस लौट कर कालिदास ने यह सूचना दी थी कि वहां का राजा भोग विलास में लिप्त है। डी.सी. सरकार का विचार है कि कदंब राजा ने अपनी एक पुत्री का विवाह नरेंद्र सेन वकाटक के साथ तथा दूसरे का चंद्रगुप्त के पुत्र या पोते के साथ किया था। कदंब के साथ संबंध स्थापित कर चंद्र की ख्याति सुदूर दक्षिण तक फैल गई थी तथा इस मित्रता ने गुप्त साम्राज्य को ठोस सुरक्षा प्रदान की थी।

5.5.2 चंद्रगुप्त द्वितीय की विजय अभियान

चंद्रगुप्त द्वितीय अपने पिता के समान ही एक कुशल योद्धा था। विरासत में उसे एक बहुत बड़ा साम्राज्य मिला था जिस कारण उसे साम्राज्य निर्माण की आवश्यकता नहीं थी।

वैवाहिक संबंधों द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के पश्चात चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपना विजय अभियान प्रारंभ किया। उदयगिरी गुफा अभिलेख में उल्लेख मिलता है चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने संधिविग्रहिक मंत्री वीरसेन के साथ समस्त पृथ्वी को जीतने के विचार से निकला था। चंद्रगुप्त की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विजय पश्चिम तथा उत्तर प्रदेश की विजय है। वासुदेव उपाध्याय अपनी पुस्तक गुप्त सम्राज्य के इतिहास में प्रयाग प्रशस्ति का संदर्भ लेते हुए लिखते है कि इसमें संदेह नहीं है कि चंद्रगुप्त के पिता ने समस्त दक्षिणा पथ के राजाओं को परास्त कर उन्हें विनीत होने का पाठ पढ़ाया था। उनकी श्री का हरण कर उन्हें श्रीहत बनाकर अपना सामंत बनाया था परंतु ऐसे राजा की तलवार की तीक्ष्णता से उत्तरी तथा पश्चिमी भारत के राजा परिचित नहीं हुए थे। उन्हें समुद्रगुप्त की कृपाण की कठोरता का परिचय नहीं मिला था पर चंद्रगुप्त द्वितीय की इस उदयीमान विक्रमादित्य की प्रखर किरणों से वे अछूते ना बच सके तथा कुछ ही काल के बाद उनके प्रबल बाहुओ के बल का उन्हें अंदाजा मिल गया। चंद्रगुप्त द्वितीय ने न केवल उत्तरी तथा पश्चिमी राजाओं को ही परास्त किया बल्कि उसकी विश्वविजयिनी बाहुओ ने बलख तक

साम्राज्य की सीमा को विस्तृत कर दिया तथा उस सुदूर प्रदेश में भी इसकी विजय वैजयंती को स्थापित किया।

चंद्रगुप्त द्वितीय द्वारा शक विजय

चंद्रगुप्त द्वितीय ने विजय प्रक्रिया में पश्चिम भारत के शको की शक्ति का उन्मूलन किया था। यह शक गुजरात के काठियावाड़ में शासन कर रहे थे। प्रयाग प्रशस्ति में शक मुरुण्ड जाति का उल्लेख किया है जिन्होंने समुद्रगुप्त की प्रभुता मान ली थी लेकिन समुद्रगुप्त ने इन्हें अपने राज्य में नही मिलाया था। इन्हीं जातियों को चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने पराक्रम से पराजित किया था।

विशाखदत्त कृत देव चंद्रगुप्तम् नामक नाटक में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य से पूर्व राम गुप्त का गुप्त शासक के रूप में वर्णन किया गया है, जिनके शासनकाल में शक आक्रमणकारियों ने ऐसी संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी थी कि राम गुप्त को अपनी पत्नीध्रुव देवी को देकर शांति स्थापित करने का विचार करना पड़ा। राम गुप्त की इस कायरता से क्षुब्ध होकर उसके छोटे भाई चंद्रगुप्त द्वितीय ने स्थिति को संभालने के उद्देश्य से स्वयं ध्रुव देवी का वेश बनाकर शक शिविर में जाने की योजना बनाई और जब इस प्रकार वह तथा उसकेसाथी शकाधिपति के पास स्त्रीवेश में पहुंचे और शक शासक चंद्रगुप्त को ध्रुव देवी समझ उनकीओरबढ़ा तब छद्म वेश धारी चंद्रगुप्त ने शक राजा की हत्या कर दी। इसके बाद चंद्रगुप्त ने अपने कायर भाई की भी हत्या कर दी और गद्दी पर अधिकार कर ध्रुव देवी से विवाह किया पर अनेक विद्वान इस कथा को काल्पनिक मानते हैं। इस घटना का उल्लेख किसी गुप्त लेखों में नहीं हुआ है परंतु इसका वर्णन हम अनेक परवर्ती स्रोतों मे प्राप्त होता है। बाण के हर्षचरित, राज शेखर की काव्यमीमांसा , राष्ट्रकूट अमोघ वर्ष के शक संवत् 795 के संजन ताम्रपत्र और गोविंद चतुर्थ के सांगली व खंभात ताम्रपत्र में इस घटना का उल्लेख मिलता है।

राजा होने के बाद चंद्रगुप्त ने शकों कापूर्णता उन्मूलन करने के लिए एक व्यापक सैनिक अभियान किया। चंद्रगुप्त द्वितीय की शक विजय के प्रमाण उसके तत्कालीन उत्कीर्ण अभिलेख, सिक्कों तथा प्रचलित दंत कथाओ से प्राप्त होता है। चंद्रगुप्त द्वितीय के सचिव वीरसेन का उदयगिरी गुहा अभिलेख तथा सनकानीक महाराज जो कि चंद्रगुप्त का सामंत था, के उदयगिरि गुहालेख तथा सांची लेख जो कि उसके एक सैनिक पदाधिकारी आम्रकार्द्दवका है, के सम्मिलित साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चंद्रगुप्त द्वितीय के इस विजय अभियान का उद्देश्य पूर्वी मालवा के ठीक पश्चिम में स्थित शक राज्य को जीतना था। चंद्रगुप्त द्वितीय का समकालीन शासक रुद्रसिंह तृतीय था जो युद्ध में मार डाला गया। रूद्रसिंह तृतीय की मृत्यु पश्चात गुजरात और काठियावाड़ राज्य को चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने

गुप्त साम्राज्य में मिला लिया। इस बात की पुष्टि चंद्रगुप्त द्वितीय द्वारा शको के मुद्रा के अनुकरण पर निर्मित चांदी के सिक्के से भी होती है। मुद्रा शास्त्रियों एवं इतिहासकारों का यह मत है कि चंद्रगुप्त द्वितीय ने मालवा, गुजरात तथा काठियावाड़ की विजय के उपरांत उस क्षेत्र के लिए रजत मुद्राओं का प्रवर्तन किया था। इसका कारण यह था कि उस क्षेत्र में इससे पूर्व शकों का शासन था और शक शासन के अंतर्गत वहां रजत मुद्राएं ही प्रचलित थी। यद्यपि चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा मालवा, गुजरात, काठियावाड़ के विजय की तिथि ठीक–ठाक ज्ञात नहीं है किंतु यह विजय उसके शासन के अंतिम काल में हुई होगी। गुप्त राजाओं में चांदी के सिक्के जारी करने वाला पहला शासक चंद्रगुप्त द्वितीय ही था। चंद्रगुप्त के सिंह निहंता शैली के सिक्के भी इस ओर इंगित करते हैं की उसने गुजरात और काठियावाड़ पर विजय प्राप्त कर ली थीक्योकि सिंह इस क्षेत्र का विशिष्ट पशु था। चंद्रगुप्त द्वितीय की इस विजय ने उसकी ख्याति चारों ओर फैला दी थी। संभवतः अपनी इसी उपलब्धि के बाद उसने विक्रमादित्य उपाधि ग्रहण की थी। शको का राज्य गुप्त राज्य में मिल जाने के बाद गुप्त राज्य का विस्तार पश्चिम में अरब सागर तक हो गया था।

दिल्ली मे मेहरौली से प्राप्त लौह स्तंभ पर चंद्र नामक राजा की उपलब्धियोंका वर्णन तीन श्लोको मे वर्णित किया गया है

यस्योद्वर्त्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रुन्समेत्यागतान्

वंगेष्वाहव वर्त्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्त्तिर्भुजे।

तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिकाः,

यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिणः।।

अर्थात, जिसने बंगाल के युद्ध क्षेत्र में मिलकर आए हुए अपने शत्रुओं के एक संघ को पराजित किया था, जिसकी भुजाओं पर तलवार द्वारा यश लिखा गया था, जिसने सिंधु नदी के सातों मुख को पार कर युद्ध में बाहिल्को को को जीता था, जिसके प्रताप के सौरभ से दक्षिण का समुद्रतट अब भी सुवासित हो रहा था।

प्राप्तेन स्वभुजार्जितं च सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ अर्थात, अपन बाहुबल से अपना राज्य प्राप्त किया था तथा चिरकाल तक शासन किया। अभिलेख के अनुसार यह लेख राजा के मरणोपरान्त उत्कीर्ण कराया गया था।

चंद्र के मेहरौली लेख मे ना ही किसी तिथि का वर्णन है और ना ही राजा का पूर्ण नाम अंकित है। जिस कारण इस राजा को लेकर विद्वान गण एक मत नही हैं। सभी विद्वानों ने प्राचीन भारतीय इतिहास के चंद्रगुप्त मौर्य से लेकर चंद्रगुप्त

विक्रमादित्य तक जीतने भी चंद्र नामक शासक हुए हुए हैं, उनका समीकरण लौह स्तंभ मे वर्णित चंद्र नामक शासक से स्थापित करने का प्रयास करते हैं। विसेंट स्मिथ तथा अन्य इतिहासकार का मत हैं की यह लौह स्तंभ मे वर्णित चंद्र नामक राजा गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ही हैं।

लेख मे वर्णित चंद्र राजा की उपलब्धियों को चंद्रगुप्त द्वितीय के पक्ष मे लागू करना अधिक तर्कसंगत लगता है।

बंगाल विजय : मेहरौली लौह स्तंभ से ज्ञात होता हैं की चंद्र नामक राजा ने बंगाल के युद्ध क्षेत्र में अपने शत्रुओं के एक संघ को पराजित किया था। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में भी उल्लेख मिलता है कि समुंद्र गुप्त ने चंद्रवर्मा को हराकर बंगाल के पश्चिमी भाग जीत लिया था। समुद्रगुप्त के शासन के समय में गुप्तों की पूर्वी तथा उत्तर पूर्वी सीमाओं पर पांच राज्य थे। इन राज्यों ने समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली थी पर रामगुप्त के शासन में यह राज्य पुनः स्वतंत्र होकर अपना एक संघ बना लिया था। इसी संघ को बंगाल के युद्ध में चंद्र ने पराजित किया था। इस विजय के बाद चंद्रगुप्त द्वितीय का शासन आसाम तक फैल गया।

वाह्लिक विजय :लौह स्तंभ मे वर्णित चंद्र ने सिंधु के सातों मुखों को पार कर बाहिल्को को जीता था। डॉ. आर. सी. मजूमदार का मानना है कि हिंदुकुश पर्वत के पार के बल्ख़ ही वाहलिक हैं। भंडारकर महोदय ने रामायण और महाभारत से प्रमाण प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि प्राचीन काल में पंजाब की व्यास नदी के आसपास का क्षेत्र वह्लिको नाम से प्रसिद्ध था। महाभारत में इस क्षेत्र को वाहिक कहा गया है। टालमी भी इसे बाहीक पढ़ते हैं तथा इसका अर्थ पांच नदियों की भूमि निकालते हैं। इसका कारण यह था कि यहां पर बल्ख़ पर शासन कर चुके कुषाणों का निवास था। कुषाणों को भी वह्लिक कहा जाने लगा। महरौली लेख के वह्लिक का तात्पर्य परवर्ती कुषाण से है जो गुप्त के समय में पंजाब में निवास करते थे। राम गुप्त के काल मे के इन्होंने ने शको के साथ स्वयं को भी स्वतंत्र कर लिया। चंद्रगुप्त शकों के उन्मूलन बाद पंजाब में जाकर कुषाणों को भी परास्त किया और इसी को वह्लिको विजय की संज्ञा दी।

दक्षिणापथ की विजय : मेहरौली लौह स्तंभ मे उत्कीर्ण किया गया हैं कि 'यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिणः' अर्थात चंद्र के प्रताप के सौरभ से दक्षिण के समुद्र तट आज भी सुवासित हो रहे हैं। इससे यह कहना उचित हैं की चंद्रगुप्त द्वितीय की ख्याति दक्षिण भारत तक फैली हुई थी। कहा जाता है कि इन विजयो के स्मारक स्वरूप उसने विष्णु पहाड़ पर लौह स्तंभ पर अभिलेख खुदवाया था जिसे राजा अनंगपाल दिल्ली उठा ले गया।

5.5.3 चंद्रगुप्त द्वितीय का साम्राज्य विस्तार

विष्णु पुराण और वायु पुराण में चंद्रगुप्त के राज्य का विस्तार कोशल, औड्र, पुण्ड्रताम्रलिप्ति और पुरी तक बताया गया है। चंद्रगुप्त द्वितीय ना केवल एक विजेता था बल्कि वह एक योग्य और कुशल प्रशासक भी था, उसका साम्राज्य उत्तर मेंकरती है कि यह क्षेत्र चंद्रगुप्त द्वितीय के समय गुप्त साम्राज्य की अधीनता में आ चुकाथा।।

चंद्रगुप्त द्वितीय का 40 वर्ष का शासन काल चतुर्दिक शांति एवं समृद्धि का काल था। उसे अनेक अनुभवी मंत्रियों का सहयोग प्राप्त था। उसका प्रधान सचिव वीरसेन था, सनकनिक मालवा का राज्यपाल रहा होगा, आम्रकार्द्दव उसका प्रधान सेनापति था।

चीनी यात्री फाहियान चंद्रगुप्त द्वितीय के समय भारत आया था, वह उसकी प्रशंसा में कि लिखता है कि उसके काल मे प्रजा सुखी थी तथा लोग सौहाद्रपूर्वक रहते थे। उसके राज्य मे अपराध भी कम होते थे।फाहियान जब चंद्रगुप्त के राज्य मे आया था तो उसे किसी भी असुरक्षा का सामना नही करना पड़ा था। कालिदास अपने रघुवंश मे लिखते हैं कि

यस्मिन्मही शासति वाणिनीनां निद्रां विहारार्थ पथे गतानाम्।

वातोऽपि नाम्रंसयदंशुकाने को लम्बयेदाहरणाय हस्तम्।।

अर्थात जिस समय वह राजा शासन कर रहा था, उपवनों में मद पीकर सोती हुई सुंदरियों के वस्त्रों को वायु तक स्पर्श नही कर सकता था, तो फिर उनके आभूषणों को चुराने का साहस कौन कर सकता था द्य कालिदास की यह पंक्तिया चंद्रगुप्त द्वितीय के शांति पूर्ण शासन की ओर ही इंगित करती हैं।

5.5.4 शासन प्रबंध

वह एक महान विजेता होने के साथ–साथ कुशल प्रशासक भी था। उसने अपने विशाल साम्राज्य को संगठित किया और उसके समुचित प्रशासन की व्यवस्था की। राजा का पद वंशानुगत होता था। एक मंत्रिपरिषद होती थी, जिसमें मंत्रियों के पद पितृसत्तात्मक होते थे।

संधिविग्रहिक' युद्ध, शांति और संधियों के मंत्री हुआ करते थे। वीरसेन प्रशासन के साथ–साथ सेना की भी देखभाल करते थे।

प्रशासन की सुविधा के लिए पूरे साम्राज्य को प्रांतों में विभाजित किया गया था, जिन्हें देश या मुक्ति कहा जाता था। इसके सर्वोच्च अधिकारी को गोत्री और मुक्ति के अधिकारी को उपारिक कहा जाता था। प्रत्येक प्रांत को जिलों में विभाजित

किया गया था, जिन्हें प्रदेश या विषय कहा जाता था। इसके उच्चाधिकारी को विषयपति कहा जाता था। प्रत्येक विषय कई कस्बों और गांवों से मिलकर बना होता था। ग्राम के प्रशासक को ग्रामिक कहा जाता था यह पद ग्राम प्रधान को दिया जाता था। इनके मदद के लिए पंचायत हुआ करती थी। केंद्र और प्रांत के अधिकारियों के लिए अलग पदनाम थे। उदाहरण के लिए– उपरिक, महादण्ड नायक, बलाधिकृत, महाप्रतिहार, आदि। लेख तथा मुद्राओं में उसके कुछ पदाधिकारियों के नाम भी मिलते हैं जो इस प्रकार हैं–

कुमारमात्य–यह विशिष्ट प्रकार के प्रशासनिक अधिकारी होते थे जिनका कार्य आज के इसकी समता प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों से मिलता जुलता था।

बलाधिकृत–यह सेना का सर्वोच्च पदाधिकारी था। इसके कार्यालयको 'बलाधिकरण' कहा गया है।

रणभाण्डागाराधिकृत–सैनिकों की आवश्यकता वाले सामग्री को सुरक्षित रखने वाले अधिकारी को 'रणभाण्डागाराधिकृत कहा जाता है।

दण्डपाशिक–पुलिस विभाग का प्रधान अधिकारी दण्डपाशिक कहलाता था।

महादण्डनायक–महादण्डनायक मुख्य न्यायाधीश को कहा जाता था।

विनयस्थितिस्थापक–कार्य कानून और व्यवस्था की स्थापना करने वाले पदाधिकारी को विनयस्थिस्थिापक कहा जाता था।

भटाश्वपति–अश्वसेना का नायक भटाश्वपति होता था।

महाप्रतीहर–मुख्य दौवारिक को महाप्रतीहार कहा जाता था।

न्यायालय को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया था। सम्राट न्यायपालिका का प्रधान होता था। वह स्वयं मामलों की सुनवाई करता था। गंभीर अपराधियों को कड़ी सजा दी जाती थी।

चंद्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में शांति और कानून के कारण व्यापार और उद्योगों का काफी विकास हुआ। इस समय भारत पश्चिमी देशों के साथ जल मार्ग से व्यापार करता था। आंतरिक व्यापार भी उन्नत था। विनिमय के लिए सोने, चांदी तथा तांबे की मुद्राओ का प्रयोग किया जाता था।

चंद्रगुप्त द्वितीय के अभिलेख व सोने–चांदी के सिक्कों पर उसे भगवान विष्णु का भक्त बताया गया है तथा उसने परमभागवत की उपाधि धारण की थी। बयाना मुद्राभांड से प्राप्त सिक्कों पर उसे चक्रविक्रम के नाम से संबोधित किया गया है जिसका अर्थ है –

'वह जो सुदर्शन चक्र के कारण शाक्तशाली है। ''वह धर्म सहिष्णु शासक था। उसका संधिविग्रहिक वीरसेन शैव मतानुयायी था। उसने उदयगिरि पहाड़ी पर शिव उपासना के लिए गुहा निर्माण करवाया था। उसका प्रधान सेनापति बौद्ध था। यह उसके धर्म सहिष्णुता का परिचायक हैं। उसके शासन काल मे सभी धर्मों को समान दर्जा प्राप्त था।

साहित्य के क्षेत्र में उपलब्धि– चन्द्रगुप्त द्वितीय स्वयं विद्वान् एवं विद्वानों का आश्रयदाता था। उसके समय में पाटलिपुत्र एवं उज्जयिनी विद्या के प्रमुख केन्द्र थे। उसके दरबार में नौ विद्वानों की एक मण्डली निवास करती थी जिसे नवरत्न कहा गया है। महाकविकालिदास संभवतः इनमें अग्रगण्य थे। कालिदास के अतिरिक्त इनमें धन्वन्तरि क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बेतालभट्ट घटकर्पर, वाराहमिहिर, वररुचि जैसे विद्वान थे। उसके शासनकाल में उज्जयिनी में कवियों की एक विद्वत्परिषद् थी।

अश्वमेध यज्ञ–वाराणसी जनपद के नगवाँ ग्राम मे एक पाषाण निर्मित अश्व पर चंद्रगु अंकित है। रत्नाकर महोदय ने इस चंद्रगु की पहचान चंद्रगुप्त द्वितीय के साथ करते हुए बताया कि यहां उसने अश्वमेध यज्ञ किया था तथा उसके प्रतीक स्वरूप अश्व निर्मित किया था परंतु इस मत के समर्थन में अन्य साक्ष्यों की अनुपलब्धता है।

इस प्रकार, प्राचीन भारत में चंद्रगुप्त द्वितीय को एक महान शासक माना जाता है जिस साम्राज्य को उसके पिता समुद्रगुप्त ने निर्मित किया, वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में पूर्णतया संगठित, सुव्यवस्थित एवं प्रशासित होकर उन्नति की चोटी पर जा पहुँचा तथा प्राचीन भारत में स्वर्णयुग का दावेदार बना। चन्द्रगुप्त निश्चय ही न केवल गुप्तवंश के अपितु सम्पूर्ण भारतीय इतिहास के महानतम शासकों में से एक है। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। अभिलेखों और सिक्कों से पता चलता है कि उसने 'विक्रमांक', 'विक्रमादित्य', 'सिंहविक्रम', 'नरेंद्रचंद्र', अजीतविक्रम, परमभागवत', परमभट्टारक' आदि उपाधियाँ धारण की थी जो उसकी महानता और राजनीतिक प्रभुता परिचायक हैं।

5.6 फाहियान की यात्रा विवरण के आधार पर चंद्रगुप्त द्वितीय गुप्त की शासन व्यवस्था

चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना चीनी यात्री फाहियान का भारत आना था जिसने भारत के विभिन्न स्थानों पर 399 ईस्वी से 414 ईस्वी तक भ्रमण किया। फाहियान बौद्ध मतानुयायी था। बौद्ध ग्रंथों के गहन अध्ययन तथा बुद्ध के चरण चिन्हों से पवित्र हुए स्थानों को देखने की लालसा से

उसने अपने कुछ सहयोगियों के साथ भारतवर्ष की यात्रा प्रारंभ की थी। अपने भ्रमण वृतांत में फाहियान ने चंद्रगुप्त कालीन भारत की सांस्कृतिक दशा का सुंदर निरूपण किया है पर उसने कहीं भी चंद्रगुप्त द्वितीय के नाम का उल्लेख नहीं किया है पर फाहियान उसके आदर्श शासन व्यवस्था की प्रशंसा करता है।

फाहियान के यात्रा का मुख्य केंद्र धार्मिक था परंतु फिर भी उसके वृतांत में तत्कालीन राजनैतिक और प्रशासनिक जानकारी मिल जाती है। फाहिया ने मध्यदेश का व्यापक भ्रमण किया।

फाहियान मध्यदेश का वर्णन करते हुए लिखता है कि यह ब्राह्मणों का देश था तथा यहाँ के लोग सुखी एवं समृद्ध थे। वह मध्यदेश की राजनैतिक स्थिति के विषय में कहता है कि यहाँ लोगों को अपनी जमीन, मकान का पंजीकरण नहीं कराना पड़ता था और ना ही न्यायालयों में हाज़िरी लगानी पड़ती थी। उन्हें अपनी इच्छा से जाने–आने की तथा रहने की छूट थी। सरकारी भूमि पर खेती करने वाले कृषकों को राजा को उपज का एक भाग देना पड़ता था। यहाँ का दण्ड विधान भी सरल था। बार–बार राजद्रोह करने वाले अपराधी का दायां हाथ काट दिया जाता था। राजकर्मचारी वैतनिक होते थे। सामाजिक स्थिति के विषय में भी वर्णन प्राप्त होता कि यहाँ के लोग किसी जीवित प्राणी की हत्या नहीं करते थे। इसके साथ ही न तो वो माँस का सेवन करते थे और न ही मदिरा का केवल चंडाल अपवाद थे। लोग पशु का व्यापार भी नहीं किया करते थे।

धनवान व्यक्ति चिकित्सालय, धर्मशाला, मन्दिर मठ आदि का निर्माण करते थे।

आर्थिक स्थिति के विषय में फाहियान वर्णन करते हैं कि क्रय–विक्रय में कौड़ियों का प्रयोग होता था। भूमि कर राज्य के आय का प्रमुख स्रोत था। फाहियान के अनुसार आंतरिक और विदेशी व्यापार दोनों ही होते थे। विवरण से स्पष्ट होता है कि प्रजा आर्थिक रूप से संपन्न थी।

फाहियान के यात्रा का मुख्य कारण उसका बौद्ध धर्म के प्रति रूचि थी। अपने विवरण में वो लिखता है कि उत्तर भारत में बौद्ध धर्म बहुत प्रचलित था। धर्मपरायण परिवार भिक्षुओं को भोजन, वस्त्र आदि दान देने के लिए चंदे एकत्रित करते थे। राजाओं वृद्धों तथा भद्र व्यक्तियों की रीति थी कि वे धार्मिक स्थान बनवायें, भूमि और बाग दान में दें और खेतों के लिये बैल तथा अन्य आदमी भी दें इसलिए पक्के पट्टे लिख दिये जाते थे और बाद के राजा भी उनका उलंघन करने का साहस नहीं करते थे।

फाह्यान भारत में रहकर विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया। वह बौद्धमत का था, अतः उसने प्रत्येक वस्तु को उसी दृष्टि से देखा। चंद्रगुप्त द्वितीय का काल

ब्राह्मण धर्म का उत्कर्षकाल था, पर फाहियान ने इस धर्म का खास विवरण नहीं दिया। फाहियान के विवरण से चंद्रगुप्त द्वितीय के काल की शांति, सुव्यवस्था, समृद्धि एवं सहिष्णुता के विषय में जानकारी मिलती हैं।

5.7 सारांश

समुद्रगुप्त एवं दत्तदेवी के पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पिता द्वारा निर्मित साम्राज्य की सीमा में विस्तार करते हुए तथा वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके अपनी राजनैतिक समझ एवं कूटनीति का परिचय दिया। वैष्णव मतावलम्बी होने के बाद भी उसने सभी धर्मों का सम्मान किया तथा धार्मिक सहिष्णुता की स्थापना की। उसके काल की प्रशासनिक ढाँचा एवं दण्ड व्यवस्था सरल तथा पारदर्शी थी। उसने विशाल उपाधियाँ धारण की, जो उसके वीरता एवं पराक्रम को सूचित करता है तथा अभिलेख एवं मुद्रा उसकी राजनैतिक एवं आर्थिक उत्कृष्टता की सूचना देते हैं। यह काल धार्मिक, कला एवं विद्या की दृष्टि से चरमोत्कर्ष का काल था।

5.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. चंद्रगुप्त द्वितीय के साम्राज्य विस्तार की नीतियों पर निबंध लिखिए।
2. फाहियान की यात्रा विवरण के अनुसार चंद्रगुप्त द्वितीय के राज्य की धार्मिक और आर्थिक स्थिति पर टिप्पणी करें।
3. चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा स्थापित वैवाहिक सम्बन्धों पर टिप्पणी करें।
4. चन्द्रगुप्त द्वारा चलाये गये मुद्राओं का विवरण दीजिए।

5.9 संदर्भ ग्रंथ एवं सहायक पाठ्य सामग्री

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1970
2. गुप्त, परमेश्वरी लाल, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख भाग–2, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2012
3. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मुद्राएँ, मोतीलाल बनारसीदास, 2016
4. पाण्डेय, राजबली, प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2015
5. स्मिथ, विंसेट, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, 1924
6. पाण्डेय, विमलचन्द्र, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 2003
7. मजूमदार, रमेशचन्द्र, अल्तेकर, अनंत सदाशिव, द वाकाटक–गुप्त एज, वाराणसी, 1954
8. श्रीराम गोपाल, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, जोधपुर, 1995
9. झा एवं श्रीमाली–प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990
10. राय, उदय नारायण, गुप्त राजवंश एवं उनका युग, लोकभारती प्रकाशन,

इलाहाबाद, 1996
11. श्रीवास्तव, के0सी0, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, प्रयागराज, 2021
12. बनर्जी, राखलदास, द एज ऑफ एंपीरियल गुप्ताज, वाराणसी, 1933
13. मजूमदार, आर0सी0, द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पिपुल, वाल्यूम–3, 1970, मुम्बई

इकाई–6 कुमारगुप्त की उपलब्धियाँ एवं साम्राज्य विस्तार

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 कुमारगुप्त प्रथम

6.4 कुमार गुप्त प्रथम के इतिहास जानने के स्रोत

6.5 उपलब्धियाँ

6.5.1 राजनैतिक

6.5.2 सांस्कृतिक

6.5.3 साम्राज्य विस्तार

6.6 सारांश

6.7 संदर्भ ग्रंथ एवं सहयोगी पाठ्य पुस्तक

6.8 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् गुप्त साम्राज्य की बागड़ोर उसके ज्येष्ठ पुत्र कुमारगुप्त के हाथ में आयी। वह चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा उसकी पत्नी ध्रुव देवी से उत्पन्न पुत्र था।

मौद्रिक साक्ष्य यह सूचना देते हैं कि गोविन्दगुप्त नामक उसका अनुज था जो वैशाली का राज्यपाल था। इतिहासकार प्राप्त वंशावलियों के आधार पर चंद्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् कुमारगुप्त को ही गुप्त सिंहासन का उत्तराधिकारी मानते हैं। बिलसद अभिलेख के अनुसार कुमारगुप्त 415 ईस्वी में शासन करते हुए मिलते हैं। अगर गोविंद गुप्त शासक बने भी होंगे तो संभवतः दो अथवा तीन वर्षों के लिए। कुछ विद्वानों का यह भी विचार है कि कुमारगुप्त प्रथम तथा गोविंदगुप्त के बीच उत्तराधिकार संबंधी युद्ध हुआ होगा जिसमें कुमारगुप्त विजयी रहे होंगे और राज्य सिंहासन पर अधिकार किया होगा किन्तु इस प्रकार की मान्यता के लिए कोई भी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्यन के पश्चात् आप

- कुमारगुप्त प्रथम के विषय में ज्ञान देने वाले साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्रोत से परिचित हो सकेंगे।
- कुमारगुप्त की राजनैतिक उपलब्धियाँ, उसका शासन प्रबंध तथा उसके साम्राज्य विस्तार के विषय में जान सकेगें।

6.3 कुमारगुप्त प्रथम

कुमारगुप्त ने 455 ईस्वी तक शांतिपूर्ण ढंग से 40 वर्षों तक शासन किया कुमारगुप्त ने अपने पिता से जो साम्राज्य प्राप्त किया उसको अक्षुण्ण बनाये रखा। कुमारगुप्त प्रथम का साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में अरब सागर था। सभी राजा सामंत गणराज्य उसकी अधीनता शांति से स्वीकार करते थे।

कुमारगुप्त प्रथम के सिंहासनारोहण के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान मानते हैं कि चंद्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु 412 ईसवी में हो गई थी तभी कुमारगुप्त सिंहासन आरूढ़ हुआ। पर अन्य विद्वान यह मत नहीं स्वीकारते उनका मानना है कि कुमारगुप्त 415 ईस्वी में राजगद्दी पर बैठा तथा 412 से 415 ईस्वी तक उसके भाई गोविंद गुप्ता ने शासन किया था।

6.4 कुमारगुप्त प्रथम के इतिहास को जानने के स्रोत

कुमारगुप्त के विषय में जानने के मुख्य स्रोत अभिलेख एवं मुद्राएं ही हैं जिनका विवरण इस प्रकार है–

अभिलेख

कुमारगुप्त ने अद्यतन अठारह अभिलेख प्राप्त हुए हैं। गुप्त शासकों में सबसे अधिक अभिलेख इसने ही उत्कीर्ण करवाये थे। इसके प्रमुख अभिलेख का विवरण इस प्रकार है–

बिलसद अभिलेख

उत्तर प्रदेश के एटा जनपद में स्थित यह कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल का पहला अभिलेख है। इसमें गुप्तसंवत 96 (415 ईस्वी) अंकित की गई है। इसमें गुप्त वंशावली का वर्णन कुमारगुप्त प्रथम तक किया गया है। इस लेख में ध्रुवशर्मा नाम के एक ब्राह्मण द्वारा स्वामी महासेन के मन्दिर और धर्म संघ बनवाये जाने की जानकारी मिलती है।

गढ़वा अभिलेख

गढ़वा से कुमार गुप्त प्रथम के दो शिलालेख मिले हैं, जिन पर गुप्त संवत् 98(417ईसवी) की तिथि अंकित की गई है। इसमें किसी दानगृह को 10 से 12 दिनार दिए जाने का वर्णन मिलता है। यह अभिलेख प्रयागराज जनपद के गढ़वा नामक स्थान पर स्थित है।

करमदंडा अभिलेख

कुमार गुप्त प्रथम का ये अभिलेख उत्तर प्रदेश के जिले के कर मदंडा गाँव में स्थित है। इस लेख में गुप्त संवत 117 (436 ईसवी) की तिथि उत्कीर्ण है। यह अभिलेख कुमारगुप्त प्रथमका कुमारामात्य पृथ्वी सेन ने उत्तीर्ण करवाया है। यह अभिलेख शिव प्रतिमा के अधोभाग में उत्कीर्ण है। इस अभिलेख का विषय पृथ्वी स्वर के लिए दान है। प्रायः सभी गुप्त अभिलेख नमो सिद्ध से प्रारंभ होते हैं पर यह अभिलेख नमो महादेवाय से आरंभ है। शैवमंत्री की नियुक्ति उसके धर्म सहिष्णुता का प्रमाण है। इस अभिलेख में गुप्तकालीन प्रशासनिक व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है। इस अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है की अधिकारियों के पद भी वंशानुगत हो गए थे।

मानकुँवर अभिलेख

प्रयागराज जनपद में स्थित इस अभिलेख में गुप्तसंवत 135 (454 ईस्वी) तिथि उत्कीर्ण है। यह अभिलेख बुद्ध प्रतिमा के नीचे उत्कीर्ण करायी गयी थी।

सांची लेख

यह अभिलेख गुप्त संवत 131 (450 ईस्वी) का है। इसमें हारिस्वामिनी द्वारा साँची के आर्यसंघ को धनदान देने का वर्णन किया गया है।

मंदसौर अभिलेख–मंदसौर शिलालेख में कुमार गुप्त का पूरी पृथ्वी पर शासन करने (कुमारगुप्ते पृथ्वीम प्रशस्ति) का उल्लेख है। इसमें कई रेशम बुनकरों का लताप्रवास करने का उल्लेख है। यह लेख प्रशस्ति रूप में है जिसकी गुजरात के दासपुर में रचना वत्सभट्टी ने की थी। कुमारगुप्त प्रथम के समय मालवा में इसका राज्यपाल बंधु वर्मा शासन कर रहा था, जिसने सूर्य मंदिर का निर्माण करवाया था। मंदसौर अभिलेख में वत्सभट्टी दशपुर गाव का बड़ा सुंदर वर्णन करते हैं। मन्दसौर अभिलेख में उल्लेख है कि यह दशपुर उन्मत गजराजों के गण्डस्थल से चूते हुए मदजल से सिंचिंत चट्टान वाले सहस्त्रों पर्वतों से भूषित है। इस वर्णन में वत्सभट्टी ने मन्दसौर क्षेत्र में अरावली तथा पर्वत की श्रृंखला को दृष्टिगत रखा होगा, जो क्रमशः उत्तर पश्चिम एवं दक्षिण–पूर्व में फैली है।

दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख यह अभिलेख कुमारगुप्त प्रथम के विषय में जानने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। यह अभिलेख बांग्लादेश के दीनाजपुर जिले में स्थित है तथा इस पर तिथि 124 तथा 129 (493 तथा 448 ईसवी) के कुमारगुप्त के दो लेख मिलते हैं। यहां का शासक चिरदत्त था। इन लेखों में कुमारगुप्त के अनेक पदाधिकारियों के नाम भी प्राप्त होते हैं। कुमारगुप्त के प्रशासन के विषय में भी इससे जानकारी मिलती है।

इसके अतिरिक्त कुमारगुप्त प्रथम के बंगाल से दो अन्य लेख भी मिले हैं तथा उदयगिरि खुलेख, तुमैन अभिलेख, मथुरा लेख भी प्राप्त होते हैं जिनमें इसकी उपाधि परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमभागवत, आदि प्राप्त होती है।

कुमारगुप्त द्वारा प्रचलित मुद्राएँ

कुमारगुप्त प्रथम ने अपने पितामह समुद्रगुप्त और पिता चंद्रगुप्त द्वितीय की तुलना में अधिक मुद्राएँ प्रचलित की। उसने समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त द्वारा प्रवर्तित अनेक मुद्रा प्रकारों को जारी रखते हुए कुछ नवीन प्रकार की मुद्राएं भी प्रचलित की। इसकी मुद्रा पर ही पहली बार कुमार अथवा कार्तिकेय का अंकन मिलता है। कुमारगुप्त ने सोने चांदी एवं ताम्र मुद्राएं प्रचलित की।

कुमारगुप्त की स्वर्ण मुद्राएँ :

1. धनुर्धारी प्रकार
2. अश्वरोही प्रकार
3. खड्गधारी प्रकार
4. सिंहनिहंत प्रकार
5. व्याघ्रनिहंता प्रकार
6. गाजारोही प्रकार
7. ग़ज़ारूढ़ प्रकार
8. खड्गनिंहता प्रकार
9. अश्वमेध प्रकार
10. कार्तिकेय प्रकार
11. छत्र प्रकार
12. अप्रतिघ प्रकार
13. वीणाधारी प्रकार
14. राजा–रानी प्रकार

कुमारगुप्त प्रथम के स्वर्ण सिक्कों पर उसकी उपाधि महाराजाधिराज, श्रीमहेंद्र, अजीतमहेंद्र, श्रीमहेंद्रगज, सिंहनिहंतामहेंद्रगज, श्रीमहेंद्रगजखड्ग, अप्रतिघ,

महेंद्रकुमार, महेंद्र आदित्य आदि विरूद प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त इन सिक्कों पर विभिन्न हिंदू देवी देवता के अंकन प्राप्त होते हैं। कुमारगुप्त प्रथम ने चंद्रगुप्त द्वितीय की तुलना में अधिक संख्या में रजत मुद्राएं प्रचलित कराया। इनके कई वर्ग और उपवर्ग भी दिखाई देते हैं। इसके काल में गंगा की घाटी के प्रांतों के लिए रजत मुद्राएं प्रवर्तित कराई गई थी। स्वर्ण मुद्राओं के साथ–साथ चांदी और ताम्र की मुद्राओं ने व्यवहार को विशेषता कम मूल्य की वस्तुओं के क्रय विक्रय को सरल कर दिया था। पश्चिमी भारत में कुमारगुप्त प्रथम ने शक क्षत्रप राजाओं की मुद्राओं का अनुकरण करते हुए चांदी के सिक्के प्रचलित कराये थे। यह सिक्के सामान्यतः चंद्रगुप्त द्वितीय के सामान ही हैं। यह सिक्के तत्कालीन समाज के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक दशाओं का वर्णन करने में सक्षम होते है।

साहित्यिक साक्ष्य

आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में कुमारगुप्त प्रथम के नाम का उल्लेख आया है। इसके अतिरिक्त कथासरित्सागर, चंद्रगर्भपरिपृक्षा में उल्लिखित महेंद्रादित्य व महेंद्र सेन की उपाधि कुमारगुप्त प्रथम की उपाधि प्रतीत होती है।

6.5 कुमारगुप्त प्रथम की उपलब्धियाँ

6.5.1 राजनैतिक उपलब्धियाँ

कुमारगुप्त प्रथम ने अपने चालीस वर्षों के शासन काल में कोई सैन्य अभियान तो नहीं किया, परंतु उत्तराधिकार में प्राप्त विशाल साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखा। उसके राज्य काल में शान्ति रही। उसकी किसी भी सैनिक उपलब्धि की सूचना हमें लेखों अथवा सिक्कों से नहीं मिलती। उसके कुछ सिक्कों के ऊपर 'व्याघ्रबलपराक्रमः' अर्थात व्याघ्र के समान बल एवं पराक्रम वाला की उपाधि अंकित मिलती है। रायचौधरी ने इस आधार पर यह मत प्रतिपादित किया है कि कुमारगुप्त प्रथम अपने पितामह (समुद्रगुप्त) के समान दक्षिणी अभियान पर गया तथा नर्मदा नदी को पार कर व्याघ्र वाले जंगली क्षेत्रों को अपने अधीन करने का प्रयास किया किन्तु मात्र सिक्कों के आधार पर ही हम उसकी विजय का निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। राधामुकुन्द मुकर्जी ने इसी प्रकार खड्गनिहन्ता प्रकार के सिक्के के आधार पर उसकी असम विजय का निष्कर्ष निकाला है किन्तु यह मत भी काल्पनिक प्रतीत होता है।

कुमारगुप्त के शासन का प्रारंभ का काल सुख शांति और संपन्नता का काल था। शासन के प्रारंभ में उसे किसी वाह्य आक्रमण का सामना नहीं करना पड़ा था। उसके अधीन शासक भी शांत थे। बिलसद और मंदसौर अभिलेख से यह बात भी ज्ञात होती है कि इसका प्रारंभिक वर्ष बहुत ही शांतिपूर्ण एवं संपन्नता में बीता था।

यद्यपि प्रारंभ का समय सुख शांति का काल था किंतु अंतिम चरण में उसे वाह्य आक्रमणों का सामना पड़ा। उसके शासन के अंतिम वर्ष में पुष्यमित्र शुंग का आक्रमण हुआ जिसमें गुप्तो की ओर से स्कंदगुप्त ने युद्ध किया था। स्कंदगुप्त के भीतरी स्तंभलेख से यह ज्ञात होता है कि स्कंदगुप्त का युद्ध पुष्यमित्र और हूणों के साथ हुअ था। इस लेख के अनुसार पुष्यमित्र की सैनिक शक्ति और संपत्ति बहुत अधिक थी। इस आक्रमण ने गुप्त वंश की राजलक्ष्मी को विचलित कर दिया तथा स्कंद गुप्त को पूरी रात पृथ्वी पर ही जागकर बितानी पड़ी थी।

विचलित कुललक्ष्मी स्तम्भनायोद्यतेत,

क्षितितलशयनीये येन नोता त्रियामा

समुदितबलकोशान्पुष्यमित्रांश्चजित्वा

क्षितिपचरणपीठे स्थापितो वाम पाद।।

इस युद्ध में स्कंदगुप्त विजयी रहा। पर उसके राज्य को कष्ट का सामना करना पड़ा। इस विजय की खबर सुनने से पहले ही कुमारगुप्त की मृत्यु हो चुकी थी। इस आक्रमण का साक्ष्य हमें और कहीं नहीं मिलता। यह पुष्यमित्र कौन था? यह भी इतिहास की एक पहेली है। फ्लिंट के अनुसार ये लोग नर्मदा के आसपास रहते थे। वायुपुराण तथा जैन कल्पसूत्र में भी इस जाति का उल्लेख आया हैं। इसके अनुसार ये नर्मदा नदी के मुहाने के समीप मे शासन करते थे। ये पुराण फ्लिंट के मत का पूर्ण समर्थन करते हैं। वी.ए. स्मिथ का विचार है कि ये पुष्यमित्र जाति के लोग पश्चिमोत्तर भारत में शासन कर रहे थे पर साक्ष्य के अभाव में यह मत मानने में कठिनाई है।

6.5.2 सांस्कृतिक उपलब्धियां

धर्म एवं धार्मिक निर्माण कार्य

कुमारगुप्त अपने पिता चंद्रगुप्त द्वितीय के सामान वैष्णव था। उसके अभिलेखो एवं मुद्राओं में उसे परमभागवत् कहा गया है। यद्यपि वह वैष्णव था किंतु अन्य धर्म के प्रति सहिष्णु था। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में लिखा है कि शक्रादित्य ने बौद्ध विहार की स्थापना करवाई थी। उसका मंत्री शैव था, इस बात की पुष्टि कर्मदंडा अभिलेख से होती है। मानकुँवर अभिलेख से भी ज्ञात होता है कि उसके शासन काल में बुद्धमित्र नामक एक बौद्ध भिक्षु ने बुद्ध प्रतिमा की स्थापना करवाई थी। मंदसौर लेख से पता चलता है कि बंधुवर्मा ने सूर्यमन्दिर की स्थापना करवाई थी। इससे यह कहा जा सकता है कि कुमारगुप्त के शासनकाल में हिन्दु बौद्ध तथा जैन तीनों ही धर्म के लोगों में कोई वैमनस्यता का भाव नहीं था।

अश्वमेध यज्ञ

कुमारगुप्त के सिक्कों से पता चलता है कि उसने अश्वमेध यज्ञ किया था। उसके सिक्के के मुख्य भाग पर यज्ञयुप में बंधे हुए घोड़े की आकृति तथा पृष्ठ भाग पर 'श्री अश्वमेधमहेंद्र' मुद्रालेख अंकित है पर यह मुद्रा किस उपलक्ष में कुमारगुप्त ने प्रचलित करवाई थी या कह पाना कठिन है।

प्रांतीय प्रशासन : कुमारगुप्त प्रथम के अभिलेखों से निम्नलिखित प्रान्तीय पदाधिकारियों के नाम ज्ञात होते है–

चिरादत्तः– दामोदर के ताम्रपत्र में इसे पण्डवर्धन मुक्ति (उत्तरी बंगाल) का राज्यपाल बताया गया है।

घटोत्कचगुप्त– सुमन (म०प्र०) के लेख में इसे एरण प्रदेश (पूर्वी मालवा) का शासक कहा गया है।

बन्धुवर्मा– यह पश्चिमी मालवा क्षेत्र का राज्यपाल था। इसकी सूचना मन्दसार अभिलेख में मिलती है। इसने सूर्य मन्दिर स्थापना करायी थी।

पृथिवीषेण – करमदण्डा अभिलेख से पता चलता है कि पृथि प्रदेश का सचिव, कुमारामात्य तथा महाबलाधिकृत के पदों पर कार्य कर चुका था।

इस प्रकार अभिलेखीय स्रोत बताते हैं कि कुमारगुप्त ने राज्यपालों (उपरिक) के माध्यम से अपने साम्राज्य पर शासन किया, जिन्होंने महाराजा (महान राजा) की उपाधि धारण की और विभिन्न प्रांतों (भुक्तियों) पर शासन किया। प्रांतों के जिलों (विषयों) का प्रशासन जिलाविषयपति द्वारा किया जाता था, जिन्हें एक सलाहकार परिषद द्वारा समर्थित किया जाता था।

कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल के दौरान गुप्त साम्राज्य कई प्रांतों में विभाजित था। कुमारगुप्त के अभिलेख बंगाल के दिनाजपुर और राजशाही क्षेत्रों में पाए गए हैं, जो कुमारगुप्त की संप्रभुता के दौरान बंगाल को गुप्त साम्राज्य के एक प्रांत के रूप में दर्शाता है। मालवा और मंदसौर के क्षेत्र भी गुप्त साम्राज्य के अंतर्गत महत्वपूर्ण प्रांत थे। कुमारगुप्त ने कुशल और सक्षम लोगों को उन प्रांतों के राज्यपाल के रूप में नियुक्त करके एक मजबूत प्रांतीय प्रशासन को बनाए रखा था। कुमारगुप्त ने स्वयं प्रांतीय प्रशासन के उचित रखरखाव पर नज़र रखी थी।

विद्या प्रेमः कुमारगुप्त अपने पूर्वजों के समान ही विद्वानों का आश्रयदाता था। बामन ने अपने काव्यालङ्कार–सूत्रवृत्ति में चन्द्रगुप्त के 'चन्द्रप्रकाश' नाम वाले या उपाधिवाले पुत्र का उल्लेख किया है जो विद्वानोका आश्रयदाता था। यह उल्लेख इस प्रकार है–

सोय सम्प्रति चन्द्रगुप्ततनयः चन्द्रप्रकाश युवा,

जातो भूपतिराश्रयः कृतधिया दिष्टया कृतार्थमः।।

जॉन एलन का कथन है कि यह चन्द्रप्रकाश की पदवी चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त के ही लिए प्रयुक्त की गई है या यह विशेषण के रूप में उल्लिखित है। उपर्युक्त कथन से यह सच प्रतीत होता है कि कुमारगुप्त प्रथम विद्वानों का आश्रय दाता था।

6.5.3 साम्राज्य विस्तार

कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल के दौरान जारी किए गए शिलालेख मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश से प्राप्त हुए है। उसके पुत्र का एक शिलालेख गुजरात से प्राप्त हुआ है। इसके अलावा, कुमारगुप्त के गरुड़ अंकित सिक्के पश्चिमी भारत में से प्राप्त हुए हैं और उनके मोर– अंकित सिक्के गंगा घाटी से प्राप्त हुए हैं। बयाना मुद्राभाण्ड से कुमारगुप्त की 623 सोने की मुद्राएँ मिली है। कुमारगुप्त की मुद्राएँ अहमदाबाद, वल्लभी, जूनागढ़, मौखी आदि से प्राप्त हुई हैं। पुराणों में भी उल्लेख आया है कि उसने साम्राज्य का विस्तार कलिंग और माहिषक को मिलाकर किया था। उसके साम्राज्य में पुण्ड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल), दशपुर (मालव), एरिकिण (उत्तरचेदि) के राज्य थे। मंदसौर के शिलालेख से उल्लेख मिलता है कि वह चारों समुद्रों की चंचल लहरों से घिरी हुई पृथ्वी पर शासन करता था। सुराष्ट्र से बंगाल तक उसका राज्य फैला था। कुमारगुप्त कालीन एलिचपुर और ब्रह्मपुरी से मिले सिक्कों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि दक्षिण में भी गुप्तों का प्रभाव बना हुआ था। इन विवरण के अवलोकन से पता चलता है कि वह उस विशाल क्षेत्र पर नियंत्रण बनाए रखने में सक्षम था जो उसे विरासत में मिला था। इस प्रकार, भले ही उसका शासन सैन्य रूप से असमान था, परंतु वह एक बड़े साम्राज्य को स्थिर बनाए रखने में सक्षम होने के लिए एक मजबूत शासक रहा होगा। मंजुश्री मूलकल्प में भी उल्लेख मिलता है कि कुमारगुप्त महेंद्र श्रेष्ठ राजा थे।

उपर्युक्त वर्णन उसे स्पष्ट होता है कि कुमारगुप्त की सैनिक उपलब्धि भले ही कम रही हो पर शासक रूप में उसका यश चतुर्दिक फैला हुआ था। कुमारगुप्त ने अपने पूर्वजों की भाँति प्रजा को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की थी।

6.6 सारांश

कुमारगुप्त अपने पिता चंद्रगुप्त द्वितीय तथा पितामह समुद्रगुप्त जैसा विजयी शासक तो नहीं था परंतु उसने उनके द्वारा प्राप्त विशाल साम्राज्य को सुरक्षित बनाए रखा। कुमारगुप्त के सम्बन्ध में डॉ. आर. सी. मजूमदार ने लिखा है–

''कुमारगुप्त के राज्य को प्रायः रुचिहीन और महत्वशून्य समझा जाता है लेकिन उसके चरित्र और कार्यों का ठीक मूल्यांकन करते समय हमें उन महत्त्वपूर्ण विवरणों को उपयुक्त महत्ता देनी चाहिए जिन्हें आमतौर पर उपेक्षित कर दिया जाता है। इस समय के अनेक अभिलेखों में केवल एक सैनिक अभियान का उल्लेख है जो उसके राज्यकाल के अन्त में भेजा गया। इसके अतिरिक्त अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक उसकी अपनी देख–रेख में एक शान्तिमय और सुस्थिर प्रशासन का आभास होता है। इतने बड़े साम्राज्य को केवल एक सशक्त और उपकारी शासन ही इस प्रकार नियंत्रण में रख सकता था। उसकी मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही हूणों तथा अन्य शत्रुओं की पराजय से राजसेना की कुशलता का प्रमाण मिलता है। कुमारगुप्त के लिए यह श्रेय की बात थी कि लगभग 40 वर्ष तक शान्तिपूर्ण समय में भी राज–सेना को सुरक्षित रखा गया। यह असम्भव नहीं कि आधुनिक इतिहासज्ञ कुमारगुप्त के प्रशासन और व्यक्तित्व को जितना श्रेय प्रदान करते हैं उससे अधिक श्रेय उसे देना चाहिए। उसके राज्य को एक अन्धकारमयी पृष्ठभूमि समझा जाता है, जिसके सामने उसके उत्तराधिकारी और दो पूर्वाधिकारियों के राज्य चमकते दिखाई देते हैं। हमें ज्ञात है कि यह सम्भवतः उचित नहीं है और वास्तविक ऐतिहासिक तथ्य से संगत नहीं है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि कुमारगुप्त की सैन्य उपलब्धियाँ भले ही कम रही थी परन्तु शासक रूप में उसका यश चतुर्दिक फैला हुआ था। कुमारगुप्त ने अपने पूर्वजों की भाँति प्रजा को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की थी। स्वर्ण मुद्राओं पर उसे 'गुप्तकुलव्योमशशी' कहा गया है जो उसकी उत्कृष्टता को प्रदर्शित करती है।

6.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुमारगुप्त प्रथम की राजनैतिक उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए
2. कुमारगुप्त के सांस्कृतिक उपलब्धियों पर टिप्पणी करें।
3. कुमारगुप्त के प्राप्त अभिलेखों एवं मुद्राओं के संदर्भ में उसके साम्राज्य विस्तार पर एक टिप्पणी कीजिये।

6.8 संदर्भ ग्रंथ एवं पाठ्य पुस्तक

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, विश्वविद्याल, वाराणसी, 1970
2. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, खण्ड –2, इलाहाबाद
3. श्रीवास्तव, के० सी०, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, प्रयागराज, 1991
4. पाण्डये राजबली – प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2015

5. बनर्जी, राखलदास, द एज ऑफ गुप्ताज, वाराणसी 1933
6. मजूमदार, रमेशचन्द्र, अल्तेकर, अनन्त सदाशिव, द वाकाटक–गुप्त एज, वाराणसी 1954
7. गोयल, श्रीराम – गुप्त साम्राज्य का इतिहास, जोधपुर, 1995
8. झा एवं श्रीमाली–प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990

इकाई–07 स्कंदगुप्त की उपलब्धियां एवं साम्राज्य विस्तार

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 स्कंदगुप्त के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्रोत

7.3.1 पुरातात्विक स्रोत

7.3.1.1 अभिलेख

7.3.1.2 मुद्राएं

7.3.2 साहित्यिक स्रोत

7.4 उत्तराधिकार का युद्ध

7.5 स्कंदगुप्त की राजनैतिक उपलब्धियां

7.5.1 पुष्यमित्रों का आक्रमण

7.5.2 हूणों का आक्रमण

7.5.3 नागों से संघर्ष

7.5.4 वाकाटकों से युद्ध

7.6 साम्राज्य विस्तार

7.7 शासन प्रबन्ध

7.8 धामिक सहिष्णुता

7.9 लोकोपकारी कार्य

7.10 उपाधियाँ

7.11 मूल्यांकन

7.12 सारांश

7.13 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं सहायक उपयोगी पाठ्य पुस्तकें

7.14 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

अपने पिता कुमारगुप्त प्रथम के मृत्यु के पश्चात् स्कंदगुप्त ने गप्त शासन की बागडोर संभाली। स्कंदगप्त के शासन की प्रथम तिथि जूनागढ़ अभिलेख में गुप्त संवत् 136" यानी 455 ईस्वी उत्कीर्ण प्राप्त होती हैं तथा गढ़वा अभिलेख एवं चांदी के सिक्कों में उसकी अन्तिम तिथि ''गुप्त तिथि 148 यानी 467 ईस्वी उत्कीर्ण है। इस आधार पर स्कंदगुप्त का शासन काल 455 ईस्वी से 467 ईस्वी तक अर्थात् कुल 12 वर्ष तक रहा। स्कंदगुप्त को गुप्त वंश का अन्तिम प्रतापी शासक माना जाता है।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- स्कंदगुप्त की राजनीतिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों से परिचित हो सकेंगे।
- स्कंदगुप्त के काल में हुए आक्रमणों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- स्कंदगुप्त के शासन व्यवस्था के विषय में जान सकेंगे।
- प्रजा के प्रति स्कन्दगुप्त के विचारों तथा स्कंदगुप्त की धार्मिक नीतियों से परिचित हो सकेंगे।

7.3 स्कंदगुप्त के विषय में जानने के ऐतिहासिक स्रोत

स्कंदगुप्त के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के विषय में जानकारी के लिए हमें कई पुरातात्विक स्रोत और साहित्यिक स्रोतों से सूचनाएं प्राप्त होती हैं जो निम्नवत हैं–

7.3.1 पुरातात्विक स्रोत

स्कंदगुप्त के विषय में सूचनाएं उसके द्वारा विभिन्न स्थानों पर उत्कीर्ण करवाए गए अभिलेखों, तथा उसके द्वारा चलवाए गए सिक्कों के माध्यम से प्राप्त होती हैं।

7.3.1.1 अभिलेख

स्कंदगुप्त के अभिलेखों द्वारा हमें उसके शासन काल की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

- गुजरात के जूनागढ़ से स्कंदगुप्त का एक लेख प्राप्त हुआ है जिसमें स्कंदगुप्त के शासन काल की प्रथम तिथि गुप्त संवत् 136 अर्थात् 455 ईस्वी उत्कीर्ण हं। इसके विवरणों से पता चलता हैं कि स्कंदगुप्त ने हूणों को पराजित

किया तथा सौराष्ट्र प्रान्त में पर्णदत्त को अपना राज्यपाल नियुक्त किया था। जूनागढ़ अभिलेख में हूणों को म्लेच्छ कहा गया है। जूनागढ़ अभिलेख से ही गिरनार के पुरपति चक्रपालित के द्वारा सुदर्शन झील के बांध के पुनर्निर्माण के बारे में पता चलता है। लेख में उत्कीर्ण 'गुप्त प्रकाले गणना विधय' से स्पष्ट होता है कि उस समय काल गणना गुप्त संवत् से ही की जाती थी।

- बिहार के पटना के निकटस्थ एक अभिलेख में स्कंदगुप्त के समय तक के गुप्त राजाओं के नाम प्राप्त होते हैं परन्तु इस लेख पर कोई तिथि अंकित नहीं हैं।
- उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर के इन्दौर नामक स्थान से गुप्त संवत् 146 अर्थात् 465 ईस्वी का उत्कीर्ण एक लेख प्राप्त हुआ हैं। इस लेख में सूर्य की पूजार्थ सूर्य के मन्दिर में दीपक जलाए जाने के लि एक तैलिक श्रेणी द्वारा धनदान करने का वर्णन हैं।
- उत्तर प्रदेश के गाजीपुर के भीतरी नामक स्थान से प्राप्त अभिलेख में स्कंदगुप्त के जीवन के अनेक घटनाओं का वर्णन मिलता है। इसी अभिलेख में स्कंदगुप्त का पुष्यमित्र एवं हूणों के साथ युद्ध का विवरण प्राप्त होत है।
- उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के कहौम नामक स्थान से प्राप्त स्तंभलेख के द्वारा मद्र नामक व्यक्ति द्वारा पांच जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के निर्माण का विवरण प्राप्त होता है। इस लेख में गुप्त संवत् 141 अर्थात् 460 ईस्वी की तिथि उत्कीर्ण हैं।
- मध्य प्रदेश के रीवा जनपद के सुपिया नामक स्थल से गुप्त संवत् 141 अर्थात् 460 ईस्वी की तिथि अंकित लेख प्राप्त हुआ हैं, लेख में गुप्त वंश को 'घटोत्कच वंश' कहा गया हैं।
- उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जनपद के गढ़वा नामक स्थान से स्कंदगुप्त के शासन काल का अन्तिम अभिलेख प्राप्त हुआ हैं जिसमें गुप्त संवत् 148 अर्थात् 467 ईस्वी की तिथि अंकित है।

7.3.1.2 मुद्राएँ

स्कंदगुप्त के शासन काल के अभिलेखों के अतिरिक्त स्वर्ण एवं रजत मुद्राएं भी प्राप्त होती हैं। स्वर्ण मुद्राओं में मुख भाग पर धनुष बाण लिए हुए राजा की आकृति तथा पृष्ठ भाग पर पद्मासन में विराजमान लक्ष्मी के साथ–साथ 'श्रीस्कंदगुप्त' उत्कीर्ण हैं। कुछ सिक्कों पर गरूड़ध्वज तथा उपाधि क्रमादित्य का अंकन है।

7.3.2 साहित्यिक स्रोत

स्कंदगुप्त के विषय में साहित्यिक ग्रंथों से भी सूचनाएँ प्राप्त होती है। इन

ग्रंथों में कथासरित्सगार, चंद्रगर्भपरिपृच्छा, चांद्र व्याकरण, आर्यमंजूश्रीमूलकल्प आदि हैं जो स्कंदगुप्त के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं की जानकारी प्रदान करते हैं।

7.4 उत्तराधिकार का युद्ध

रमेशचंद्र मजूमदार तथा गांगुली जैसे इतिहासकारों की मान्यता हैं कि कुमारगुप्त प्रथम के बाद उसका पुत्र पुरुगुप्त गुप्त वंश के सिंहासन पर बैठा तत्पश्चात् पुरुगुप्त और स्कंदगुप्त के मध्य गुप्त वंश के राजसिंहासन के लिए युद्ध हुआ। इस युद्ध में स्कंदगुप्त ने पुरुगुप्त की हत्या कर दी और गुप्त वंश के सिंहासन पर आसीन हुआ। अपने मत की पुष्टि इतिहासकारों ने भीतरी जूनागढ़ अभिलेखों में वर्णित तथ्यों द्वारा की है।

स्कंदगुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख में स्कन्दगुप्त के पूर्व के सभी राजाओं के माताओं के नाम के साथ महादेवी शब्द जुडा प्राप्त होता है। पुरुगुप्त की माता को भी महादेवी कहा गया है परन्तु स्कन्दगुप्त क`लेखों में उसकी माता का नाम नहीं मिलता है। सम्भव है कि स्कन्दगुप्त की माँ प्रधानरानी नहीं रही होंगी। राज्य का उत्तरधिकारी न होने पर स्कन्दगुप्त ने बलपूर्वक राज्य पर अधिकार कर लिया। भीतरी स्तम्भ लेख में उत्कीर्ण एक श्लोक के अनुसार– पिता की मृत्यु के बाद वंश लक्ष्मी चंचल हो गई थी। स्कन्दगुप्त ने अपने बाहुबल से अपने शत्रुओं का नाश कर पुनः अपने साम्राज्य की आर्थिक स्थिति मजबूत की। अपने शत्रुओं का नाश करन के पश्चात् स्कंदगुप्त अपनी माँ के पास उसी प्रकार से गए जिस प्रकार से श्री कृष्ण अपने शत्रुओं का नाश करके देवकी माँ के पास गए थे।

रमेशचंद्र मजूमदार के अनुसार गुप्त वंश की राजलक्ष्मी को चंचल करने वाले लोग पुरुगुप्त और उसके सहायक थे। इन लोगों ने कुमारगुप्त के मृत्यु के बाद गद्दी पर अधिकार कर लिया और स्कंदगुप्त ने इन्हें हराकर अपना राज्य स्थापित किया।

स्कंदगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में ऐसा वर्णन मिलता हैं कि 'सभी राजकुमारों को परित्यागकर लक्ष्मी ने स्वयं उसका वरण किया' (व्यपेत्य सर्वान् मनुजेन्द्रपुत्रान् लक्ष्मी स्वयं यं वरयाचकार)। स्कंदगुप्त ने अपने शत्रुओं को परास्त करके पृथ्वी पर अपना अधिकार कर लिया था। इससे यही निष्कर्ष निकलता हैं कि स्कंदगुप्त शासन का वैध उत्तराधिकारी नहीं था तथा स्कंदगुप्त ने अपने बाहुबल से राजसिंहासन पर अपना अधिकार स्थापित किया। स्कंदगुप्त की लक्ष्मी प्रकार की स्वर्ण मुद्रा में अंकित दृश्यों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती हैं। इस मुद्रा के मुख भाग पर दाईं ओर लक्ष्मी तथा बाई ओर राजा का चित्र हैं तथा लक्ष्मी राजा को कोई वस्तु भेंट करती हुई प्रदर्शित हैं जो कि लक्ष्मी द्वारा स्कंदगुप्त के वरण की पुष्टि करता हैं।

कई इतिहासकार यथा मजूमदार आदि विद्वानों के उपरोक्त तर्कों का खण्डन किया है। स्कंदगुप्त की माता का उसके अभिलेखों में वर्णन न होने मात्र से अथवा उसके माता के नाम के आगे महादेवी अंकित न होने से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता हैं कि स्कंदगुप्त अपने राज्य का वैधानिक उत्तराधिकारी नहीं था।

स्कंदगुप्त कुमारगुप्त प्रथम के तुरन्त बाद शासक बना था। इसकी पुष्टि 'आर्यमंजूश्रीमूलकल्प' के एक छंद से होता हैं। 'कथासरित्सागर', 'चंद्रगर्भपरिपृच्छा' एवं अप्रतिघ प्रकार के सिक्कों के आधार पर श्री राम गोयल ने यह मत दिया है, कि वृद्धावस्था में कुमारगुप्त प्रथम ने राजसत्ता का भार स्कंदगुप्त को सौंप दिया था।

इसी प्रकार भीतरी स्तम्भ लेख में जिन शत्रुओं का वर्णन प्राप्त होता हैं वे शत्रु आंतरिक शत्रु न होकर बाह्य शत्रु थे जो पुष्यमित्र और हूण हो सकते हैं। वास्तविकता जो भी रही हो इतना तो स्पष्ट है कि स्कंदगुप्त के शासन के प्रारंभिक वर्ष अत्यंत अशांतिपूर्ण थे परन्तु अपने वीरता और पराक्रम के बल पर स्कंदगुप्त ने अपने साम्राज्य में व्याप्त अशांति को दूर किया।

7.5 स्कंदगुप्त की राजनैतिक उपलब्धियां

स्कंदगुप्त के शासन काल का प्रारंभिक वर्ष गुप्त साम्राज्य के लिए आपत्तियों का काल था। इसके काल में गुप्तों पर बहुत से बाह्य आक्रमण हुए थे।

7.5.1 पुष्यमित्रों का आक्रमण

कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल के अंतिम दिनों में पुष्यमित्रों ने गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। उस समय राजकुमार के रूप में स्कंदगुप्त को ही इस आक्रमण का सामना करना पड़ा। **भीतरी स्तम्भ लेख** से यह सूचना मिलती है कि प्रारंभ में पुष्यमित्र की शक्तियों एवं इनके भयंकर आक्रमण के सामने गुप्तों की शक्ति कमजोर पड़ रही थी तथा इससे गुप्तों की आर्थिक स्थिति भी कमजोर होने लगी थी। अतः स्कंदगुप्त ने अपने वंश की राजलक्ष्मी को बनाए रखने, अपने साम्राज्य को संगठित करने, और पुष्यमित्र की शक्तियों को कुचलने के लिए दिन रात संघर्ष किया। इस संघर्ष में स्कंदगुप्त को एक रात्रि पृथ्वी पर ही सोना पड़ा। अंततः अपने पराक्रम के द्वारा स्कंदगुप्त ने पुष्यमित्र पर विजय प्राप्त की और इन पर विजय प्राप्त कर स्कंदगुप्त ने इन्हें सदैव के लिए शांत कर दिया।

7.5.2 हूणों का आक्रमण

स्कंदगुप्त के शासन काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना गुप्त साम्राज्य पर हूणों का आक्रमण हैं। हूण आक्रमण के विषय में पुरातात्विक और साहित्यिक दोनों प्रमाण

प्राप्त होते हैं। स्कंदगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख व स्कंदगुप्त के भीतरी अभिलेख में हूण आक्रमण के साक्ष्य प्राप्त होते हैं तथा साहित्यिक स्रोतों में 'चंद्रगर्भपरिपृच्छा' एवं 'कथासरित्सागर' ग्रंथ से हूणों के आक्रमण की सूचना प्राप्त होती है।

गुप्तों ने उत्तर पश्चिम सीमा पर अपना अधिकार तो कर लिया था परंतु इसकी सुरक्षा की व्यवस्था सही प्रकार से नहीं कर पाए। इसी का लाभ उठाकर मध्य एशिया की पूर्वी शाखा के हूणों ने गुप्तों पर आक्रमण कर दिया।

भीतरी अभिलेख और जूनागढ़ अभिलेख में तथा चंद्रगर्भपरिपृच्छा नामक बौद्ध ग्रंथों में इन विदेशी आक्रमणकारियों को हूण, म्लेच्छ, या विदेशी कहा गया हैं। म्लेच्छों पर स्कंदगुप्त की सफलता का वर्णन जूनागढ़ अभिलेख से प्राप्त होता हैं। हूणों के साथ स्कंदगुप्त के युद्ध का वर्णन भीतरी स्तम्भ लेख से प्राप्त होता है। चंद्रगर्भपरिपृच्छा में महेन्द्रसेन के पुत्र अर्थात् स्कंदगुप्त द्वारा विदेशियों पर विजय प्राप्त करने का विवरण प्राप्त होता हैं। सोमदेव के कथासरित्सागर में महेन्द्रादित् के पुत्र विक्रमादित्य अर्थात् स्कंदगुप्त ने म्लेच्छों को जीतने का वर्णन है।

चांद्र व्याकरण नामक ग्रन्थ में एक वाक्य मिलता हैं– 'अजयत्गुप्तों हूणान्' अर्थात् गुप्तों ने हूणों को जीता था। डॉ0 मजूमदार इस गुप्त का समीकरण स्कंदगुप्त से लगाते हैं। अतः जूनागढ़ अभिलेख में वर्णित म्लेच्छ, भीतरी स्तंभ लेख में वर्णित हूण, चंद्रगर्भपरिपृच्छा में वर्णित विदेशी एवं कथासरित्सागर में वर्णित म्लेच्छ इन सबका तात्पर्य हूणों से था।

हूण मध्य एशिया में रहने वाली एक बर्बर जाति थी। जनसंख्या की वृद्धि और प्रसार की आकांक्षा में ये अपना मूल निवास स्थान छोड़कर नए प्रदेश की तलाश में निकले। कालांतर में ये दो शाखाओं में विभाजित हो गए– पश्चिमी शाखा और पूर्वी शाखा। पश्चिमी शाखा के हूण रोम चले गए और पूर्वी शाखा के लोग भारत की ओर गए और भारत पर कई आक्रमण किए।

जिस समय स्कंदगुप्त गद्दी पर बैठा उसी समय पूर्वी हूणों ने इस पर आक्रमण किया। यू. एन. रॉय ने इन हूणों का नेता खुशनेवाज को बताया है। सौभाग्यवश इस आक्रमण का सामना करने में स्कन्दगुप्त एक योग्य शासक साबित हुआ। हूणों और स्कंदगुप्त के बीच एक भयंकर युद्ध हुआ। इसका संकेत भीतरी स्तंभ लेख से प्राप्त होता हैं जिसके अनुसार हूणों के साथ युद्ध क्षेत्र में उतरने पर उसकी भुजाओं के प्रताप से पृथ्वी कांप गई तथा भीषण आवर्त उठ खड़ा हुआ।

इस युद्ध का विस्तृत विवरण तो प्राप्त नहीं होता हैं परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्कंदगुप्त ने हूणों को पराजित किया और अपने साम्राज्य से इस तरह खदेड़ा कि लगभग आधी शताब्दी तक इन लोगों ने सिंधु नदी पार कर भारत के

अंदर प्रवेश करने की हिम्मत नहीं की। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि स्कंदगुप्त और हूणों का युद्ध किस स्थान पर हुआ। भीतरी अभिलेख में हूण युद्ध का वर्णन करते हुए 'श्रोत्रेषुगंगाध्वनिः' अर्थात् दोनों कानों में गंगा की ध्वनि सुनाई पड़ती थी, उल्लिखित मिलता हैं। इस आधार पर बी. पी. सिन्हा और वासुदेव उपाध्याय का मत है कि यह युद्ध गंगा की घाटी में हुआ होगा। डी. सी. सरकार ने भी इस मत का समर्थन किया है।

उपेन्द्र नाथ ठाकुर के अनुसार यह युद्ध सतलज नदी के तट पर या पश्चिमी भारत के मैदानों में लड़ा गया था। जूनागढ़ अभिलेख से भी ज्ञात होता हैं कि स्कंदगुप्त इस प्रदेश के लिए अधिक चिंतित था और इसने इस पश्चिम प्रदेश में शासक की नियुक्ति के लिए बहुत सोच विचार किया और पश्चिम दिशा का रक्षक इसने बहुत सोच–समझ कर पर्णदत्त को बनाया।

हूणों को पराजित कर उन्हें अपने देश से बाहर निकाल कर स्कंदगुप्त ने एक बड़ी सफलता प्राप्त की। स्कंदगुप्त ने गुप्त साम्राज्य को आने वाले एक भयंकर संकट से बचाया। भारत के ऊपर हूणों के आक्रमण एवं अन्य विद्रोहों का स्कंदगुप्त ने एक सफल प्रतिरोध किया। जो इसके महान उपलब्धियों में से एक था। स्कंदगुप्त के इन कृत्यों से स्कंदगुप्त को भी समुद्रगुप्त एवं चंद्रगुप्त द्वितीय के समान ही 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

स्कंदगुप्त से हूणों का युद्ध 460 ईस्वी से पूर्व हुआ होगा क्योंकि इसी तिथि के कहौम अभिलेख से पता चलता है कि इस समय उसके राज्य में शान्ति थी। इसके बाद के गढ़वा अभिलेख और इंदौर अभिलेख से भी ज्ञात होता हैं कि स्कंदगुप्त के साम्राज्य में शान्ति व्याप्त था। अतः हूणों का यह आक्रमण स्कंदगुप्त के शासन काल के आरंभिक वर्षों में ही हुआ होगा।

7.5.3 नागों से संघर्ष

स्कंदगुप्त का नागों से भी संघर्ष हुआ। इस बात की पुष्टि स्कंदगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से प्राप्त होती हैं। जूनागढ़ अभिलेख में ऐसा वर्णन मिलता है कि 'स्कंदगुप्त की गरुड़ध्वजांकित राजाज्ञा नागरूपी उन राजाओं का मर्दन करने वाली थीं जो मान और दर्प से अपने फन उठाए रहते थे।' इस पर फ्लीट ने यह निष्कर्ष निकाला हैं कि स्कंदगुप्त ने नागवंशी राजाओं को पराजित किया था। पर इस मत के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता हैं।

7.5.4 वाकाटकों से युद्ध

स्कंदगुप्त जब हूणों के आक्रमण में फंसा हुआ था तो इस स्थिति का लाभ उठाकर दक्षिण में वाकाटकों ने उसके क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया और मालवा पर

अपना अधिकार स्थापित कर लिया। बालाघाट ताम्र पत्र में वाकाटक नरेश नरेंद्रसेन को मालवा का अधिपति कहा गया है (कोशल मेकलमालवाधिपतिः अभ्यर्चित शासनः) किंतु शीघ्र ही इस प्रदेश पर स्कंदगुप्त ने अधिकार कर लिया। ए. एस. अल्टेकर ने अपना मत व्यक्त किया हैं कि 455 ईस्वी के लगभग मालवा के सामंत ने गुप्तों के विरूद्ध अधीनता स्वीकार कर ली होगी और यह जीवन पर्यन्त उसका शाासक बना रहा।

7.6 साम्राज्य विस्तार

स्कंदगुप्त के अभिलेखों एवं सिक्कों के व्यापक प्रसार से यह सिद्ध होत हैं कि इसने अपने पिता एवं पितामह के साम्राज्य को पूर्णतः अक्षुण्ण बनाए रखा। जूनागढ़ अभिलेख सौराष्ट्र प्रान्त पर उसके अधिकार की पुष्टि करता हैं। मंदसौर अभिलेख उसके मालवा पर स्वामित्व को सिद्ध करता हैं। इसकी विविध प्रकार की रजत मुद्राएं साम्राज्य के पश्चिमी भाग पर उसके शासन की पुष्टि होती हैं। बिहार के एक अभिलेख से सिद्ध होता है कि आधुनिक बिहार उसके साम्राज्य में था।

भितरी स्तम्भ लेख, कहौम स्तंभ लेख, इन्दौर ताम्रपत्र, गढ़वा एवं कौशांबी शिलालेख से इसका आधिपत्य सम्पूर्ण प्रदेश पर प्रमाणित करता हैं। इसने गरूड़ प्रकार के सिक्के पश्चिमी भारत, वेदी प्रकार के सिक्के मध्य भारत एवं नन्दी प्रकार के सिक्के काठियावाड़ में प्रचलित करवाने के उद्देश्य से उत्कीर्ण करवाए। इस प्रकार इसने समस्त उत्तर भारत पर उसका आधिपत्य था। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक तथा पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में सौराष्ट्र तक के विस्तृत भू–भाग पर शासन स्थापित किया। यह अन्तिम गुप्त सम्राट था जिसने बंगाल से लेकर गुजरात तक के विस्तृत भू–भाग पर शासन किया। जूनागढ़ अभिलेख में उसके साम्राज्य की विशालता के बारे में यह वर्णन मिलता हैं कि इसका साम्राज्य चारों समुद्रों तक फैला हुआ था।

स्कंदगुप्त के सैनिक एवं राजनैतिक उपलब्धियों के विषय में आर0 के0 मुखर्जी का यह विचार तर्कसंगत हैं कि – ''स्कंदगुप्त शत्रुओं को परास्त करके चुप नहीं बैठ गया था उसका सैनिक स्वभाव उसे दिग्विजय की ओर प्रेरित करने लगा। स्कंदगुप्त की यह विजय धर्म विजय थी क्योंकि उसने परास्त शत्रुओं को पुनः स्थापित करके दया भावना प्रदर्शित की।''

7.7 शासन प्रबन्ध

स्कंदगुप्त एक वीर योद्धा के साथ–साथ एक कुशल प्रशासक भी था। अभिलेखों के माध्यम से इसकी शासन व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता हैं। जूनागढ़ अभिलेख में स्कंदगुप्त के शासन प्रबंध कि प्रशंसा की गई है। इसका विशाल

साम्राज्य प्रांतों में बंटा हुआ था। प्रान्तों को देश अथवा अवनी या विषय कहा गया हैं। प्रान्त पर शासन करने वाले राज्यपाल को गोप्ता कहा गया है।

अभिलेखों में स्कंदगुप्त के कुछ गोप्ताओं के नाम मिलते हैं जैसे– पर्णदत्त सौराष्ट्र प्रांत का, सर्वनाग अंतर्वेदी प्रांत का, भीमवर्मन कौशांबी प्रान्त का गोप्ता था। प्रमुख नगरों की शासन व्यवस्था देखने के लिए नगर प्रमुख नियुक्त किए जाते थे। बिहार के लेख में स्कंदगुप्त के कतिपय स्थानीय कर्मचारियों के नाम मिलते हैं–

अग्रहारिक– यह दान में दी गई भूमि की देख–रेख करता था।

शौल्किक – यह शुल्क सम्बन्धित कर्मचारी था।

गौल्मिक – यह जंगलों का अध्यक्ष था।

सौराष्ट्र प्रांत की राजधानी गिरनार का नगर प्रमुख चक्रपालित था जो पर्णदत्त का पुत्र था। प्रशासक लोकोपकारी कार्यों के लिए तत्पर रहते थे। जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता हैं कि स्कंदगुप्त के शासनकाल में भारी वर्षा के कारण ऐतिहासिक सुदर्शन झील का बांध टूट गया था। क्षणभर के लिए वह रमणीय झील सम्पूर्ण विश्व के लिए भयावह आकृति वाली बन गई। इससे प्रजा को कष्ट होने लगा। इस कष्ट को दूर करने के लिए सौराष्ट्र प्रान्त के राज्यापाल पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने जो गिरनार प्रमुख था, दो महीनों के अन्दर धन व्यय करने पत्थरों की जड़ाई द्वारा झील के बांध का पुनः निर्माण करवाया। इससे प्रजा ने चैन की सांस ली एवं स्वभाव से सुदर्शन झील शाश्वत रूप में स्थिर हो गई।

स्कंदगुप्त का शासन उदार था जिसमें जनता सुखी एवं समृद्ध थी। अब साम्राज्य में किसी को कोई कष्ट नहीं था जूनागढ़ अभिलेख में उसके प्रशासन की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि उसकी प्रजा में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो धर्मच्युत हो अथवा दुःखी, दरिद्र, आपत्तिग्रस्त, लोभी या दंडनीय होने के कारण अत्यन्त सताया गया हो।

7.8 धार्मिक सहिष्णुता

स्कंदगुप्त का शासन काल धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता का काल था। स्कंदगुप्त स्वयं वैष्णव धर्मावलंबी था परन्तु इसने धर्म सहिष्णुता की नीति का पालन किया। इसने सभी धर्मों के प्रति सम्मान की नीति अपनाई। इसने परमभागवत की उपाधि धारण की थी। भीतरी स्तंभ लेख के अनुसार इसने भीतरी में विष्णु की प्रतिमा स्थापित करवाई।

जूनागढ़ अभिलेख में वर्णित हैं कि गिरनार के नगर प्रमुख चक्रपालित ने सुदर्शन झील के तट पर विष्णु मंदिर का निर्माण करवाया। इंदौर ताम्रपत्र में सूर्य पूजा का उल्लेख मिलता है। कहौम स्तम्भ लेख से पता चलता है कि मद्र नामक व्यक्ति ने पांच जैन तीर्थकरों की पाषाण प्रतिमाओं का निर्माण करवाया। यद्यपि यह एक जैन था तथापि ब्राह्मणों, श्रमणों एवं गुरुओं का सम्मान करता था।

स्कंदगुप्त ने नालंदा संघाराम को दान दिए। चीन के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किया। एक भारतीय राजदूत 466 ईस्वी में चीनी राजा के दरबार में भेजा गया।

7.9 लोकोपकारी कार्य

स्कंदगुप्त एक लोकोपकारी शासक था इसने अपने प्रजा के सुख–दुःख का सदैव ध्यान रखा। वह दीन दुखियों के प्रति दयावान था। यह प्रजावत्सल शासक था। प्रांतों में नियुक्त इसके राज्यपाल भी लोकोपकारी कार्यों में तत्पर थे।

जूनागढ़ अभिलेख से सूचना मिलती हैं कि स्कंदगुप्त के शासन काल में अधिक वर्षा के कारण ऐतिहासिक सुदर्शन झील का बांध टूट गया था और यह झील जनता के लिए प्रलंयकारी सिद्ध हुआ। प्रजा को इससे बहुत हानि हुई इस कष्ट को दूर करने के लिए सौराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल पर्णदत्त के पुत्र गिरनारनगर प्रमुख चक्रपालित ने दो महीनों में अतुल धन व्यय करके पत्थरों की जड़ाई से झील के बांध का पुनः निर्माण करवाया। अभिलेख के अनुसार यह बांध सौ हाथ लम्बा तथा अरसठ हाथ चौड़ा था। इस निर्माण से प्रजा ने राहत की साँस ली और यह झील सदैव के लिए स्थिर हो गई।

इस सुदर्शन झील का निर्माण चंद्रगुप्त मौर्य के सौराष्ट्र प्रान्त के राज्यपाल पुष्यगुप्त वैश्य ने पश्चिमी भारत में सिंचाई के लिए करवाया था। शक महाक्षत्रप रूद्रदामन (130–150 ई0) के समय यह बांध टूट गया जिसका पुनः निर्माण धन व्यय करके रूद्रदामन ने अपने राज्यपाल सुविशाख के देखरेख में करवाया था।

7.10 उपाधियाँ

स्कंदगुप्त ने अपने शासन काल में कई उपाधियां धारण की जिसकी सूचना अभिलेखों से प्राप्त होती हैं। भीतरी अभिलेख में स्कंदगुप्त की 'क्रमादित्य' और 'विक्रमादित्य' की उपाधियां मिलती हैं। क्रमादित्य की उपाधि उसकी धुनर्धारी, गरूड़, वृषभ, और वेद शैलियों की मुद्राओं पर भी अंकित मिलती हैं। विक्रमादित्य की उपाधि स्कंदगुप्त के वेदी शैली की रजत मुद्राओं पर भी मिलती है। कथासरित्सागर

में भी उसे 'विक्रमादित्य' कहा गया हैं। आर्यमंजूश्रीमूलकल्प में इसे देवराज कहा गया हैं। स्कन्दगुप्त की शक्रोपम की उपाधि उसके कहौम अभिलेख में वर्णित हैं।

7.11 मूल्यांकन

स्कंदगुप्त महानविजेता, कुशल प्रशासक एवं धर्म सहिष्णु शासक था। यह गुप्त वंश के महान राजाओं में से एक था। यदि चंद्रगुप्त मौर्य ने यूनानियों की दास्ता से देश को मुक्त किया एवं चंद्रगुप्त द्वितीय ने विदेशी शकों का उन्मूलन किया और स्कंदगुप्त ने अहंकारी हूणों के गर्व को नष्ट कर इन्हे देश से बाहर खदेड़ दिया जिससे स्कंदगुप्त को देश रक्षक के नाम से भी जाना गया। यह गुप्त वंश के राजाओं की श्रृंखला में अंतिम कड़ी था। इसकी मृत्यु के साथ ही साथ गुप्त साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हुआ।

7.12 सारांश

स्कंदगुप्त एक वीर योद्धा था। अपनी वीरता और कुशलता तथा पराक्रम के बल पर स्कंदगुप्त ने अपने शासनकाल के आरंभिक वर्षों में अपने वंश की विचलित राजलक्ष्मी को पुनः स्थापित किया। कुमारगुप्त प्रथम के पुत्रों में यह सर्वाधिक योग्य एवं बुद्धिमान शासक था। राजकुमार के रूप में इसने पुष्यमित्र को पराजित किया तथा शासक के रूप में इसने हूणों को परास्त किया। यह एक यशस्वी शासक था जिसने अपने शौर्य को अनेक विपत्तियों के होते हुए भी बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक फैलाया।

यह एक वीर सेनानी और उच्च कोटि का संगठनकर्ता था इसने अपने साम्राज्य को प्रांतों में बांटा और वहां योग्य गर्वनरों की नियुक्ति की। इसने कई धार्मिक कार्य भी किए। स्कंदगुप्त में अनेक गुण थे। यह विनय, बल, शील से युक्त था। यह बुद्धिमान और प्रजा के हित में संलग्न शासक था। इसने अपने साम्राज्य को विघटित होने से रोका, अपने प्रजा के हृदय में अपने प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न की। यह गुप्त वंश का अंतिम महान वीर शासक था। इसकी प्रजा इससे इतनी अधिक उपकृत थीं कि 'इसकी उज्जवल कीर्ति का गान शिशु से लेकर प्रौढ़ तक प्रसन्नतापूर्वक सभी दिशाओं में किया करते थे।'

7.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्कंदगुप्त साम्राज्य का महान शासक था, वर्णन कीजिए।
2. स्कंदगुप्त की राजनैतिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
3. स्कंदगुप्त के चारित्रिक विशेषताओं एवं उपलब्धियों की व्याख्या कीजिए।
4. स्कंदगुप्त की साम्राज्य विस्तार नीति और लोकोपकारी कार्यों का वर्णन

कीजिए।

7.14 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं सहायक उपयोगी पाठ्य पुस्तकें

1. गुप्ता, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1970
2. उपाध्याय, भगवतशरण, गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास, 1969
3. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, खण्ड–2, इलाहाबाद, 1970
4. मजूमदार, आर0 सी0, द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल, वॉल्यूम–3, 1970
5. झा, द्विजेंद्र नाथ एवं श्रीमाली, के0 एम0, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990
6. श्रीवास्तव, के0 सी0, प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, प्रयागराज, 1991
7. बनर्जी, राखलदास, द एज ऑफ एंपीरियल गुप्ताज, वाराणसी, 1933
8. स्मिथ, विंसेंट, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, 1924
9. गोयल, श्री राम, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, जोधपुर, 1995
10. पांडेय, विमल चन्द्र, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 2003
11. थापर, रोमिला, भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1975
12. शर्मा, रामशरण, प्रारंभिक भारत का परिचय, नई दिल्ली, 2009
13. सिंह, उपिंदर, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास (प्राचीन काल से लेकर 12वीं शताब्दी तक), 2017

इकाई –8 हूणों का आकमण और उसका प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 हूण कौन थे?

8.3 भारत पर आकमण

8.4 हूणों के आकमण का प्रभाव

8.4.1 ऐतिहासिक प्रकरणों का विना□ा

8.4.2 राजनीतिक प्रभाव

8.4.3 सांस्कृतिक प्रभाव

8.4.4 आर्थिक दशा पर प्रभाव

8.4.5 धार्मिक अत्याचार

8.4.6 व्यापार वाणिज्य को आघात

8.4.7 कला एवं साहित्य को आघात

8.5 तोरमाण

8.6 मिहिरकुल

8.7 हूण सभ्यता

8.8 सारांश

8.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.10 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 प्रस्तावना

इतिहासकारों की माने तो हूण उत्पत्ति पर किसी के पास कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। इतिहासकार बताते हैं कि हूणों का उदय मध्य एशिया में हुआ, जहाँ से उनकी दो शाखा बनी। एक ने रोम पर आक्रमण किया तथा दूसरी ने ईरान से होते

हुए भारत पर।

महाभारत के आदिपर्व 174 अध्याय के अनुसार जब ऋषि वसिष्ठ की नंदिनी (कामधेनु) गाय का राजा विश्वामित्र ने अपहरण करने का प्रयास किया, तब कामधेनु गाय ने क्रोध में आकर, अनेकों योद्धाओं को अपने शरीर से जन्म दिया। उसने अपनी पूँछ से बारंबार अंगार की भारी वर्षा करते हुए पूंछ से ही पह्लवों की सृष्टि की, थनों से द्रविडों और शकों को उत्पन्न किया, योनिदेश से यवनों और गोबर से बहुतेरे शबरों को जन्म दिया। कितने ही शबर उसके मूत्र से प्रकट हुए। उसके पार्श्वभाग से पौण्ड्र, किरात, यवन, सिंहल, बर्बर और खसों की सृष्टि की। इसी प्रकार उस गौ ने फेन से चिबुक, पुलिन्द, चीन, हूण, केरल आदि बहुत प्रकार के मलेच्छों की सृष्टि की।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको हूणों का इतिहास, व उनके द्वारा भारत पर होने वाले आक्रमणों से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

8.2 हूण कौन थे

हूण मूलतः मध्य एशिया की एक जंगली और बर्बर जाति थी, जनसंख्या बढ़ जाने के कारण और कुछ अन्य कारणों से उनको मध्य एशिया छोड़कर भागना पड़ा था, ये लोग दो भागों में बंट गये, इनका एक दल वोल्गा नदी की ओर गया और दूसरा वक्षनद (आक्सस) की घाटी की ओर बढ़ा, जो दल वक्षनद की घाटी की ओर आया था, वह धीरे–धीरे फारस में घुस गया वहाँ से वे लोग अफगानिस्तान में आये और उन्होने गांधार पर कब्जा कर लिया इसके बाद उन्होने भारत के उत्तर पश्चिम में स्थित शक और कुषाण राज्यों को नष्ट कर दिया तत्पश्चात् इन लोगों ने भारत में प्रवेश किया, थोड़े ही समय में इन लोगों ने भारत के उत्तर–पश्चिम में अपना अधिकार कर लिया।

8.3 भारत पर आक्रमण

भारत पर हूणों का पहला आक्रमण 458 ई0 में हुआ उस समय गुप्त सम्राट कुमारगुप्त गद्दी पर था उसने युवराज स्कन्दगुप्त को हूणों का सामना करने का उत्तरदायित्व सौंपा, स्कन्दगुप्त ने हूणों को बुरी तरह पराजित कर दिया, इसी विजय की याद में उसने विष्णु स्तम्भ बनवाया भारत से हारकर हूण बहुत निराश हुये जब तक स्कन्दगुप्त जीवित रहा हूण भारत में अपना पैर नही जमा सके उन्होने फिर ईरान की ओर ध्यान दिया, ईरान को नष्ट करके उन्होने अपनी शक्ति और भी मजबूत कर ली। इस प्रकार शक्ति एकत्रित करके हूणों ने 30 वर्ष बाद भारत पर

फिर आक्रमण किया, हूणों के प्रमुख सरदार तोरमाण और उसका पुत्र मिहिरकुल थे लेकिन स्कन्दगुप्त के बाद कोई शक्तिशाली शासक नहीं हुआ जो हूणों का सामना कर सकता अतः छठी शताब्दी के आरम्भ तक हूणों ने भारत के उत्तर–पश्चिमी हिस्से में एक बहुत बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। धीरे–धीरे हूणों ने गुप्त साम्राज्य को लूटकर उसे छिन्न–भिन्न कर दिया।

8.4 हूणों के आक्रमण का प्रभाव

यद्यपि हूणों का अधिकार भारत में एक छोटे से भाग पर तथा थोड़े समय तक ही रहा पर उसका प्रभाव भारत के राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र पर पड़े बिना नहीं रह सका।

8.4.1 ऐतिहासिक प्रकरणों का विना□ा

हूण असभ्य और बर्बर थे, उन्होने अपने आक्रमण और शासन की अवधि में अनेक मठ, मंदिर और ईमारतें नष्ट करवा दी और अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों का विनाश कर दिया। इस प्रकार ऐसी बहुत सी सामग्री समाप्त हो गयी जिससे उस समय के इतिहास के विषय में बहुत महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती थी।

8.4.2 राजनीतिक प्रभाव

हूणों के आक्रमण का सबसे बुरा प्रभाव गुप्त साम्राज्य पर पड़ा। अनेक आक्रमणों ने उसे नष्ट कर दिया। स्कन्दगुप्त के समय में हूणों को पहली बार करारी हार मिली। जब तक स्कन्दगुप्त जीवित रहा हूणों की दाल नहीं गल पाई पर उसकी मृत्यु के बाद कोई भी ऐसा शक्तिशाली गुप्त शासक नहीं हुआ जो उनका सामना कर सकता था। हूणों ने इस स्थिति का लाभ उठाया और विशाल गुप्त सम्राज्य को नष्ट कर दिया इतना ही नही गुप्त साम्राज्य के नष्ट होने से भारत की राजनीतिक एकता भी नष्ट हो गई और सारा साम्राज्य छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित हो गया।

8.4.3 सांस्कृतिक प्रभाव

हूणों की बर्बरता ने भारत के सांस्कृतिक जीवन को काफी ठेस पहुँचाई, विद्वानों और कलाकारों का वध करके, साहित्यिक, सांस्कृतिक पुस्तकें जलाकर, मठों, विहारों और इमारतों को नष्ट करके उन्होने भारत की संस्कृति को बहुत क्षति पहुँचाई।

हूणों के आक्रमण ने पतनोन्मुख गुप्त साम्राज्य को गहरा आघात पहुँचाया था। हूणों की नृशंसता तथा लूटपाट से भारतीय जनजीवन तथा अर्थव्यवस्था को काफी हानि उठानी पड़ी थी। भारतीय क्षेत्र से उनके हटने के बाद शताब्दियों तक

राजनीतिक एकता तथा आर्थिक सुरक्षा स्थापित नहीं की जा सकी। हूणों के द्वारा अधिगृहीत क्षेत्र कुछ समय के लिए अराजकता एवं अव्यवस्था में डूब गया। उनके आक्रमणों के परिणामस्वरूप पंजाब की गणजातियों का अस्तित्व भी सदा के लिए समाप्त हो गया।

8.4.4 आर्थिक दशा पर प्रभाव

हूण आक्रमण का भारत की आर्थिक दशा पर बुरा प्रभाव पड़ा। देश की आर्थिक दशा बिगड़ गई। स्कन्दगुप्त तथा उसके उत्तराधिकारियों के सिक्कों में धातु की गिरावट से पता चलता है कि उस समय में आर्थिक दशा बिगड़ चुकी थी।

स्कन्दगुप्त के बाद तो स्वर्ण सिक्कों के निर्माण की परंपरा समाप्त हो गयी। अपने द्वारा जीते गये प्रदेशों के आधार पर हूणों ने विविध प्रकार के सिक्के चलाए। अफगानिस्तान एवं पश्चिमोत्तर के कुछ भागों में **ससैनियन** सिक्कों के अनुकरण पर सिक्के चलवाये गये थे। वे चाँदी तथा ताँबे के हैं, तथा इनकी कई निधियां गुजरात, राजस्थान आदि में मिली है भारतीय परंपरा में इन्हें गधैया कहा जाता है। इनके पुरोभाग पर **सासनी** अनुकरण वाले शासक का उर्ध्व भाग तथा पृष्ठतल पर अग्निवेदिका मिलती है। इस प्रकार के सिक्के तेरहवीं शती तक मिलते हैं। इनका प्रसार दक्षिण तक दिखाई देता है जो वहाँ व्यापारियों तक पहुँचाये गये थे।

8.4.5 धार्मिक अत्याचार

हूणों ने नगरों को ध्वस्त किया तथा बौद्ध मठों को लूटा। ये संस्कृति तथा सम्पत्ति के केन्द्र थे।

8.4.6 व्यापार वाणिज्य को आघात –

इस आक्रमण से आर्थिक पतन की गति और तेज हो गई। हूणों ने रोम के साथ भारत के व्यापार वाणिज्य को भी क्षति पहुँचाई। व्यापारिक मार्ग अशांतपूर्ण हो गये तथा बंद हो गये। रोम के साथ व्यापार बंद हो जाने के बाद भारतीय व्यापारी दक्षिण–पूर्व एशिया की ओर उन्मुख हुए। समुद्री मार्ग से होने वाला व्यापार प्रभावित हुआ। कास्मस नामक विद्वान सोपारा, कल्याण, भड़ौच आदि बंदरगाहों का उल्लेख नहीं करता। आंतरिक व्यापार भी प्रभावित हुआ। व्यापार वाणिज्य में सिक्कों का महत्व जाता रहा तथा उनमें सस्ती धातुओं की मिलावट होने लगी।

8.4.7 कला एवं साहित्य को आघात

हूणों के आक्रमण ने भारतीय साहित्य तथा कला को भी गहरा आघात पहुँचाया। मिहिरकुल के काल में तक्षशिला, कौशाम्बी, नालंदा, पाटलिपुत्र जैसे प्राचीन नगर या तो ध्वस्त कर दिये गये या उन्हें भारी क्षति पहुँचाई गई।

बौद्ध विहार तथा स्तूप भी जला दिये गये। चीनी स्रोतों के अनुसार मिहिरकुल ने केवल गांधार प्रदेश में 1600 स्तूपों तथा **कंधराओं** को नष्ट कर दिया था।

हूण खानाबदोश जंगलियों का समूह था। आरम्भ में वे चीन के पड़ोस में रहते थे। वे पश्चिम की ओर बढ़े और दो भागों में विभक्त हो गये। एक भाग वोल्गा की ओर चला गया और दूसरा भाग ऑक्सस की ओर चला गया, जो हूण यूरोप गए थे वे काले हूण कहलाए और उसका सबसे महान नेता **अट्टिला** था। जो हूण ईरान और भारत में रहने लगे वे श्वेत हूण थे और हेफ्थलाइट्स कहलाए। पाँचवी शती ई0 के मध्य में वे आक्सस घाटी में शक्तिशाली बन गये। 484 ई0 में उनके राजा **अख्भोनवर** ने ईरान को **ससैनियन** राजा फिरोज को परास्त किया और उसका वध भी किया, इससे हूणों का मान बढ़ गया और छठी शती के अन्त में वे एक विशाल साम्राज्य पर राज्य करते थे जिसकी राजधानी बल्ख थी।

8.5 तोरमाण

भारत में हूणों के कार्यों के विषय में अधिक प्रामाणिक ज्ञान हमारे पास नहीं है। दो हूण राजाओं तोरमाण और मिहिरकुल के नाम सिक्के तथा अभिलेखों से ज्ञात है। उन्हें हूण समझा जाता है लेकिन इसका कोई प्रबल प्रमाण नहीं है। 520 ईस्वी में गान्धार के हूण राजा के दरबार में चीनी दूत '**सोंण–युन**' ने अपने समय से दो पीढ़ी पहले हूणों द्वारा इस राज्य पर आक्रमण तथा अधिकार का उल्लेख किया है। उसने इस प्रदेश का यह विवरण दिया है – '**ये–थारू** ने इस देश का विनाश किया था और बाद में एक **टेगिन** या राजवंश के एक कुमार को राजा बना दिया, उसके बाद दो पीढ़ियाँ बीत गईं। इस राजा (या वंश) का स्वभाव अत्याचारी या प्रतिकारी था और वह बहुत अत्याचार करता था। वह बुद्ध के सिद्धान्तों में विश्वास नहीं रखता था किन्तु दानव पूजा उसे प्रिय था। केवल अपनी शक्ति पर निर्भर होकर उसने की–पिन (Ki-Pin) या कश्मीर के राजा के साथ युद्ध किया उसके राज्य की सीमाओं के विषय में झगड़ा किया और तीन वर्ष तकवह उससे युद्ध कर चुका था। राजा के पास 100 युद्ध के हाथी थे। राजा निरन्तर अपनी सेनाओं के साथ सीमा पर रहता था और कभी अपने राज्य में वापस न आया।

एक यूनानी लेखक कॉस्मस (Cosmas) ने लगभग 547 ई0 में अपनी कृति 'क्रिसचियन टोपोग्राफी' में इस प्रकार लिखा – भारत के ऊपर, अर्थात उत्तर की ओर श्वेत हूण (White Hunas) रहते हैं। यह वर्णन मिलता है कि **गोल्लास** नामक एक शासक युद्ध में जाते समय अपने साथ दो हजार हाथी और बहुत बड़ी घुड़सवार सेना लेकर जाता है। वह भारत का स्वामी है और लोगों पर अत्याचार करके उनसे शुल्क लेता है। **फाइसन** नदी भारत के विभिन्न देशों को हूणों के देश

से अलग करती है। वही लेखक बताता है कि **फाइसन** नदी सिन्धु है। पाँचवी शती के अन्त में या छठी शती के आरम्भ में तोरमाण पंजाब से बढ़ा और उसने पश्चिमी भारत के बहुत बड़े भाग को विजित किया। **एरण** भी उसके राज्य में था। तोरमाण के सिक्के उसके विदेशी उद्‌भव का प्रमाण देते हैं और वह सिद्ध करते हैं कि वह उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब और कश्मीर के भागों में राज्य करता था। संभवतः गांधार में राज्य करने वाले हूण परिवार से वह सम्बन्धित था। आठवीं शती की एक जैन कृति 'कुवलयमाला' में कहा गया है कि तोरमाण संसार का प्रभु था। चन्द्रभागा या चिनाब नदी के तट पर पवैया में वह रहता था। वह जैन मतानुयायी बन गया था।

तोरमाण के बारे में डॉ0 उपेन्द्र ठाकुर का मत है कि महान विजेता तोरमाण असंदिग्ध रूप से अत्यधिक कुशल शासक और चतुर राजनीतिज्ञ था जिसने हूणों की खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त किया उसने अपने पराक्रम, दूरदृष्टि, शान्त मस्तिष्क, राजनयिकता तथा आराधक व्यवहार के द्वारा मध्य एशिया से पाटलिपुत्र तक फैले विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। उसने चोल प्रशासकीय ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं किया तथा किसी को बेकार में परेशान नहीं किया। उसने धन्यविष्णु जैसे अधिकारियों को मोहित किया तथा प्रान्तीय प्रशासन की पुरानी प्रणाली तथा पुराने अधिकारी परिवारों तथा सामन्तों को बनाये रखा। उसकी इस दूरदर्शिता से नये विजित क्षेत्रों में स्वाभाविक रूप से सुविधा रही और उस युग के शासक परिवारों में कटुता उत्पन्न नही हुई। उसने इतने कम समय में उत्तरी भारत के पर्याप्त भाग को विजित किया कि उसके उदाहरण बहुत कम हैं। यह महान साहसिक एवं आश्चर्यजनक कार्य था जिससे अशोक तथा समुद्रगुप्त भी ईर्ष्या कर सकते थे। वह धार्मिक तथा प्रशासकीय मामलों में सहिष्णु रहा उसने अपने प्रशासन को स्थिर किया, सिक्के जारी किये तथा गुप्त साम्राज्य विघटन की गति को तीव्र किया। अब केवल साम्राज्य का शव ही शेष रह गया था जिसे शीघ्र ही राजनीतिक गिद्धों ने नोच डाला जो ऐसे अवसरों की सदा ही तलाश में रहते थे। तोरमाण का काल समाप्त हो गया किन्तु गुप्तों का वैभव कभी नहीं लौटा और अगली शताब्दी में इतिहास के मंच से वे पूर्णतः गायब हो गये। देश की राजनीतिक एकता इतनी बिगड़ गयी थी कि उसकी भरपाई नहीं हो सकी तथा 550 ईस्वी के बाद भारतीय इतिहास के राष्ट्रीय तथा सामान्य जीवन की साझी कड़ी खो गई। यह सत्य है कि इस समय तक हूण राजनीतिक दृश्य से गायब हो गये थे लेकिन पुराना सामाजिक जीवन फिर नहीं आया।

8.6 मिहिरकुल

लगभग 515 ई0 में तोरमाण का पुत्र मिहिरकुल उसका उत्तराधिकारी बना।

ह्वेनसाँग के अनुसार शासक मिहिरकुल की राजधानी ग्वालियर थी। वह यह भी बताता है कि मिहिरकुल ने इस नगर पर अपना अधिकार स्थापित किया और वह भारत पर राज्य करता था। उसने पड़ोस के सभी प्रदेशों को विजित किया। प्रारम्भ में बौद्ध धर्म में उसे रूचि थी किन्तु बाद में उसने आदेश जारी कर दिया कि पाँचो द्वीप समूहों में सभी भिक्षुओं को समाप्त कर दिया जाये, बुद्ध का नियम समाप्त कर दिया जाये और कुछ शेष न छोड़ा जाये।

राजतरंगिणी में मिहिरकुल को शक्तिशाली राजा कहा गया है जिसने गान्धार और कश्मीर पर राज्य किया और दक्षिणी भारत तथा लंका को विजित किया। मिहिरकुल को प्रचण्ड स्वभाव का व्यक्ति बताया गया है। उसके अत्याचार की लम्बी कहानियाँ बताई गई हैं।

प्रतीत होता है कि मिहिरकुल एक शक्तिशाली राजा था जिसने उत्तरी भारत के अधिकांश राज्यों पर चढ़ाई की। 530 ई0 के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसका प्रभुत्व ग्वालियर तक फैला हुआ था। सम्भवतः उसके आगे भी उसके प्रभुत्व को स्वीकार किया जाता था। कॉस्मस (Cosmas) ने हूण सरदार को भारत का स्वामी बताया है। किन्तु मिहिरकुल शीघ्र ही परास्त हो गया। मंदसौर अभिलेख में यशोधर्मन दावा करता है कि प्रसिद्ध शासक मिहिरकुल ने भी उसके चरणों में सम्मान अर्पित किया जिसका सिर (पहले) (भगवान) स्थाणु (शिव) के अतिरिक्त किसी के आगे नहीं झुका था और जिसके बाहुपाश में आकर बर्फ का पहाड़ (हिमालय) गलन ही अपने आपको अजेय दुर्ग समझ कर गर्व अनुभव करता है।

ह्वेनसाँग ने नरसिंह गुप्त बालादित्य सम्राट द्वारा मिहिरकुल की पराजय का वर्णन इन शब्दों में किया है : मगध नरेश बालादित्य राजा बुद्ध के नियम का अनन्य उपासक था। जब उसने मिहिरकुल के अत्याचारों तथा नृशंसता के समाचार सुने तो उसने राज्य की सीमाओं को पूर्णतः सुरक्षित कर लिया और शुल्क देने से इन्कार कर दिया। जब मिहिरकुल ने उसके राज्य पर आक्रमण किया तो बालादित्य ने अपनी सेना सहित एक द्वीप में आश्रय लिया। मिहिरकुल ने अपनी सेना का बड़ा भाग अपने छोटे भाई के अधीन छोड़ दिया, स्वयं किश्तियों पर सवार हुआ और अपनी सेना के कुछ भाग के साथ द्वीप में उतरा। किन्तु **तंण** दर्रे में बालादित्य के सैनिकों ने उसका पीछा किया और उसे बंदी बना लिया। बालादित्य ने मिहिरकुल का वध करने का निश्चय किया किन्तु अपनी माता के कहने पर उसे मुक्त कर दिया। वापस लौटकर मिहिरकुल को ज्ञात हुआ कि उसका भाई वापस लौट आया था और उसने सिंहासन पर अधिकार कर लिया था। इसीलिये उसने कश्मीर में आश्रय की माँग की और उसे यहाँ आश्रय मिला भी। तब उसने वहाँ एक विद्रोह करवाया और राजा का वध करके स्वयं कश्मीर के सिंहासन पर बैठ गया। उसने

गान्धार के राजा का वध किया और राजवंश समाप्त किया स्तूपों तथा संधाराओं को नष्ट किया और देश की सम्पत्ति को लूटकर लौट गया किन्तु एक ही वर्ष में उसकी मृत्यु हो गई।

मिहिरकुल की मृत्यु की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। कुछ लेखकों के अनुसार उसका 540 ई0 में देहान्त हुआ। कुछ अन्य विद्वानों का विचार है कि उसकी मृत्यु के समय मेघगर्जना और बौछार हुई और घनघोर अन्धकार छा गया और पृथ्वी कम्पायमान हो गई और एक अचानक तूफान आया।

मिहिरकुल के धर्म के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। उसके सिक्कों पर शिव के नन्दी के चित्र हैं। सम्भवतः वह शिव का उपासक था। ग्वालियर अभिलेख में बताया गया है कि मिहिरकुल ने सूर्य का एक मंदिर बनवाया। सम्भवतः वह सूर्य का उपासक भी था। वह बौद्ध धर्मानुयायिओं के प्रति अत्यन्त नृशंस था।

उत्तर गुप्त वंशजों के अभिलेख में एक प्रसंग है कि **मौखरियों** के हाथी गर्व के साथ आगे बढ़ते गये जिन्होने हूणों की सेनाओं को कुचल दिया था। सम्भव है कि हूणों पर यह विजय मौखरि राजा ईशानवर्मा ने प्राप्त की हो। मौखरियों ने भी हूण शासकों की तरह सिक्के चलाये। उन्होने उन प्रदेशों पर भी राज्य किया जो पहले हूणों के अधिकार में थे।

प्रतीत होता है कि मिहिरकुल की पराजय से भारत से हूणों की प्रभुता समाप्त हो गई। उसके बाद वे भारतीय इतिहास में विप्लवकारी शक्ति न रहे। तुर्की तथा ईरानियों द्वारा 563 तथा 567 ई0 के बीच ऑक्सस के तटों पर हूणों की पराजय से भी भारत में उनका मान कम हो गया। छोटे–छोटे हूण सरदार पंजाब तथा उत्तर भारत में राज्य करते रहे। समय के साथ–साथ हूण भारतीय समाज में विलीन हो गये।

8.7 हूण सभ्यता

पश्चिमी संसार के बौद्ध अभिलेखों में कहा गया है कि हूणों की कोई लिखित भाषा नहीं है और उनके शिष्टाचार के नियम भी त्रुटिपूर्ण है। गृहों आदि के चलन का उन्हें कोई ज्ञान नहीं है। वर्षों की गणना में उनके कोई मध्यस्थ मास या कोई और छोटे–बड़े महीने नहीं है, वे केवल वर्षों को बारह भागों में बाँट देते हैं। संगीत के कोई साज नहीं मिलते हैं। यथा देश के राजवंश की स्त्रियां लम्बे–लम्बे वस्त्र पहनती हैं जो तीन फुट से भी अधिक धरती पर लटकते हैं। वे अपने शरीर पर आठ फुट लम्बा एक सींग भी पहनती हैं जिसमें से तीन फुट भाग लाल रंग का होता है। धनी तथा निर्धन लोगों के अपने–अपने ढंग के वस्त्र हैं। उनमें से

अधिकांश बुद्ध में विश्वास नहीं करते और झूठ देवताओं की पूजा करते हैं। वे जीवों की हत्या करते हैं और उनका माँस खाते हैं।

यह सत्य है कि हूणों ने थोड़े समय के लिए भारत में राज्य किया किन्तु उन्होने देश को कई प्रकार से प्रभावित किया। राजनीतिक दृष्टि से हूण आक्रमणों ने गुप्त साम्राज्य के ह्रास और पतन में योग दिया। साम्राज्य के साधन समाप्त हो गये। राजनीतिक एकता समाप्त हो गई और देश कई छोटे–छोटे राज्यों में बंट गया। आक्रमणों से गड़बड़ और अव्यवस्था फैल गई और इससे जनता को हानि हुई।

सांस्कृतिक दृष्टि से हूण आक्रमण अभिशाप सिद्ध हुए। हूणों ने कला की उत्कृष्ट कृतियां नष्ट कर दी। उन्होने विहारों तथा मन्दिरों को गिरा दिया और जला दिया। उन्होने केवल गुप्त कला की कृतियों को ही नष्ट नहीं किया बल्कि इतिहास के बहुमूल्य स्रोत भी जला दिए। उनके विनाश के कारण इतिहासकार बहुत ही लाभदायक सामग्री से वंचित रह गये।

सामाजिक दृष्टि से भी हूण आक्रमणों का महत्व है। हूणों ने भारतीयों की जातिय रचना को भी प्रभावित किया। भारत में राजनीतिक सत्ता खो बैठने के बाद वे देश में ही बस गये। उन्होने भारतीय स्त्रियों से विवाह किए और अन्त में भारतीय समाज में ही विलीन हो गये। डॉ0 स्मिथ बताते हैं कि राजपूतों की तथा कथित 36 जातियों में से एक को वास्तव में ही हूण कहा गया। हैवेल ने लिखा है 'इसमें कोई सन्देह नहीं कि वर्तमान असंख्य राजपूत जातियों में पर्याप्त विदेशी तत्व हैं जिन्हें इण्डो आर्य समाज ने चौथी से छठी शताब्दी तक और उसके बाद अपने अन्दर विलीन कर लिया।

नैतिक प्रभाव को हैवेल ने इन शब्दों में व्यक्त किया है 'हूणों के रक्त के अत्यधिक मिश्रण से इण्डो आर्य परम्परा का मौलिक स्तर नीचा हो गया और बहुत से अश्लील अन्धविश्वासों को पनपने का अवसर मिला जिनकी आर्यावर्त के महान दार्शनिकों तथा आध्यात्मिक आचार्यों ने कल्पना भी न की थी। उसी लेखक के विचार में हूण आक्रमणों ने पूर्वी निरंकुशता के लिए रास्ता खोल दिया।'' हैवेल ने इस बारे में लिखा है ''निरंकुशता का मूल तारतार या मंगोल था। अधिक सम्भावना यही है कि भारतीयों ने इसे मंगोल हूणों से ही प्राप्त किया।

8.8 सारांश

हूणों के आक्रमण का भारतीय समाज पर बहुत प्रभाव पड़ा। जाति प्रथा से बोझिल हिंदु समाज की जड़ें हिल उठी तथा उनके ढांचे में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। कालान्तर में हूण, हिंदू समाज में घुल–मिल गए तथा उन्होने यहाँ के वंशों में

वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिए थे। टाड ने तो इस मत का प्रतिपादन किया है कि भारतीय राजपूतों की उत्पत्ति हूणों से ही हुई।

8.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. हूण कौन थे? उनकी उत्पत्ति पर प्रकाश डालिये।

   .....

2. हूणों के आक्रमण से भारत पर हुए सामाजिक परिवर्तनों के बारे में विस्तार से लिखिये।

   .....

3. हूण साम्राज्य के शक्तिशाली शासकों का वर्णन कीजिये।

   .....

8.10 संदर्भ ग्रन्थ

भण्डारकर, आर.जी.	: अर्ली हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन
जायसवाल, के.पी.	: हिन्दू पॉलिटी
मार्शल, सर जॉन	: गाइड टू साँची
शास्त्री, के.ए. निकन्ता	: ए कॉम्परीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया
स्मिथ, वी.ए.	: अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया
विल्सन	: थियेटर ऑफ द हिंदूज

इकाई–9 गुप्त–वाकाटक संबंध

इकाई की रूपरेखा

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 वाकाटक वंश का संक्षिप्त इतिहास

9.3 वाकाटक वंश के भाासक

9.3.1 विन्ध्यशक्ति (255–75 ई0)

9.3.2 प्रवरसेन प्रथम (275–335 ई०)

9.3.3 रुद्रसेन प्रथम (335–60 ई०)

9.3.4 पृथ्वीषेण प्रथम (360–85 ई०)

9.3.5 रुद्रसेन द्वितीय (385–80 ई.)

9.3.6 प्रभावतीगुप्त (390–410 ई.)

9.3.7 प्रवरसेन द्वितीय (410–40 ई०)

9.3.8 बेसिम शाखा

9.4 वाकाटक शासन–प्रणाली एवं जीवन

9.5 गुप्त वाकाटक संबंध

9.5.1 चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा वाकाटक

9.5.2 प्रभावतीगुप्त का संरक्षण काल

9.6 सारांश

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.8 संदर्भ ग्रन्थ

9.0 प्रस्तावना

वाकाटकों तथा गुप्तों की सम्मिलित शक्ति के कारण ही शकों का विनाश सम्भव हो पाया था। वाकाटकों तथा गुप्तों के प्रारम्भिक सम्बन्धों के विषय में विद्वानों में मतभेद है। इतिहासकार एस. के. आयंगर तथा के. पी. जायसवाल की धारणा है कि दोनों राजवंशों के प्रारम्भिक सम्बन्ध शत्रुतापूर्ण थे।यहाँ दोनों राजवंशों

के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश डाला जायेगा।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको वकाटक वंश का इतिहास, जीवन प्रणाली व गुप्त–वाकाटक संबधों से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

9.2 वाकाटक वंश का संक्षिप्त इतिहास

वाकाटक वंश का भारतीय इतिहास में अपना एक अलग महत्त्व है। दक्षिण भारत के इतिहास में वाकाटकों का अपना एक अलग और महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस वंश का शासन तीसरी शताब्दी से छठी शताब्दी तक रहा। अन्य राजवंश की तरह इस वंश की उत्पत्ति के संबंध में कुछ निश्चित रूप से मालूम नहीं है। महामहोपाध्याय वी० वी० मिराशी के अनुसार वाकाटक ब्राह्मणवंश के थे और उनका संस्थापक विन्ध्यशक्ति विष्णुवृद्धि गोत्र का था। उनकी धारणा अजंता–गुफालेख आधृत है। मिराशी के अनुसार वे लोग दाक्षिणात्य थे।

9.3 वाकाटक वंश के शासक

9.3.1 विन्ध्यशक्ति (255–75 ई०)

विन्ध्यशक्ति इस वंश का पहला शासक था। सातवाहनों के बाद उसने अपनी शक्ति का विकास किया। अजंता–अभिलेख में उसकी तुलना इंद्र और विष्णु से की गई है। उसका शासनकाल 255–275 तक माना गया है। उसके वंशजों ने भी राजवंशावली में उसके नाम का उल्लेख नहीं किया है। वंश के संस्थापक के रूप में इसका उल्लेख केवल अजंता के अभिलेख में हुआ है। उसने ही पश्चिमी मध्यप्रदेश में कहीं वाकाटक राज्य की स्थापना की। पुराण में भी उसे इस वंश का संस्थापक कहा गया है।

9.3.2 प्रवरसेन प्रथम (275–335 ई०)

उसके बाद उसका पुत्र प्रवरसेन प्रथम गद्दी पर बैठा। उसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया और चार अश्वमेध यज्ञ भी किया। उसकी 'समरत' या 'सम्राट्' उपाधि भी थी।

9.3.3 रुद्रसेन प्रथम (335–60 ई०)

उसके बाद रुद्रसेन प्रथम शासक हुआ। वह भी एक शक्तिशाली शासक था। प्रवरसेन के समय भारशिवनरेश के साथ जो वैवाहिक संबंध स्थापित हुआ था, उससे वाकाटकों की शक्ति काफी बढ़ गई थी। उसके साम्राज्य में मध्यप्रदेश, बरार, मालवा उत्तरी महाराष्ट्र, हैदराबाद आदि सम्मिलित थे। रुद्रसेन प्रथम भारशिवों का दौहित्र था। इससे उसे अपने साम्राज्य–निर्माण में काफी सहायता मिली। रुद्रसेन के तीन

पितृव्य थे, जिन्होंने अपना–अपना राज्य अलग कर लिया था और उससे पराजित होने के कारण दो पितृव्यों का राज्य समाप्त हो गया था। रुद्रसेन ने विकेन्द्रीकरण की शक्तियों को दबाकर एक संगठित राज्य की स्थापना की और वाकाटक साम्राज्य को एक नवीन जीवन दिया।

9.3.4 पृथ्वीषेण प्रथम (360–85 ई०)

रुद्रसेन के बाद उसका पुत्र पृथ्वीषेण प्रथम शासक हुआ। वाकाटक राज्य की एक शाखा (बासिम–शाखा) में उस समय सर्वसेन का पुत्र विंध्यसेन शासन कर रहा था और दोनों शाखाओं में उस समय अच्छा संबंध था। पृथ्वीषेण को 'कुंतलेंद्र' उपाधि दी गई है। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उसके पुत्र रुद्रसेन द्वितीय से अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह किया था। इससे स्पष्ट होता है कि पृथ्वीषेण निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण शासक रहा होगा और वाकाटकों की सत्ता उसके समय तक अक्षुण्ण रही होगी।

9.3.5 रुद्रसेन द्वितीय (385–80 ई.)

अपने पिता के बाद रुद्रसेन द्वितीय शासक हुआ। वह चन्द्रगुप्त द्वितीय का दामाद था। उसने बौद्धधर्म त्यागकर वैष्णवधर्म ग्रहण किया। वह एक शक्तिशाली शासक था और यही कारण था कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी पुत्री से उसका विवाह किया था। उसका मूल उद्देश्य था कि इस वैवाहिक संबंध द्वारा वाकाटक–शक्ति को तटस्थ कर दिया जाए और तब शक–क्षत्रपों के खिलाफ लड़ा जाए। चन्द्रगुप्त द्वितीय अपनी इस नीति में सफल हुआ। 390 ई० में तीस वर्ष की अवस्था में रुद्रसेन द्वितीय की अकाल मृत्यु हो गई और उसके बाद उसकी पत्नी प्रभावती गुप्त संरक्षिका के रूप में शासन करने लगी।

9.3.6 प्रभावतीगुप्ता (390–410 ई.)

अपने पिता के सहयोग से उसने संरक्षिका के रूप में अपना शासन अच्छी तरह चलाया और बेसिम शाखावालों ने भी उसे तंग नहीं किया। प्रभावती गुप्त का शासनकाल इसलिए महत्वपूर्ण है कि इस समय गुप्त साम्राज्य और वाकाटक शासन में अच्छा संबंध था। उसके दो पुत्र थे–दिवाकरसेन और दामोदरसेन। दिवाकरसेन की मृत्यु के कारण दामोदरसेन ही गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ और वहीं इतिहास में प्रवरसेन द्वितीय नाम से प्रसिद्ध है। कालिदास का संबंध भी इस वंश के साथ जोड़ा जाता है। वे दोनों राजकुमारों के गुरु थे।

9.3.7 प्रवरसेन द्वितीय (410–40 ई०)

प्रवरसेन एक कुशल प्रशासक और कलाप्रेमी था। उसके कई अभिलेख मिले

हैं, जिससे तात्कालिक व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। साहित्य के प्रति भी उसे बड़ा अनुराग था और सेतुबंध' नामक काव्य का रचयिता उसे ही माना जाता है। उसने अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखा और प्रवरपुर नामक नगर की स्थापना किया। 430 ई० में उसने अपने पुत्र नरेन्द्रसेन का विवाह कुन्तलनरेश की पुत्री अजित भट्टारिका से कर दिया। प्रवरसेन के बाद उसका पुत्र नरेन्द्रसेन (440–60 ई०) शासक हुआ। नलों के शासक भवदत्तवर्मन और नरेन्द्रसेन में संघर्ष हुआ। इसमें संभवतः भवदत्तवर्मन् (नल–शासक) को सफलता मिली, किंतु उसकी मृत्यु के पश्चात नरेन्द्रसेन ने उसके पुत्र अर्थपति को पराजित कर पुनः अपने खोए हुए हिस्से को वापस प्राप्त कर लिया। नल राज्य के कुछ हिस्सों पर भी वाकाटकों का अधिकार हो गया। नलों को पराजित करने के कारण वाकाटकों का महत्त्व तत्कालीन भारत में काफी बढ़ गया था। ऐसा कहा जाता है कि इन लोगों ने मालवा तक अपना अधिकार बढ़ा लिया था। कोसल और मेकल पर भी उनका आधिपत्य था। नरेन्द्रसेन के बाद उसका पुत्र रुद्रसेन शासक हुआ। उसने बासिम शाखा के साथ अपना अच्छा संबंध कायम रखा। उसने अपने राज्य की सीमा का विस्तार भी किया। उसके बाद उसका पुत्र पृथ्वीषेण द्वितीय (460–80 ई०) शासक हुआ। उसने भी बासिम शाखा के साथ अच्छा संबंध रखा। त्रैकूटको और नलों के साथ उसका संघर्ष हुआ था। 400 ई० में उसका अंत हुआ और उसके बाद वाकाटक वंश का शासन बेसिम शाखा के हाथ में चला गया।

9.3.8 बासिम शाखा

इस शाखा का निर्माता प्रवरसेन प्रथम पुत्र सर्वसेन था। उसके बाद विंध्यशक्ति द्वितीय शासक हुआ। उसने कुंतल राज्य पर विजय प्राप्त की। 400 ई० में उसका पुत्र प्रवरसेन द्वितीय राजगद्दी पर बैठा और 15 वर्ष शासन करने के बाद उस शाखा में देवसेन नामक एक शासक हुआ। उसके बाद उसका पुत्र हरिषेण शासक हुआ, जो इस वंश का सबसे शक्तिशाली राजा था। पृथ्वीषेण द्वितीय के बाद हरिषेण ने प्रधान शाखा को भी अपने राज्य में मिला लिया। अजन्ता के लेख में हरिषेण को कुंतल, अवंति, कलिंग, कोसल, त्रिकूट, लाट और आंध्रप्रदेश का स्वामी कहा गया है। हरिषेण (475–510 ई0) का साम्राज्य उतना ही बड़ा था, जितना कि प्रवरसेन प्रथम का था। हरिषेण की मृत्यु के समय वाकाटक का प्रभाव अपने चरमोत्कर्ष पर था। समूचे दक्कन पर उसका अधिकार था। उसके समय वाकाटक राज्य काफी दूर तक फैल गया था, परंतु उसके बाद हम वाकाटक पर राज्य के बारे में कुछ नहीं जानते हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि उसके बाद वाकाटक साम्राज्य का पतन हो गया। उसकी मृत्यु के पचास वर्ष के अंदर ही दक्कन पर चालुक्यों का राज्य हो गया था। हरिषेण के बाद उसका पुत्र (510–30 ई०) गद्दी पर बैठा होगा। विष्णुकुंडीन राजा माधववर्मन प्रथम संभवतः उसी का

दामाद था। इसी के समय में वाकाटक राज्य का विघटन हुआ। कर्नाटक के कदंब उत्तरी महाराष्ट्र के कलचुरी तथा बस्तर नलों ने वाकाटक साम्राज्य के अधिकांश पर अधिकार कर लिया। कर्नाटक में चालुक्यों का उदय हुआ और उन्होने शीघ्र ही इन सबों को पराजित कर इनके राज्य छीन लिए।

9.4 वाकाटक शासन–प्रणाली एवं जीवन

प्रशासन का प्रधान राजा होता था। उसका पद आनुवंशिक होता था। शासक 'महाराज' की उपाधि से विभूषित थे। प्रवरसेन प्रथम ने सम्राट की उपाधि धारण की थी। केवल अजंता के लेख में ही मंत्री का उल्लेख किया है। कुछ मंत्री तो आनुवंशिक होते भी थे। मंत्री राजनीति और सैन्यकला में दक्ष होते थे। प्रधानमंत्री को सर्वाध्यक्ष कहा जाता था। वाकाटक अभिलेखों से चार प्रकार के अधिकारियों का उल्लेख मिलता है– चाट, भाट, संतक और निरीक्षक। ये राज्य का दौरा कर यह पता लगाते थे कि केन्द्रीय सरकार के आदेश नीचे जाते हैं, अथवा नहीं और अधिकारी उसका पालन करते है, अथवा नहीं। लिपिक के रुप में रजक का उल्लेख मिलता है। भुक्ति, राष्ट्र और राज्य का उल्लेख भी वाकाटक शिलालेखों मे है। जिला का प्रधान अधिकारी संतक होता था। चाट–भाट पुलिस के अधिकारी थे और वे उसके अधीन होते थे। उनके एक अभिलेख में ग्राम प्रशासन के संबंध में महतरों का उल्लेख मिलता है। गांवों का परशासन महतरों की सभा करती थी और उसका महत्तर(मुखिया) होता था।

राजा के बाद सेनापति का महत्त्व था। राज्य की आय का मुख्य स्रोत लगान ही थी। भाग, भोग कर, उद्रंग, उपरिक आदि का उल्लेख वाकाटक लेखों में नहीं मिलता है। 'क्लृप्त' शब्द का प्रयोग वाकाटक अभिलेखों में है। आयात शुल्क भी राज्य के आय का प्रमुख स्रोत था। बेगार की प्रथा भी थी। सरकारी कर्मचारियों का खर्च गांवों को उठाना पड़ता था। दान पानेवाले ब्राह्मण भी कानून से ऊपर नहीं होते थे। दानभोक्ता को बराबर राजभक्त रहना पड़ता था। राजद्रोह, चोरी और अपराधियों को पकड़वाने में उन्हें सरकार की सहायता करनी होती थी। उन्हें पड़ोसी गाँव के मामले में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं थी। जमीन की पैमाइश भी होती थी।

हिंदूधर्म के अतिरिक्त बौद्धधर्म का भी काफी प्रभाव था। दोनों धर्मों में आपसी संबंध मैत्रीपूर्ण थे। वाकाटककाल में वैदिक यज्ञ पूरे देश में लोकप्रिय था। प्रवरसेन के समय चार अश्वमेध यज्ञ हुये। शैव और वैष्णव मत का प्राबल्य भी देखा जाता है। शैव और वैष्णव धर्मों के बीच पूर्ण सौहार्द्र था। नल भवदत्त वर्मन शैव था और उसका पुत्र वैष्णव। प्रवरसेन ने शैव होते हुए भी अपने काव्य 'सेतुबंध' में विष्णु के अवतार राम का कीर्तिगान किया है। अभी तक पौराणिक व्रतों का प्रचार जनता में

नहीं हो पाया था। एकादशी व्रत का चलन शुरू हो चुका था। देवमंदिरों में लंगर होते थे, जिन्हें 'सत्र' कहा जाता था।

सामाजिक दृष्टिकोण से जाति प्रथा का बंधन अब भी लचीले थे। व्यवसाय के चुनाव की स्वतंत्रता थी। अंतर्जातीय विवाह भी होता था, प्रभावतीगुप्त का विवाह ही इसका अन्यतम उदाहरण है। क्षत्रिय और वैश्यों में उपनयन का प्रचार घट रहा था। समाज में नारी का आदर होता था।

नासिक, प्रवरपुर, वत्सगुल्म उच्च शिक्षा के प्रमुख केंद्र थे। ब्राह्मण अध्यापक शिक्षा–व्यवस्था की धुरी थे। गाँवों में ब्राह्मणों की अग्रहार बस्तियाँ होती थीं। ये अग्रहार उच्च शिक्षा के केंद्र होते थे।

9.5 गुप्त–वाकाटक संबंध

जिस समय उत्तरी भारत में गुप्तवंश सार्वभौम स्थिति प्राप्त करने में लगा हुआ था उसी समय दक्षिणापथ की राजनीति में एक प्रबल शक्ति के रूप में वाकाटक वंश का उदय हुआ। वाकाटकों की गणना दक्षिणापथ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सबल शक्ति के रूप में की जाती थी।

गुप्त शासक समुद्रगुप्त ने वाकाटकों के निकट सम्बन्धी पद्मावती के भारशिवनाग शासक नागसेन का उन्मूलन किया था। मध्य भारत के कई भागों में वाकाटकों के सामन्त शासन कर रहे थे जिनका समुद्रगुप्त ने विनाश कर डाला था।

ऐसी स्थिति में वाकाटकों का शान्त बैठे रहना सम्भव नहीं था तथा उन्होंने गुप्तों के विरुद्ध अवश्य ही अस्त्र ग्रहण किया होगा। प्रवरसेन प्रथम (275–335 ईस्वी) के काल में वाकाटक सार्वभौम स्थिति में थे। यही कारण है कि उसने 'सम्राट' की उपाधि ग्रहण की थी।

किन्तु प्रवरसेन का पुत्र तथा उत्तराधिकारी रुद्रसेन प्रथम सार्वभौम स्थिति में घटकर सामन्त स्थिति को प्राप्त हुआ, जैसा कि उसकी 'महाराज' उपाधि से सूचित होता है। गुप्तों के इतिहास के सन्दर्भ में हम यह पाते हैं कि इसी समय चन्द्रगुप्त प्रथम ने सामन्त स्थिति से ऊपर उठकर सार्वभौम स्थिति को प्राप्त किया तथा 'महाराजाधिराज' की उपाधि ग्रहण की।

आयंगर का विचार है कि उक्त दोनों घटनायें परस्पर सम्बन्धित थीं तथा गुप्तों का उत्कर्ष वस्तुतः वाकाटकों के मूल्य पर ही सम्भव हुआ था। चन्द्रगुप्त ने वाकाटकों को परास्त कर अपनी राजनैतिक स्थिति पर्याप्त सुदृढ़ कर लिया होगा।

जायसवाल ने कौमुदीमहोत्सव नाटक के आधार पर यह सिद्ध करने का

प्रयास करते हैं कि वस्तुतः वाकाटकों की शक्ति को समुद्रगुप्त ने आघात पहुंचाया जिससे वे सामन्त स्थिति को प्राप्त हुये। समुद्रगुप्त के पूर्व तो वाकाटकों ने ही गुप्तों को अपने नियन्त्रण में रखा था।

प्रवरसेन ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर चण्डसेन का उन्मूलन कर दिया। चण्डसेन के पुत्र तथा उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त ने गुप्त–शक्ति का पुनरुद्धार किया। समुद्रगुप्त द्वारा उन्मूलन वाकाटक नरेश रुद्रसेन था जिसे प्रयाग प्रशस्ति में रुद्रदेव कहा गया है।

वह कौशाम्बी में राज्य कर रहा था। वहीं पर युद्ध में समुद्रगुप्त ने उनका विनाश किया था। जायसवाल की धारणा है कि इसके पूर्व समुद्रगुप्त भी वाकाटकों का सामन्त था। यही कारण है कि समुद्रगुप्त के व्याघ्रहनन प्रकार के सिक्कों पर मात्र 'राजा' को उपाधि अंकित मिलती है।

इतिहासकार फ्लीट तथा डी. सी. सरकार प्रयाग प्रशस्ति व्याघ्रराज का समीकरण वाकाटक नरेश पृथ्वीषेण के सामन्त व्याघ्रदेव के साथ करते हैं तथा इस आधार पर यह प्रतिपादित करते हैं कि चूँकि समुद्रगुप्त ने वाकाटकों के सामन्त को पराजित किया था, अतः दोनों राजवंशों के बीच अवश्य ही युद्ध छिड़ा होगा।

इस प्रकार आयंगर, जायसवाल, फ्लीट तथा सरकार ने विभिन्न तर्कों द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के पूर्व वाकाटकों तथा गुप्तों के बीच किसी न किसी प्रकार का युद्ध अवश्य हुआ था।

यदि उपर्युक्त मत की आलोचनात्मक समीक्षा की जाये तो प्रतीत होगा कि इसमें विशेष बल नहीं है तथा वाकाटकों और गुप्तों में पारस्परिक सम्बन्ध को शत्रुतापूर्ण निरूपित करना युक्तिसंगत नहीं है।

इसके विरुद्ध हम निम्नलिखित बातें कह सकते हैं:

(1) इस मत के लिये कोई आधार नहीं है कि चन्द्रगुप्त प्रथम ने प्रवरसेन प्रथम के उत्तराधिकारी रुद्रसेन को पराजित किया जिससे वह सामन्त स्थिति में आ गया। 'महाराज' की उपाधि को सामन्त–सूचक नहीं माना जा सकता। दक्षिण भारत के अनेक स्वतन्त्र शासक भी इसे ग्रहण करते थे। प्रसिद्ध चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय को भी 'महाराज' कहा गया है।

केवल उत्तर भारत के शासक ही गुप्तकाल से 'महाराज' तथा 'महाराजाधिराज' की उपाधियों में विभेद करने लगे तथा महाराज बने सामन्त स्थिति का द्योतक मान लिया। अल्तेकर का विचार है कि प्रवरसेन के उत्तराधिकारी द्वारा 'महाराज' की उपाधि धारण करने के लिये राजनीतिक तथा धार्मिक कारण थे।

राजनीतिक दृष्टि से वाकाटक साम्राज्य प्रवरसेन के बाद उसके चार पुत्रों में बँट गया।

अतः कोई भी इतना अधिक शक्तिशाली न हुआ कि वह 'सम्राट' की उपाधि ग्रहण करता। धार्मिक दृष्टि से यह उपाधि केवल वही ग्रहण कर सकता था जिसने 'वाजपेय यज्ञ' का अनुष्ठान किया हो। प्रवरसेन प्रथम ने यह यज्ञ किया था। अतः उसने 'सम्राट' की उपाधि ग्रहण की। इसके विपरीत यह यज्ञ न कर सकने के कारण उसके उत्तराधिकारी इस उपाधि से वंचित रह गये। इस प्रकार मात्र 'महाराज' उपाधि के आधार पर हम उन्हें सामन्त शासक सिद्ध नहीं कर सकते।

(2) गुप्तों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हम इस बात की समीक्षा कर चुके हैं कि कौमुदीमहोत्सव ऐतिहासिक रचना नहीं है। अतः इसके आधार पर कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। समुद्रगुप्त द्वारा उन्मूलित आर्यावर्त का शासक रुद्रदेव, रुद्रसेन नहीं है।

रुद्रसेन दक्षिणापथ का राजा था जबकि रुद्रदेव उत्तर भारत का शासक बनाया गया है। यदि सचमुच ही समुद्रगुप्त वाकाटक नरेश को परास्त करता तो इसका उल्लेख बड़े गर्व के साथ प्रयाग प्रशस्ति में किया गया होता।

(3) जायसवाल ने समुद्रगुप्त के व्याघ्रहनन प्रकार के सिक्कों पर 'राजा' की उपाधि के आधार पर जो यह दिखाया है कि वह वाकाटकों का सामन्त शासक था, तर्कसंगत नहीं है। अल्तेकर का कहना है कि इन सिक्कों पर स्थानाभाव के कारण 'महाराजाधिराज' जैसी लम्बी उपाधि का अंकन न हो सका। पुनश्च हम चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमारगुप्त के कुछ सिक्कों पर भी उनकी उपाधि केवल 'महाराज' पाते हैं, किन्तु इस आधार पर कोई उन्हें सामन्त–शासक नहीं कहता।

(4) प्रयाग प्रशस्ति के व्याघ्रराज का समीकरण वाकाटक सामन्त व्याघ्रदेव के साथ स्थापित करना संदिग्ध है। व्याघ्रराज विन्ध्यपर्वत के दक्षिण भाग का शासक था जबकि व्याघ्रदेव विन्ध्यपर्वत के उत्तर में स्थित बघेलखण्ड में राज्य करता था।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि समुद्रगुप्त के अभियान से वाकाटकों को कोई हानि नहीं हुई और न ही समुद्रगुप्त ने रुद्रसेन प्रथम को पराजित किया। यह सही है कि प्रवरसेन प्रथम के काल में वाकाटकों का दक्षिणी कोशल तथा पूर्वी दकन के राज्यों पर अधिकार था और समुद्रगुप्त ने अपने दक्षिणापथ अभियान में इन राज्यों को जीता था।

किन्तु समुद्रगुप्त की विजय के पूर्व ही ये राज्य अपने को वाकाटकों की अधीनता से मुक्त कर चुके थे। ऐसा लगता है कि प्रवरसेन के निर्बल उत्तराधिकारियों के काल में उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। समुद्रगुप्त

बड़ा ही दूरदर्शी सम्राट था।

उसने वाकाटकों की शक्ति तथा उनकी महत्वपूर्ण स्थिति का अन्दाजा लगा लिया और इसी कारण उसके साथ कोई संघर्ष मोल नहीं लिया। वह जिस मार्ग से दक्षिण भारत के अभियान पर गया उसी से वापस भी लौटा और इस प्रकार वाकाटकों के साथ उसके संघर्ष में आने का प्रश्न ही नहीं था।

9.5.1 चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा वाकाटक

चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' के काल में हमें गुप्त–वाकाटक सम्बन्ध के विषय में निश्चित जानकारी प्राप्त होती है। चन्द्रगुप्त एक महान् दूरदर्शी सम्राट था। राज्यारोहण के उपरान्त उसकी मुख्य समस्या गुजरात तथा काठियावाड़ से शकों के उन्मूलन की थी।

वाकाटकों का राज्य गुप्त तथा शक राज्यों के बीच में स्थित होने के कारण भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्व का था। उत्तर की ओर से शक राज्य पर आक्रमण करने वाले किसी भी शासक के लिये उसे जीत पाना तब तक सम्भव नहीं था जब तक कि वाकाटकों का उसे सक्रिय सहयोग न मिलता।

उन्हें युद्ध में जीत सकना एक कठिन कार्य था। अतः चन्द्रगुप्त ने उन्हें स्नेह तथा सौहार्दपूर्वक अपने पक्ष में करने का निश्चय किया। हम देख चुके हैं कि इसी उद्देश्य से उसने अपनी पुत्री प्रभावतीगुप्ता का विवाह वाकाटक नरेश रुद्रसेन द्वितीय के साथ कर दिया।

इसके फलस्वरूप दोनों राजवंश एक दूसरे के निकट सम्बन्धी बन गये। विवाह के कुछ समय बाद रुद्रसेन द्वितीय की मृत्यु हो गयी। चूंकि उसके दोनों पुत्र दिवाकरसेन तथा दामोदरसेन अवयस्क थे, अतः प्रभावतीगुप्ता ने ही वाकाटक राज्य का शासन सम्हाला।

9.5.2 प्रभावतीगुप्त का संरक्षणकाल

लगभग 390 ईस्वी से लेकर 410 ईस्वी तक चलता रहा। यह काल वाकाटक–गुप्त सम्बन्ध का स्वर्णकाल रहा। चन्द्रगुप्त ने अपनी विधवा पुत्री को प्रशासन में पूरा–पूरा सहयोग प्रदान किया।

उसकी सहायता पाकर प्रभावतीगुप्ता ने बड़ी कुशलता के साथ शासन का संचालन किया। संभवतः उसी के काल में चन्द्रगुप्त द्वितीय ने गुजरात और काठियावाड़ के शकराज्य की विजय की थी तथा इस कार्य में प्रभावतीगुप्ता ने अपने पिता की भरपूर सहायता किया था।

उदय नारायण राय का विचार है कि शक–युद्ध के समय रुद्रसेन द्वितीय

जीवित था तथा उसने व्यक्तिगत रूप से अपने श्वसुर की ओर से इस युद्ध में भाग लिया था। इसी युद्ध में लड़ते हुये उसने अपने प्राण खो दिये थे। प्रभावतीगुप्ता के संरक्षण–काल के बाद उसका कनिष्ठ पुत्र दामोदरसेन प्रवरसेन द्वितीय के नाम से वाकाटक राजवंश की गद्दी पर आसीन हुआ।

उसने 440 ईस्वी तक राज्य किया। उसके तेरह दानपत्र मिलते हैं। इन सभी में उसने अपने नाना चन्द्रगुप्त द्वितीय के नाम का उल्लेख अत्यन्त श्रद्धापूर्वक किया है। उसके दानपत्रों की प्राप्ति–स्थानों से पता चलता है कि दक्षिणी महाराष्ट्र पर उसका अधिकार था।

यह पहले गुप्तों के अधिकार में था। इस पर वाकाटकों का अधिकार हो जाने से दोनों राजवंशों में कुछ मनमुटाव पैदा हो गया। 430 ईस्वी के लगभग प्रवरसेन ने अपने पुत्र नरेन्द्रसेन का विवाह कदम्बवंश की कन्या अजितभट्टारिका के साथ कर दिया। वह सम्भवतः कदम्ब नरेश काकुत्थवर्मा की कन्या थी।

उसकी एक कन्या का विवाह गुप्तवंश में भी हुआ था। इससे गुप्त तथा वाकाटक राजवंश परस्पर निकट आ गये तथा उनका द्वेषभाव समाप्त हो गया। प्रवरसेन द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र नरेन्द्रसेन राजा बना। उसने लगभग 440 ईस्वी से लेकर 460 ईस्वी तक राज्य किया। इस प्रकार वह कुमारगुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त दोनों का ही समकालीन था।

ऐसा प्रतीत होता है कि उसके काल में वाकाटक–गुप्त सम्बन्ध बिगड़ गये। नरेन्द्रसेन एक महत्वाकांक्षी शासक था। उसने नलवंशी शासक भवदत्तवर्मा के उत्तराधिकारी को परास्त कर अपने वंश की विलुप्त प्रतिष्ठा का पुनरुद्धार किया। इस समय गुप्तवंश की स्थिति भी पुष्यमित्रों के आक्रमण के कारण संकटग्रस्त थी। कुमारगुप्त के पश्चात् साम्राज्य में अराजकता फैल गयी।

इसका लाभ उठाते हुये नरेन्द्रसेन ने मालवा, मेकल तथा कोशल के प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिया। किन्तु वाकाटकों का इन प्रदेशों पर आधिपत्य स्थायी नहीं हुआ। स्कन्दगुप्त ने शीघ्र ही अपनी स्थिति सुदृढ़ कर इन प्रदेशों के ऊपर पुनः अपना अधिकार कर लिया। उसकी विजयों ने नरेन्द्रसेन की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं पर पानी फेर दिया। नरेन्द्रसेन का पुत्र तथा उत्तराधिकारी पृथ्वीषेण हुआ। बालाघाट से उसका लेख मिलता है।

उसने 480 ईस्वी के लगभग तक शासन किया। उसके तथा उसके उत्तराधिकारियों के समय के वाकाटक–गुप्त सम्बन्धों के विषय में हमें कुछ भी पता नहीं है। ऐसा लगता है कि इस समय तक दोनों राजवंश अपनी–अपनी आन्तरिक समस्याओं में काफी उलझ चुके थे तथा इस कारण वे परस्पर उदासीन हो गये। क्रमशः दोनों राजवंशों की शक्ति का ह्रास हो गया।

9.6 सारांश

विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर यह स्पषट रूप से कहा जा सकता है कि

समुद्रगुप्त के समय तक गुप्तों एवं वाकाटकों के बीच किसी प्रकार का युद्ध नहीं हुआ था। वह वाकाटकों के महत्त्व को समझता था और देश से शक कुषाणों को निकालना राजनय के दृ–ष्टिकोण से ज्यादा जरूरी था। वाकाटक इस योजना में सहायक और घातक दोनों सिद्ध हो सकते थे। चूँकि उनकी भौगोलिक स्थिति इस प्रकार की थी, अतः उनके सौहार्द को जीतना राजनय के दृष्टिकोण से आवश्यक था। इसी कारण कालांतर में दोनों राजवंशों के बीच वैवाहिक संबंध स्थापित हुआ। चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री का विवाह वाकाटक रुद्रसेन द्वितीय से किया। शकों से लड़ने के लिए उसे एक अत्यंत शक्तिशाली मित्र की आवश्यकता थी और इसमें वाकाटक सहायक हो सकते थे। अतः उनके साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर चन्द्रगुप्त ने अपनी नीति–निपुणता का परिचय दिया। गुप्तों के लिए यह लाभकारी सिद्ध हुई। शक–विजय का कार्य सरल हो गया। वैवाहिक संबंध में बाह्य नीति को सफलता मिली। वाकाटक राज्य को भी इससे लाभ हुआ। रुद्रसेन की अकालमृत्यु के बाद चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री प्रभावती की सहायता की। उसके पुत्रों की शिक्षा के लिए कालिदास वाकाटक राज्य की राजधानी नंदिवर्धन में भेजे गए।

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न –

1. गुप्त–वाकाटक संबंधों पर विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

   .....

   .....

2. वाकाटक कौन थे? वाकाटकों की शासन प्रणाली तथा जीवन शैली के संदर्भ में विवेचना कीजिये।

   .....

   .....

3. वाकाटक साम्राज्य के शक्तिशाली शासकों के विषय में वर्णन कीजिये।

   .....

9.8 संदर्भ ग्रन्थ –

ब्राउन, पी. : इण्डियन आर्किटेक्चर, बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू

गोपालचारी, के. : अर्ली हिस्ट्री ऑफ द आन्ध्र कन्ट्री, मद्रास, 1941

हेरास, एच. : रिलेशन्स बिटवीन गुप्ताज, कादम्बाज एण्ड वाकाटकाज (जर्नल ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, 1926)

जायसवाल, के.पी. : हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (150–350 ए.डी.)

मजूमदार, आर.सी. : द क्लासिकल एज

मजूमदार एण्ड अल्तेकर : द वाकाटक–गुप्त एज

इकाई 10 गुप्त साम्राज्य के विघटन क कारण

इकाई की रूप रेखा

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण

10.2.1 अयोग्य उत्तराधिकारी

10.2.2 बाह्य आक्रमण

10.2.3 आंतरिक दुर्बलता

10.2.4 सामंतों की स्वतंत्रता

10.2.5 प्रशासनिक कमजोरियाँ

10.2.6 नयी भाक्तियों का उदय

10.2.7 आर्थिक दुर्बलता

10.3 गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद नये राज्यों का उदय

10.4 सारांश

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.6 संदर्भ ग्रन्थ

10. प्रस्तावना

गुप्त साम्राज्य का निर्माण समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय ने बड़े यत्न से किया था, परन्तु उनके उत्तराधिकारी इतने दुर्बल निकले कि वे इस विशाल साम्राज्य को बचाने मेंअसफल रहे।

अयोग्य उत्तराधिकारियों के अतिरिक्त पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से भारत कीराजनीतिक स्थिति तेजी से परिवर्तित हो रही थी। इसका प्रभाव भी साम्राज्य के अस्तित्व पर पड़ा। सचमुच उस समय अनेक स्थानीय राजाओं का उदय हुआ जिनके चलते गुप्त साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया।

यह विचारणीय है कि विशाल गुप्त साम्राज्य का पतन कोई आकस्मिक घटना नहीं थी।मुगल साम्राज्य की भाँति गुप्त साम्राज्य का पतन भी क्रमिक था। इसकी पृष्ठभूमि में कमजोर उत्तराधिकारी, राजदरबार में फूट, प्रान्तपतियों की स्वतंत्रता, नये राजवंशों का उदय, आर्थिक कमजोरियाँ एवं विदेशी आक्रमण मुख्य थे।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको गुप्त साम्राज्य के पतन से संबंधित जानकारी प्रदान करना है। गुप्त साम्राज्य का पतन किन–किन कारणों से हुआ इसकी विस्तृत जानकारी इस इकाई में प्रदान की जायेगी।

10.2 गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण

समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के पराक्रम से स्थापित गुप्त साम्राज्य का क्रमशः ह्रास होने लगा और छठी शती ई० के अन्त में उसका पतन हो गया। गुप्त साम्राज्य के ह्रास तथा पतन के कई कारण थे।

पुष्यमित्रों तथा हूणों के आक्रमणों के विरुद्ध साम्राज्य की एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए स्कन्दगुप्त को भरसक प्रयत्न करना पड़ा। उसकी मृत्यु के पश्चात् देश में अव्यवस्था फैल गई। फलस्वरूप की उसकी मृत्यु के पश्चात् गुप्त वंश का स्पष्ट वर्णन देना बहुत कठिन है। कई राजाओं के नाम ज्ञात हैं लेकिन उनकी और उनके पारस्परिक सम्बन्ध निश्चित करना सुगम नहीं है। उत्तराधिकार के लिए ज्येष्ठपुत्राधिकार का नियम सर्वमान्य नहीं था। अतः सम्भव है कि सिंहासन के लिए संघर्ष होते रहे हों। यह कहा जाता है कि एक ही समय पर विभिन्न राजधानियों से प्रतिद्वन्द्वी गुप्त शासक राज्य करते थे। स्कन्दगुप्त के पश्चात् केवल पुरुगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय और बुद्धगुप्त महत्त्वपूर्ण थे, शेष सभी प्रभावहीन थे। परिणामतः वे पतन को रोकने में समर्थ न हुए और अन्त में गुप्त साम्राज्य समाप्त हो गया।गुप्त साम्राज्य के पतन के निम्नलिखित कारण थे–

10.2.1 अयोग्य उत्तराधिकारी

बुद्धगुप्त के बाद से गुप्त साम्राज्य का वास्तविक पतन प्रारंभ हो गया था। उसके बाद के गुप्त नरेश न तो दूरस्थ प्रदेशों के सामंतों को अपने अधीन रख सके और न विदेशी आक्रमणों से अपने साम्राज्य की रक्षा ही कर सके। उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर राजपुत्रों में संघर्ष भी होता था। इसके बाद स्थानीय राजाओं का अभ्युदय हुआ। कुछ लोग वैण्यगुप्त को स्थानीय शासक ही मानते हैं। इसी समतट के उत्तर मंडल, भुक्ति और उसके बहुत–से विषयों के विषय पति विजयसेन का भी उल्लेख मिलता है। मल्लसरूल–अभिलेख से ज्ञात होता है कि विजयसेन वर्द्धवान भुक्ति का एक स्वतंत्र नरपति था। फरीदपुर से भारत दो शिलालेखों में धर्मादित्य को

'महाराजाधिराज परमभट्टारक अप्रतिरथ' कहा गया है। घुग्रघुटी (फरीदपुर) के अभिलेख में भी उसे 'महाराजाधिराज' कहा गया है। लगातार हूणों के आक्रमण और सामंत राजाओं तथा प्रांतीयशासकों की महत्त्वाकांक्षा ने गुप्त साम्राज्य को निर्बल बना दिया था। यशोधर्मा साम्राज्य के प्रदेशों को रौंद चुका था। गोपचन्द्र के उत्तराधिकारी स्वतंत्र स्थिति प्राप्त कर चुके थे। कामरूप में वर्मनवंश शक्ति शाली हो रहा था। चारों ओर नवीन शक्तियों का उदय हो रहा था। उत्तरप्रदेश में मौखरी पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पंजाब में वर्धन, मगध में उत्तरगुप्त और पूर्वी बंगाल में धर्मादित्य के वंश के राजाओं ने गुप्त साम्राज्य का नामोनिशान मिटा दिया। विष्णुगुप्त चन्द्रादित्य इस पतन को अपनी आँखों से देख रहा था। कारण, वह असहाय और कमजोर था। 550 ई० के आसपास गुप्त साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया। गुप्तों के वंशज मगध में स्थानीय राजाओं के रूप में रह गए।

10.2.2 बाह्य आक्रमण

गुप्त साम्राज्य की समाप्ति में विदेशी आक्रमणों का भी हाथ था। गुप्त साम्राज्य की स्थिरता को कुमारगुप्त प्रथम के समय में ही पुष्यमित्रों के आक्रमण से बहुत धक्का लगा था। किन्तु स्कन्दगुप्त ने उन्हें खदेड़ दिया। कालान्तर में हूण सामने आए। यह ठीक है कि गुप्त शासक हूणों के विरुद्ध सफल हुए किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हूण आक्रमणों का गुप्त साम्राज्य पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उनके निरन्तर आक्रमणों से साम्राज्य के साधन अवश्य ही समाप्त हो गए होंगे। यह सामान्यतः स्वीकार किया जाता है कि हूण आक्रमणों से ही समाप्त हो गए होंगे। यह सामान्यतः स्वीकार किया जाता है कि हूण आक्रमणों से ही गुप्त साम्राज्य का पतन हुआ। किन्तु डॉ० आर०सी० मजूमदार को यह विचार मान्य नहीं है। उनके मतानुसार, सारी छठी शताब्दी में भारत के द्वार हूणों के लिए पूर्णतः बन्द थे। तोरमाण और मिहिरकुल की अल्पजीवी सफलताओं के होते हुए भी हूण कभी भी भारतीय इतिहास में स्थायी शक्ति नहीं माने गए। वे केवल कश्मीर और अफगानिस्तान को विजय कर सके थे जो गुप्त साम्राज्य की सीमाओं से बाहर थे।

शक्तिहीन सत्ता को देखकर ही विदेशी आक्रमणकारियों का मन बढ़ता है। जब गुप्त साम्राज्य अपने उत्कर्ष पर था तब कोई विदेशी आक्रमण नहीं हुआ। हूणों ने आक्रमण किया भी तो स्कन्दगुप्त ने उनके दाँत खट्टे कर दिए। स्कन्दगुप्त के बाद गुप्त शासक कमजोर पड़ गए और हूणों ने फिर गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। 485 ई० के बाद मध्यभारत पर हूणों ने अपना अधिकार कर लिया था। भानुगुप्त, बालादित्य और गोपराज ने डटकर उनका सामना किया। हूणों की शक्ति धीरे–धीरे बढ़ती गई। हूणों के लगातार आक्रमण से गुप्तों की शक्ति क्षीण होती गई और उसका संगठन संभव नहीं हो सका।

डॉ० मजूमदार का मत है कि गुप्त साम्राज्य पर विनाशकारी आघात हूणों ने नहीं अपितु यशोधर्मन जैसे महत्त्वाकांक्षी सरदारों ने किया। यह ठीक है कि हूणों ने

अत्यधिक विनाश किया किन्तु उनकी शक्ति शीघ्र ही समाप्त हो गई। यशोधर्मन द्वारा बनाई गई दरार फैलती गई और अन्त में गुप्त साम्राज्य खंड–खंड हो गया। आरम्भ में यशोधर्मन केवल एक स्थानीय सरदार था। मालवा में अशान्ति से लाभ उठाकर उसने अपनी स्वतन्त्र शक्ति स्थापित कर ली। वह इतना शक्तिशाली हो कि उसने केवल मिहिरकुल को ही परास्त नहीं किया बल्कि गुप्त सम्राट् की भी अवज्ञा की। सम्भव है कि उसने गुप्त साम्राज्यों के कुछ भागों को भी विजित किया हो हालाँकि उसकी विजयों के सम्बन्ध में हमें पूर्ण ज्ञान नहीं है। मन्दसोर अभिलेख में कहा गया है कि उसकी प्रभुता को बहुत बड़े क्षेत्र में स्वीकार किया जाता था जो पश्चिमी महासागर से ब्रह्मपुत्रतक और हिमालय से उड़ीसा के गंजम् जिले (Ganjam District) तक फैला हुआ था। प्रतीत होता है कि यशोधर्मन अपनी स्थिति को अधिक समय तक स्थापित न रख सका। किन्तु इसकी गौरवमयी सफलताओं से अन्य लोगों को भी प्रोत्साहन मिला। यदि यशोधर्मन गुप्त साम्राज्य की अवज्ञा कर सकता था तो कोई कारण नहीं कि अन्य लोग भी ऐसा न कर सकते थे। ऐसे वातावरण में गुप्त साम्राज्य का पतन अवश्यम्भावी था।

10.2.3 आंतरिक दुर्बलता

कमजोर शासक उनका मुकाबला करने में असमर्थ रहे। राज्याधिकार के लिए उनके संघर्ष ने भी साम्राज्य की शक्ति को कमजोर बना दिया था। घरेलू झगड़ों और बाह्य आक्रमणों से साम्राज्य के विघटन में काफी सहायता पहुँची। वे न तो पर्याप्त शक्तिशाली थे और न नीतिनिपुण ही। वे अपने प्राचीन संबंधी तथा मित्रों के साथ अपने अच्छे संबंध का निर्वाह नहीं कर सके। उनकी अकर्मण्यता या अनभिज्ञता से भी साम्राज्य का पतन निकट आ गया। उस समय राजभक्ति का सर्वथा अभाव भी देखा जाने लगा।

10.2.4 सामंतों की स्वतंत्रता

केंन्द्रीय शासन की निर्बलता से लाभ उठाकर प्रांतीय शासकों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर ली। सुदूर प्रांतों का शासन करना असंभव हो गया। सामंत समयांतर में राजा बन बैठे। पश्चिम में वल्लभी, मालवाय उत्तर में थानेश्वर और कन्नौज तथा पूर्वी भारत में गौड़ के शासक स्वतंत्र हो गए। इन शासकों ने अपने राज्य–विस्तार की अभिलाषा से गुप्त साम्राज्य पर गहरी चोट पहुँचाई, जिससे सर्वदा के लिए गुप्त साम्राज्य का अंत हो गया। यशोधर्मा की विजय इस बात का उदाहरण है। आंतरिक विद्रोह, बाह्य आक्रमण, पैत्रिक राज्यपालों का उत्थान और अधिकार–विकास तथा राज्य में आपसी फूट इत्यादि गुप्त साम्राज्य के पतन के मूल कारण माने जा सकते हैं। गुप्त साम्राज्य के अधीनस्थ प्रांत धीरे–धीरे स्वतंत्र होते गए। पश्चिमी भारत गुप्त साम्राज्य से बाहर निकल गया।

कई सरदारों ने गुप्त साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया। धीरे–धीरे मौखरी उत्तर प्रदेश में उदित हुए और छठी शती ई० मध्य तक उन्होंने एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। कन्नौज के मौखरी वंश की स्थापना हरिवर्मा ने की। लगभग 554 ई० में ईशानवर्मा ने गुप्त सम्राट् के साथ और सम्भवतः हूणों के साथ भी युद्ध किया। उसने 'महाराजाधिराज' उपाधि भी धारण की। लगभग 554 ई0 से 580 ई० तक मौखरी उत्तरी भारत में निस्सन्देह सर्वशक्तिमान थे। ईशानवर्मा ने बहुत बड़ा क्षेत्र गुप्त शासकों से छीन लिया। उसने आन्ध्रों को भी पराजित किया और उनके राज्य का कुछ भाग प्राप्त किया। उसने बंगाल का कुछ भाग भी विजित किया।

स्कन्दगुप्त के समय में सौराष्ट्र में पर्णदत्त नामक एक 'गोप्ता' का राज्य था। उसे स्वयं स्कन्दगुप्त ने वायसरॉय नियुक्त क्रिया था। किन्तु कुछ समय के पश्चात् मैत्रक जाति के एक सरदार भट्टार्क ने इस क्षेत्र पर सैनिक गवर्नर के रूप में अधिकार कर लिया और अपनी राजधानी वल्लभी में बनाई। घरसेन प्रथम उसका तात्कालिक (immediate) उत्तराधिकारी था। भट्टार्क तथा घरसेन प्रथम ने 'सेनापति' उपाधि धारण की। किन्तु अगले शासक द्रोणसिंह ने 'महाराज' उपाधि धारण की और गुप्त राजा ने उसे मान्यता दी। इस वंश की एक शाखा ने छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मालवा के पश्चिमी भाग पर अधिकार कर लिया और विस्तृत विजयें की। एक अन्य शाखा बल्लभी में राज्य करती रही। बल्लभी के ध्रुवसेन द्वितीय ने हर्षवर्धन की पुत्री से विवाह किया। उसके पुत्र धरसेन चतुर्थ ने ''परमभट्टारक परमेश्वरचक्रवर्तिन्'' उपाधि धारण की। स्पष्ट है कि लगभग इसी समय मैत्रक वंशी शासक गुप्त साम्राज्य से स्वतंत्र हो गये। इससे गुप्त साम्राज्य के भाग्य पर दुष्प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

उत्तरकालीन गुप्त वंशियों ने मालवा और मगध में राज्य किया। आरम्भ में वे गुप्त वंश के सामन्तथे और सम्भवतः गुप्त साम्राज्य की रक्षा के लिए उन्होंने युद्ध भी किया किन्तु बाद में लगभग मौखरियों के समय में ही उन्होंने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली।

इसी समय बंग (दक्षिणी तथा पूर्वी बंगाल) ने गुप्त साम्राज्य की सत्ता को अस्वीकार कर दिया। छठी शताब्दी के आरम्भ में वैन्यगुप्त का पूर्वी बंगाल में राज्य था और उसकी उपाधि महाराज थी। बाद में बंग के शासकों ने भी ''महाराजाधिराज'' उपाधि धारण की और गुप्त सम्राटों की भाँति सोने के सिक्के चलाए।

चौथी तथा पांचवीं शदियों में बंगाल ने गुप्त प्रभुता को स्वीकार किया था। इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख में समतट को सीमावर्ती राज्य कहा गया है। उत्तरी बंगाल या पुण्ड्रवर्धन भुक्ति कुमारगुप्त प्रथम के समय में गुप्त साम्राज्य का अंग था।

किन्तु गौड़ बंगाल में उदित हुए और छठी शती के उत्तरार्द्ध में उन्होंने गुप्त वंश की प्रभुता को ठुकरा दिया। आरम्भिक गौड़ों के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं है। गौड़ राजाओं के नाम से धर्मादित्य गौपचन्द्र, समाचारदेव और जयनाग। हर्षवर्धन का समकालीन शशांक भी गौड़ वंश का था। केवल यहाँ तथ्य कि गौड़ राजाओं ने 'महाराजाधिराज' उपाधि धारण की, इस बात को सिद्ध करता है कि वे सम्राट् की प्रभुता को नहीं मानते थे और स्वतन्त्र शासकों की तरह आचरण करते थे।

10.2.5 प्रशासनिक कमजोरियाँ

यह सर्वविदित है कि आरम्भिक गुप्त सम्राट हिन्दू धर्म के प्रबल संरक्षक थे किंतु बाद के गुप्त शासकों यथा बुद्धगुप्त, तथागतगुप्त और बालादित्य का झुकाव बौद्ध धर्म की ओर था, इससे भी गुप्त साम्राज्य को आघात पहुँचना स्वाभाविक था। अशोक के बाद मौर्यों की तरह सैनिक कुशलता को अभीष्ट महत्त्व नहीं दिया जाता था। इसलिए साम्राज्य को संगठित रखना असम्भव था। ह्यून–त्साँग हमें बताता है कि जब मिहिरकुल शाकल या स्यालकोट का शासक था तो वह गुप्त राजा बालादित्य पर आक्रमण करने के लिए गया। जब बालादित्य को यह सूचना प्राप्त हुई तो उसने अपने मन्त्रियों से ये शब्द कहे ''मैंने सुना है कि ये चोर आ रहे हैं और मैं उन (की सेनाओं) से नहीं लड़ सकता यदि मेरे मंत्री मुझे अनुमति दें तो में कीचड़ में छिप जाऊँ।'' उसने केवल यह कहा ही नहीं बल्कि वास्तव में अपनी बहुत सी प्रजा के साथ एक द्वीप में चला गया। ह्यून–त्सॉग हमें बताता है कि मिहिरकुल बन्दी बना लिया गया किन्तु बालादित्य को माता के कहने पर उसे मुक्त कर दिया गया। यह कहना कठिन है कि ह्यून–त्सांग द्वारा बताई गई बालादित्य की कहानी कहाँ तक सत्य है किन्तु स्पष्ट है कि गुप्त राजाओं में अधिक साहस या सैनिक बल नहीं रह गया था। उनकी दया और कृपा का गुप्त साम्राज्य पर विपरीत प्रभाव पड़ना ही था। ऐसे शासक देश में अपनी प्रभुता स्थिर न रख सके और उनको पृष्ठभूमि में धकेल दिया जाना स्वाभाविक था।

10.2.6 नयी भाक्तियों का उदय

यह ठीक है कि हूणों के आक्रमण के बहुत दिन बाद तक भी गुप्त साम्राज्य की रूपरेखा बनी रही परंतु साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इसकी प्रतिष्ठा काफी घट चुकी थी। यशोधर्मा के आक्रमण से पूर्व गुप्तों का नामोनिशान मिट चुका था और गुप्त परिवार की प्रतिष्ठा भी लुप्त हो चुकी थी। यशोधर्मा के उत्थान के पूर्व भी हरिषेण वाकाटक ने गुजरात, मालवा, कोशल, आंध्र और कुंतल प्रांतो पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया था। तोरमाण के आक्रमण के फलस्वरूप जो अनिश्चितता उत्पन्न हुई थी, उससे लाभ उठाकर हरिषेण ने अपने अधिकार का विस्तार और गुप्त साम्राज्य को कमजोर भी किया। बाद में वह संभवतः

यशोधर्मा द्वारा पराजित हुआ। जहाँ एक ओर यशोधर्मा ने अपने पराक्रम से अपने अधिकार का विस्तार किया वहाँ दूसरी ओर उससे गुप्त साम्राज्य को बहुत बड़ा धक्का लगा। गुप्त साम्राज्य की असहाय स्थिति से लाभ उठाकर मौखरियों ने अपना सिर उठाया। प्रारंभ में मौखरी लोग गुप्तों के अधीनस्थ शासक थे, परंतु धीरे–धीरे उन लोगों ने अपने अधिकार का विस्तार किया और कुमारगुप्त तृतीय के समय वे लोग काफी शक्तिशाली हो गए। हरहा–अभिलेख में ईशानवर्मन को महाराजाधिराज कहा गया है और इससे अनुमान लगाया जाता है कि 554 ई० के पूर्व गुप्त साम्राज्य का पतन हो गया होगा। उत्तरकालीन गुप्तों के उत्थान से भी गुप्त साम्राज्य का पतन हुआ। ये लोग भी प्रारंभ में गुप्तों के अधीनस्थ शासक थे, परंतु उनके पतन के बाद इनलोगों ने फिर से पुरानी प्रतिष्ठा कायम करने का प्रयास किया और इस सिलसिले में इन्हें मौखरियों से संघर्ष करना पड़ा।''

10.2.7 आर्थिक दुर्बलता

चंद्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त, विक्रमादित्य, कुमारगुप्त प्रथम आदि गुप्त शासकों ने अनेक युद्ध द्वारा विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। इन युद्धों में अपार धन राशि खर्च हुई होगी, लेकिन योग्य गुप्त शासकों के कारण आर्थिक अभाव प्रारंभ में नहीं हुआ, लेकिन बाद में गुप्त शासकों को धन की कमी महसूस हुई। अब वे जनता की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी असमर्थ रहने लगे। स्कंद गुप्त के लगातार हूणों से आक्रमण होने के कारण राजकोष पूर्णता खाली हो गया। अतः ऐसी स्थिति में गुप्त साम्राज्य का पतन होना स्वाभाविक था।

गुप्तकाल के पहले से ही भूमिदान देने की प्रथा प्रचलित थी। दान प्राप्त किए गए व्यक्तियों को नमक एवं खानों का भी स्वामित्व दे दिया गया, जिस पर पहले राजा का स्वामित्व रहता था। इसके अतिरिक्त नए भूमि अनुदान के मालिकों को कुछ प्रशासनिक अधिकार भी सौंप दिए गए। इससे जहाँ एक तरफ तो राजा की शक्ति में ह्रास हुआ वहीं दूसरी तरफ आर्थिक व्यवस्था पर भी इसका प्रभाव पड़ा।

इस व्यवस्था ने कृषकों की स्वतन्त्रता समाप्त कर उन्हें कृषि–दास अथवा अर्ध कृषि–दास बना दिया। इसके चलते कृषि पर उनका पूरा ध्यान नहीं जा सका फलतः उत्पादन में कमी आने लगी। बेगारी की प्रथा ने तो और बुरा प्रभाव डाला। इसके कारण किसानों कारीगरों, शिल्पियों की गतिशीलता सीमित हो गयी। इन सबका परिणाम स्वायत्त ग्राम संस्थाओं का उदय हुआ।

उत्पादक अब सिर्फ अपनी संस्था के उपयोग लायक सामान ही तैयार करने लगे। इसने आंतरिक एवं विदेशी व्यापार पर बुरा प्रभाव डाला। परिणामस्वरूप व्यापार, नगर एवं उद्योग– धन्धों में गिरावट आने लगी। इन सबने मिलकर आर्थिक

व्यवस्था को कमजोर कर दिया। गुप्तों के पहले जो मुद्रा अर्थव्यवस्था थी, वह भी गुप्तकाल में वर्तमान नहीं रह सकी। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि गुप्तकाल के स्वर्णमुद्राओं की संख्या तो काफी है परन्तु नित्य दिन व्यवहार में आने वाले चाँदी एवं ताम्बे के सिक्कों की संख्या काफी कम है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ईसा की प्रथम दो तीन शताब्दियों में जो मुद्रा अर्थव्यवस्था प्रचलित थी (कुषाणों के तथा अन्य समकालीन राज्यों, यहाँ तक कि गणराज्यों के ताम्बे के सिक्के काफी मात्रा में मिले हैं) वह किसी कारणवश गुप्त काल में कमजोर पड़ गयी। फाहियान ने भी लिखा है कि आमतौर पर कौड़ियों के आदान–प्रदान का मुख्य चलन था। मुद्रा अर्थव्यवस्था के अभाव में भी व्यापार, नगर एवं उद्योग धन्धे पनप नहीं सके। ग्रामीण अर्थव्यवस्था ने फिर से जोर पकड़ लिया। इस प्रकार गुप्त शासकों को आर्थिक संकट का भी सामना करना पड़ा।

10.3 गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद नये राज्यों का उदय

किन खास कारणों से और कब गुप्त साम्राज्य का पतन हुआ, इसका स्पष्टीकरण असंभव है। धर्मादित्य, गोपचन्द्र और समाचारदेव के उत्थान से यह प्रतीत होता है कि मध्यभारत और बंगाल से गुप्तों के शासन का अंत हो चुका होगा और तभी वे लोग अपनी स्वतंत्र सत्ता कायम कर सके होंगे। कामरूप में वर्मनवंश के उत्थान से भी गुप्त साम्राज्य को धक्का लगा था। गया जिले के अमीना ग्राम से 'कुमारामात्य महाराज नंदन' का एक ताम्रपत्र–लेख मिला है, जो गुप्त–संवत 232 (–551 ई०) का है। इनमें किसी गुप्त सम्राट का उल्लेख नहीं है, अतः इस लेख के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि मगध में गुप्तों का शासन 551 ई के पहले ही खत्म हो चुका था।

510 ई. के पूर्व ही बंगाल में वैण्यगुप्त के बाद गोपचन्द्र शासक हुआ। उसने 18 वर्ष तक शासन किया और गौड़ तथा समतट को अपने अधीन कर लिया। आर्यमंजुश्रीमूलकल्प के अनुसार प्राच्य जनपदों के राजा का नाम गोप था, जो संभवतः गोपचन्द्र था। फरीदपुर–लेख में उसके एक अधिकारी के रूप में 'नयसेन ज्येष्ठ–कायस्थ' का नाम मिलता है और उसी व्यक्ति का नाम पुनः धर्मादित्य के लेखों में मिलता है। गोपचन्द्र के बाद ही धर्मादित्य राजा हुआ। उसके बाद समाचारदेव शासक हुआ, जिसके सिक्के भी मिले है। इस वंश की स्थापना इस बात का सूचक है कि इस क्षेत्र से गुप्त साम्राज्य का लोप हो चुका था। वर्मनवंश के अधिकार–विस्तार का पता तो उनके लेखों से ही लगता है। पश्चिम में गुप्तों का लोप हो ही चुका था, पूरब में इनलोगों ने उनके बचे–खुचे अवशेषों को समाप्त कर दिया और जब गुप्तवंश के अंतिम नरेश शासक हुए तभी मौखरियों और उत्तरकालीन गुप्तों ने उन पर सम्मिलित रूप से आक्रमण कर दिया। मौखरियों ने

गुप्तों को पराजित कर 554 ई० में अपना साम्राज्य कायम कर लिया। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद तीन प्रमुख स्थानीय राज्यों का उदय हुआ –

मालवा के गुप्त– इनके शिलालेखों में मौखरियों के साथ संघर्ष की चर्चा है। महासेनगुप्त ने मौखरी शासक सुस्थितवर्मन को पराजित किया।

कान्यकुब्ज के मौखरी।

वल्लभी के मैत्रक।

दक्षिण के वाकाटक राज्य भी कई शाखाओं में बँट गए–

उत्तरी शाखा जिसका संबंध पृथ्वीसेन प्रथम और रुद्रसेन द्वितीय से था। वत्सगुल्म–शाखा जिसके अंतिम शासक राजा हरिषेण ने 500 ई. के लगभग विस्तृत प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। 550–555 के बीच साम्राज्य का अंत हो गया।

इतना अब सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है कि स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात से ही गुप्त साम्राज्य का पतन प्रारंभ हो गया था और मुख्य रूप से पश्चिम में गुप्त साम्राज्य के अंश टूटने लगे थे। विभिन्न साधनों से यह पता चलता है कि 477 से 769 ई० के बीच गुप्त साम्राज्य बंगाल से लेकर पूर्वी मालवा तक फैला हुआ था। परिव्राजक महाराज संक्षोभ के 518 ई० के गुप्त–साम्राज्य की प्रभुता के काल में लिखा गया बेतुल–प्लेट्स से पता चलता है कि डभाला (डाहल) (त्रिपुरी विषय) तक उसकी सत्ता स्वीकृत थी। पुण्डवर्धन भुक्ति छठी शताब्दी तक गुप्त साम्राज्य के अंतर्गत था। मालवा पर गुप्त साम्राज्य के होने के कई प्रमाण हैं। परंतु, मालवा की सीमा के संबंध में काफी मतभेद हैं।

सात मालवा होने का प्रमाण मिलता है–

(i) पश्चिमी घाटी का मालवप्रदेश

(ii) वल्लभी अभिलेख में उल्लिखित महीतट पर मालव–आहार,

(iii) अवंति के मालव,

(iv) भिलसा के पास पूर्वमालवा,

(v) उत्तरप्रदेश के प्रयाग, कौशांबी तथा फतेहपुर के पास का क्षेत्र,

(vi) पूर्वी राजस्थान का भाग,

(vii) पंजाब के सतलज जिले तथा हिमालय क्षेत्र का कुछ प्रदेश।

विक्रमादित्य के करदाता दंडनायक अनंतपाल ने हिमालय तक फैले सप्त

मालवप्रदेशों को मिला लिया था।अंतिम गुप्त–सम्राटों का शासन क्रम–संख्या (iv) तथा (v) और मगध पर था। सातवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही पूर्वी मालवा गुप्तों के हाथ से निकलकर कलचुरियों के हाथ चला गया था। राजेश्वर ने भी मालव और अवंती के शासक को अलग–अलग बताया है। इन सारी बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि 600 ई0 तक गुप्तवंश की प्रभुता मालव से ब्रह्मपुत्र तक फैली हुई थी, परंतु उसका पुराना रोब समाप्त हो चुका था।

छठी शताब्दी के अंत तक आते–आते मंदसोर के हूण और मौखरियों ने गुप्तों को चुनौती देनी शुरू कर दी थी। सातवीं शताब्दी में कलचुरियों ने विदिशा पर तथा हर्ष ने गंगा घाटी पर आधिपत्य कायम कर लिया था। हर्ष की मृत्यु के बाद पुनः स्थिति में परिवर्तन हुआ और गुप्तवंश के माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने अपने राज्य का विस्तार किया तथा अश्वमेध यज्ञ के साथ ही उसने महाराजाधिराज तथा परमभट्टारक उपाधि धारण की।

10.4 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लगभग 550 और 595 ई. के बीच गुप्त साम्राज्य का सूर्यास्त हो गया। गुप्त वंश की स्थापना 319 ई. में हुई थी। चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त एवं चन्द्रगुप्त द्वितीय ने साम्राज्य को काफी विस्तृत किया। कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त तक तो साम्राज्य खड़ा रहा, किन्तु स्कन्दगुप्त के बाद कमजोर गुप्त नरेशों के राज्य काल में लड़खड़ाने लगा। पुष्यमित्रों और हूणों के आक्रमण बढ़ गये। आन्तरिक कलह भी सुलगने लगी। उत्तरकालीन गुप्त नरेशों (बुधगुप्त, बालादित्य आदि) की शान्ति अहिंसा नीति भी साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई। सामन्तों की स्वतंत्रता, मालवा के गुप्त, कान्यकुब्ज के मौखरि और वल्लभी के मैत्रकों के उदय ने गुप्त साम्राज्य को ग्रस लिया।

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1) गुप्त साम्राज्य के विघटन के प्रमुख कारण क्या था ?

.....

2) गुप्त साम्राज्य के विघटन के बारे में विभिन्न विद्वानों के मतों की विवेचना कीजिये।

.....

3) गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद किन–किन नये राज्यों का उदय हुआ, विस्तार

पूर्वक विवेचना कीजिये।

.....

10.6 सन्दर्भ ग्रन्थ–

बनर्जी, आर.डी. : द ऐज ऑफ द इम्पीरियल गुप्ताज, 1933

कॉड्रिंग्टन, के. : एन्शियेन्ट इण्डिया

दाण्डेकर, आर.एन. : लाइफ इन द गुप्ता एज

मजूमदार एण्ड आर.सी. : द क्लासिकल एज

सेलटोर, आर.एन. : लाइफ इन द गुप्ता एज (बॉम्बे, 1943

इकाई11 : भारत के परवर्ती गुप्त वंश–मौखरी वंश, वल्लभी के मैत्रक, मालवा का यशोधर्मन

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.0 उद्देश्य

11.2 मौखरी वंश का इतिहास
- 11.2.1 उत्पत्ति
- 11.2.2 ईशानवर्मा
- 11.2.3 सर्ववर्मा
- 11.2.4 अवंतिवर्मा

11.3 पूर्वी भारत के अन्य राज्य

11.4 कान्यकुब्ज का मौखरीवंश

11.5 वल्लभी का मैत्रक वंश

11.6 सिंध का राज्य

11.7 विद्या का केंद्र वल्लभी

11.8 मालवा का शासक यशोधर्मन

11.9 सारांश

11.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.11 संदर्भ ग्रन्थ

11.1 प्रस्तावना

गुप्त साम्राज्य के बिखराव की शुरुआत पांचवी शताब्दी के अंत काल में शुरू हुई थी। गुप्त साम्राज्य के अंत के बाद कई सारी शक्तियां अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर रही थी। जिसके कारण गुप्त काल के बाद का समय बहुत ही अशांत था।6वीं शताब्दी के मध्य में गुप्त साम्राज्य के विघटन के बाद की अवधि ने विभिन्न प्रांतीय शक्तियों के बीच संघर्ष की एक दिलचस्प तस्वीर पेश की थी। गुप्तों के पतन के बाद उत्तर भारत पुराने राजनीतिक विघटन की स्थिति में

चला गया था। सिंहासन और सत्ता हासिल करने के लिए कई स्वतंत्र राज्य एक दूसरे के साथ निरंतर संघर्ष में थे। 7वीं शताब्दी में राजा हर्षवर्धन ने भारत में राजनीतिक एकता स्थापित करने से पहले कई छोटी लेकिन शक्तिशाली इकाइयों की सत्ता हासिल की थी। इन शक्तियों में वल्लभी के मैत्रक, राजपुताना के गुर्जर, मौखरी और बाद के गुप्तवंश शशांक के अधीन गौड़ का राज्य और कामरूप का राज्य शामिल थे। इस इकाई में हम वल्लभी के मैत्रक वंश, मौखरी वंश तथा मालवा के यशोधर्मन के विषय में विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको गुप्त साम्राज्य के परवर्ती वंशों के उदय के कारणों, उनके शासकों, कार्यशैली के बारे में जानकारी प्रदान करना है।

11.2 मौखरी वंश का इतिहास

यशोधर्मन के पश्चात संगठित साम्राज्य को छिन्न–भिन्न करनेवाली शक्तियाँ भारत में फिर काम करने लगीं। यशोधर्मन की मृत्यु के बाद आर्यावर्त का आधिपत्य मौखरियों के हाथ चला गया। इन मौखरियों का आदिस्थान मगध माना जाता है। इन्होंने गुप्त–राजाओं की निर्बलता से लाभ उठाकर अपने लिए कन्नौज में एक राज्य स्थापित किया और थोड़े ही समय में भारत का सम्राट्पद प्राप्त कर लिया। अब मगध के बदले कन्नौज राजनीतिक जीवन का प्रधान केंद्र बन गया और उसका अब वही महत्त्व हो गया, जो पहले पाटलिपुत्र का था। आभिलेखिक साक्ष्य – (1) गया राजमुद्रा, (2) बड़वा अभिलेख, (3) बराबर तथा नागार्जुनी गुहा अभिलेख, (4) हरहा अभिलेख, (5) नालंदा अभिलेख।

11.2.1 उत्पत्ति

मौखरी लोग अपने को वैवस्वत के वर से प्राप्त अश्वपति के सौ पुत्रों का वंशधर बताते थे। उनकी वास्तविक उत्पत्ति का हाल हमें ज्ञात नहीं है। वे संभवतः एक बहुत ही प्राचीन कुल से संबद्ध थे। उनका वास्तविक अथवा कल्पित मुखर नाम का एक पूर्वज हुआ था। उसी के नाम पर इस वंश का नाम 'मौखरी' पड़ा। मौखरियों का एक गोत्र भी था। पतंजलि के महाभाष्य पर कैय्यट की जो टीका है, उसमें तथा जयादित्य एवं वामन की काशिकावृत्ति में 'मौखर्य्याः' शब्द का प्रयोग गोत्र नाम के रूप में ही हुआ है। ई. पू. तीसरी शताब्दी के पूर्व की एक मिट्टी की मुद्रा पर मोखल्लिनाम् ब्राह्मी लिपि में मिलता है। कोटा (राजस्थान) से 239 ई0 का एक लेख प्राप्त हुआ है, जिसपर मौखरी–सरदार का उल्लेख है। मौखरी 'मुखर' या 'मौखरि' दोनों कहते थे। हर्षचरित इस शब्द की व्युत्पत्ति 'मुखर' शब्द के आधार पर करता है।

मौखरियों की उत्पत्ति के संबंध में भी इतिहासकारों के बीच मतभेद बना हुआ है। यों प्राचीनता के दृष्टिकोण से देखने पर तो पाणिनि का अष्टाध्यायी में भी 'मौखरी' शब्द का उल्लेख मिलता है. परंतु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से वे इतने प्राचीन थे अथवा नहीं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। बराबर तथा नागार्जुन पहाड़ियों के गुहा अभिलेखों में भी गुप्तों के कुछ ऐसे सामंतों के नाम मिलते है, जिन्हें लोग मौखरियों से मिलाते हैं। इनकी उत्पत्ति चाहे जहाँ और जैसे भी हुई हो इतना तो निश्चित है कि इतिहास में वे ही मौखरी प्रसिद्ध हुए, जिन्होंने गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद बिहार और उत्तरप्रदेश के बहुत बड़े हिस्से पर अपना राज्य स्थापित किया और कन्नौज के प्रमुख की नींव डाली। कान्यकुब्ज की प्रतिष्ठा जो मौखरियों के समय स्थापित हुई, वह कई शताब्दियों तक बनी रही। गुप्तों के साथ इनका पुराना और घनिष्ठ संबंध था और दोनों के संयुक्त प्रयास से ही गौड़ों की हत्या हुई थी। यों इस वंश के बहुत–से शासक हुए, परंतु इस वंश को बढ़ाने का वास्तविक श्रेय ईशानवर्मा और उसके वंशजों को ही था।

यह वंश अनेक विभिन्न शाखाओं में बंटा हुआ था। एक शाखा उत्तरप्रदेश के जौनपुर और बाराबंकी जिले में थी, दूसरी बिहार में और तीसरी राजस्थान में। गया से मौखरियों का अत्यंत प्राचीन संबंध था। इसकी पुष्टि मोखलिश तथा मोखलिणम् अभिलेख से मिट्टी की सील द्वारा होती है। कदंश के राजा चन्द्रवल्लि के पाषाण–अभिलेख में मौखरियों का उल्लेख मिलता है। साहित्य में मौखरियों का संबंध कन्नौज से भी बताया जाता है। गया और कान्यकुब्ज के मौखरियों के बीच कैसा संबंध था, यह निश्चित रूप से कहना मुश्किल है।

मौखरियों की मुख्य शाखा उत्तरप्रदेश पर शासन करती थी। बाण के अनुसार उनकी राजधानी कन्नौज में थी। मुख्य शाखा के अतिरिक्त एक करदवंश गयाप्रदेश पर राज्य करता था। गया के बराबर और नागार्जुनी पहाड़ियों के गुफालेखों से हमें इस वंश के तीन नाम मिलते हैं– यज्ञवर्मा, शार्दूलवर्मा, अनंतवर्मा। वे गुप्त सम्राटों के सामंत और सहायक राजा थे। मौखरियों की प्रधान शाखा, जो आरंभ में गुप्त राजाओं की अधीनता स्वीकार करती थी, बाद में अपनी उन्नति कर उत्तर भारत की प्रधान शक्ति बन गई। इस वंश के प्रथम तीन राजाओं के नाम हरिवर्मा, आदित्यवर्मा तथा ईश्वरवर्मा थे। ईश्वरवर्मा (524–50 ई0) बड़ा वीर और प्रतापी था। उसी ने अपने वंश की प्रतिष्ठा बढ़ाई। इन्होंने उत्तर गुप्त राजाओं के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया। आदित्यवर्मा तथा ईश्वरवर्मा की स्त्रियांउत्तर गुप्तवंश की राजकुमारियाँ थी। थानेश्वर के वर्द्धन–राजाओं ने भी मौखरियों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किए।

11.2.2 ईशानवर्मा (550–76 ई०)

ईश्वरवर्मा का पुत्र ईशानवर्मा था। उसने 'महाराजाधिराज' पदवी धारण की। उसके हरहा– अभिलेख से उसकी उपलब्धियों का पता चलता है। उस समय आंध्र सूलिक और गौड़ प्रमुख शक्तियाँ थे। ईशानवर्मा ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण किया। उसी के साथ कुमारगुप्त तृतीय का संघर्ष हुआ होगा। अफसढ़–अभिलेख में कहा गया है कि राजाओं में चंद्रमा के समान ईशानवर्मा की सेना को विलोक कर उसने अपने–आपको परम भाग्यशाली बना लिया। मौखरियों ने कभी सम्राट गुप्त पर विजय प्राप्त की, इसका उल्लेख नहीं मिलता है। उन शक्तियों के साथ ईशानवर्मा के युद्धों का वर्णन हरहा–लेख में है। तेलुगू प्रदेश में विष्णुकुंडिन् लोगों की प्रधानता थी। मौखरियों और गुप्तों ने इस राज्य पर आक्रमण किया। धनकटक का राज्य भी आंध्र में ही पड़ता था। ये दोनों पल्लव राज्य के अधीन थे। आदित्यसेन के अफसढ़–लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईशानवर्मा एक शक्तिशाली शासक था। हूणों का उपद्रव अब भी बंद नहीं हुआ था। वे लोग थानेश्वर के आसपास आक्रमण किया करते थे और मौखरी लोग सदा उनसे सजग रहने के लिए विवश थे। मौखरियों को बराबर हूणों का सामना करना पड़ता था। सामरिक विजय प्राप्त करने के अतिरिक्त ईशानवर्मा ने एक और महत्त्वपूर्ण काम किया था। हूणों के आक्रमण के कारण सामाजिक अव्यवस्था फैल गई थी। उसने सामाजिक अव्यवस्था को बढ़ने से रोका था। हिंदूधर्म के पुनरुद्धार में भी उसने हाथ बंटाया। उसने राजकुल के गौरव की प्रतिष्ठा की। उसने आंध्रों को जीता, सुलिकों को परास्त किया और गौड़ों को अपनी सीमा के भीतर रहने के लिए बाध्य किया। उसकी इस बढ़ती हुई शक्ति से मगध के गुप्तों का आतंकित होना स्वाभाविक ही था। मौखरियों और गुप्तों के बीच पूर्वी भारत में आधिपत्य के लिए संघर्ष होना अनिवार्य था और अन्ततः हुआ भी। मौखरि कन्नौज में जम चुके थे और गुप्त लोग मालवा तथा मगध में अपना अस्तित्व कायम करने पर तुले हुए थे। मौखरियों ने थानेश्वरवंश से अपना संबंध भी स्थापित कर लिया।

11.2.3 सर्ववर्मा

ईशानवर्मा के पश्चात सर्ववर्मा गद्दी पर बैठा। उसे भी 'महाराजाधिराज' कहा गया है। संभवतः वह अपने वंश का सर्वश्रेष्ठ राजा था। सर्ववर्मा का समकालीन गुप्त राजा दामोदरगुप्त था, जिसे उसने पराजित किया। दामोदरगुप्त संभवतः युद्ध क्षेत्र में मारा गया और सर्ववर्मा ने मगध को अपने राज्य में मिला लिया। उसने बालादित्य द्वारा पूर्व में स्वीकृत किए हुए दानपत्र को दृढ़ किया। उसके समय मौखरी मगध के भी शासक हो गए। मगध के निकल जाने के बाद अंतिम गुप्त सम्राट के पास केवल मालवा ही शेष बच रहा था। मौखरियों का प्रत्यक्ष शासन

सोन नदी तक फैल गया। सर्ववर्मा ने हूणों को भी पराजित किया। उसने पुष्यभूतियों के साथ पश्चिमोत्तर सीमा पर हुणों को हराया और मगध में दामोदरगुप्त को। इनका परिणाम यह हुआ कि एक तरफ गुप्तों और गौड़ों का गुट बना और दूसरी तरफ मौखरी और पुष्यभूतिवंश का। उसका राज्य पूर्व में मगध, पश्चिम में थानेश्वर की पूर्वी सीमा तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विघ्य की पहाड़ी तक फैला हुआ था। प्रभाकरवर्धन तथा महासेनगुप्त के बीच घनिष्ठ संबंध था। माधवगुप्त की मित्रता हर्ष से थी। मौखरियों की बढ़ती हुई शक्ति देखकर ही महासेनगुप्त ने पुष्यभूतिवंश से संबंध स्थापित किया था।

11.2.4 अवंतिवर्मा

सर्ववर्मा के बाद अवंतिवर्मा राजा हुआ। उसकी राजधानी कन्नौज थी। उसके समय पुष्यभूति और मौखरियों के बीच की मित्रता और भी दृढ़ हो गई। उसके बाद ग्रहवर्मा राजगद्दी पर बैठा। उसका विवाह थानेश्वर की राजकुमारी राज्यश्री (हर्ष की बहन) के साथ हुआ। गौड़ राजा शशांक और मालवा के देवगुप्त ने कन्नौज पर आक्रमण कर ग्रहवर्मा को मार डाला। इसके अनंतर राज्यश्री को कोई संतान न होने के कारण कान्यकुब्ज और स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) के राज्य एक में मिल गए और कान्यकुब्ज–साम्राज्य की स्थापना हुई। मौखरियों ने 554 से 605 ई० तक शासन किया। उनका शासन विंध्य से अवध तक और पूर्वी बंगाल तक फैला हुआ था। अमात्यों की एक सभा की सहायता से वे शासन करते थे। राजवंश के कुमार प्रांतीय शासक होते थे। न्याय की व्यवस्था अच्छी थी और राजा के यहाँ अपील की जा सकती थी। उत्तरगुप्तों के साथ उनका संघर्ष चलता रहा।

मौखरी लोग ब्राह्मणधर्मावलंबी थे। उन्होंने एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण किया था। यह उनकी तेजस्विता और विजयों का परिणाम था। गुप्तों के बाद उनका साम्राज्य–संगठन बड़ा ही महत्त्व रखता है।

11.3 पूर्वी भारत के अन्य राज्य

मौखरी और उत्तर गुप्त के अतिरिक्त भी पूर्वी भारत में और कई ऐसे राज्य थे, जो इनके समकालीन कहे जा सकते हैं और जिनकी उत्पत्ति गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद हुई थी। बंगाल भी अन्य प्रदेशों की तरह गुप्त साम्राज्य का अंश था परंतु गप्त साम्राज्य के पतन के बाद बंगाल में पुण्ड्रवर्द्धन (उत्तरी बंगाल), कर्णसुवर्ण (मुर्शिदाबाद), समतट (फरीदपुर) और ताम्रलिप्ति (तामलुक) का विकास हुआ और इन क्षेत्रों में नए राज्यों की स्थापना हुई। गौड़मगध में संघर्ष होना स्वाभाविक था, क्योंकि दोनों अपना आधिपत्य कायम करना चाहते थे। मित्रता–शत्रुता तो राजनीतिक इतिहास की शोभा है। सातवीं शताब्दी में गौड़ में

शशांक नामक प्रसिद्ध शासक हुआ, जो पहले रोहतास (बिहार) में महासामंत था। उसकी राजधानी कर्णसुवर्ण में थी। वह देवगुप्त, ग्रहवर्मन मौखरी और हर्ष का समकालीन था। गौड़ के दक्षिण–पूर्व में बंगराज्य था और दक्षिण में उड़ीसा में नए राज्य का उत्थान हो रहा था। गौड़ के पूर्वोत्तर में कामरूप का राज्य था और वहाँ वर्धनवंश के लोग शासन कर रहे थे। वर्धनवंश, शशांक, मौखरी, थानेश्वरवंश और उत्तरगुप्तवंश के शासक एक–दूसरे के समकालीन थे। उन लोगों के बीच उस समय पूर्वी–पश्चिमी भारत में आधिपत्य के लिए संघर्ष चल रहा था। यही उस युग की विशेषता थी। राजनीतिक महत्त्व के दृष्टिकोण से कन्नौज अब पाटलीपुत्र का स्थान ले चुका था।

11.4 कान्यकुब्ज का मौखरीवंश

हरिवर्मा→आदित्यवर्मा→ईश्वरवर्मा→ईशानवर्मा→सर्ववर्मा→अवंतिवर्मा→ग्रह वर्मा। ग्रहवर्मा का विवाह प्रभाकरवर्धन की पुत्री राज्यश्री से हुआ था। इससे वर्धन और मौखरीवंश मित्र बन गए। उत्तरी भारत दो शिविरों में बँट गया–मौखरी–वर्धन बनाम गुप्त–शशांक।

11.5 वल्लभी का मैत्रक वंश

स्कन्दगुप्त के बाद जब गुप्तों का केंद्रीय शासन कमजोर हो गया, तब सौराष्ट्र गुप्त साम्राज्य से पृथक होकर स्वतंत्र हो गया। सेनापति भट्टारक ने वल्लभी में पांचवीं शताब्दी के अंतिम चरण में एक नए राजवंश की स्थापना की। स्कन्दगुप्त के पश्चात गुप्तों का एक भी लेख या सिक्का वहाँ से नहीं मिलता है। 475 ई0 में भट्टारक वहाँ सेनापति के पद पर नियुक्त था। वह मैत्रकों का सरदार था। सेनापति के पद पर रहते हुए भी वह राजा के समान ही शासन करता था और वल्लभी उसकी प्रधान नगरी थी। उसके पुत्र की उपाधि भी सेनापति थी, जिससे कुछ लोग यह अनुमान लगाते हैं कि वे लोग गुप्त–छत्रछाया में शासन करते थे। मैत्रकों के पूर्वजों के संबंध में मतैक्य नहीं है, फिर भी इतना माना जाने लगा है कि वे लोग भारतीय ही थे। सर्वप्रथम मैत्रकों के तीसरे राजा द्रोणसिंह ने 'महाराजा' पदवी धारण की, जिससे पूर्ण स्वतंत्रता की सूचना मिलती है। छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस वंश की एक शाखा ने मालव और मालव के सुदूर पश्चिमी भाग में अपना राज्य स्थापित कर सका तथा विंध्यपर्वत को और विजय–अभियान आरंभ किया। इससे छोटी एक दूसरी शाखा वल्लभी में ही शासन करती रही। इसके उत्तराधिकारी तथा सेनापति भट्टारक के तीसरे पुत्र ध्रुवसेन प्रथम के लेख में 'महाराजा' का उल्लेख मिलता है। यह लेख गुप्त–संवत 206 (526 ई0) का है और मैत्रकों का यह पहला तिथियुक्त लेख है। इस आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि 526 ई० तक वल्लभी में मैत्रकों ने अपना स्वतंत्र राज्य बना लिया था। ध्रुवसेन प्रथम की चौथी

पीढ़ी में ध्रुवसेन द्वितीय ने राज्य किया। वह हर्षवर्धन का समकालीन था। उसने हर्ष के साथ वैवाहिक संबंध भी स्थापित किया था। हर्षवर्धन पुत्री का विवाह ध्रुवसेन द्वितीय के साथ हुआ था। ध्रुवसेन हर्षवर्धन के सामंत के रूप में शासन कर रहा था, परंतु उसका उत्तराधिकारी ध्रुवसेन चतुर्थ पूर्णरूपेण स्वतंत्र था और उसने 'परमभट्टारक महाराजाधिराज चक्रवती' पदवी धारण की थी। उसी के समान शिलादित्य तृतीय (670 ई०) ने भी 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' पदवी धारण को थी। मैत्रकों ने बड़ौदा, सूरत और पश्चिमी मालवा तक अपने राज्य का विस्तार किया था और इनका अंतिम शासक शिलादित्य सप्तम था जो 766 ई० में शासन कर रहा था।

ध्रुवसेन द्वितीय के शासनकाल में हुएनसांग वल्लभी आया था और ध्रुवसेन के संबंध में उसका वक्तव्य इस प्रकार है– ''राजा जन्म से क्षत्रिय था और मालवा के पूर्ववर्ती राजा शिलादित्य का भातृज तथा कान्यकुब्ज के शिलादित्य का जामाता था। उसका नाम ध्रुवभट्ट था। बौद्धधर्म में उसकी आस्था गहरी थी। हर्ष के विरुद्ध उसने द्वितीय से सहायता ली थी। बाद में जामाता के नाते वह हर्ष के प्रयाग के उत्सव में सम्मिलित भी हुआ था। मालवा उसके अधीन था। ध्रुवसेन चतुर्थ ने गुर्जरों के प्रांत जीतकर अपने अधीन कर लिए थे। मैत्रकों के अधीन वल्लभी विद्या का एक प्रधान केंद्र थी। इत्सिंग इस बात का साक्षी है। उत्तर के कान्यकुब्ज साम्राज्य और दक्षिण के चालुक्य साम्राज्य के बीच वल्लभी बहुत अधिक सैनिक महत्त्व रखती थी। जिस तरह गुप्तों ने वाकाटकों से वैवाहिक संबंध कायम किया था, उसी नीति का अवलंबन हर्ष ने भी मैत्रकों के साथ किया। यह राज्य अरब आक्रमण के समय नष्ट हुआ। हुएनसांग के विवरण से स्पष्ट होता है कि ध्रुवसेन द्वितीय के दो पुत्र थे– शिलादित्य द्वितीय धर्मादित्य तथा खरग्रह प्रथम। उसके समय में मैत्रकों का राज्य दो भागों में विभाजित हो गया–एक भाग मालवा तथा अन्य प्रदेश, जो धर्मादित्य के वंशजों के अधीन और दूसरा जिसमें वल्लभी भी सम्मिलित थी तथा जिस पर खरग्रह के वंशजों का अधिकार था। खरग्रह के पुत्रों में एक का नाम ध्रुवसेन था (ध्रुवभट्ट), जिससे हर्ष की पुत्री का विवाह हुआ था। सातवीं शताब्दी में खरग्रह वंश का लोप हो गया तथा मैत्रक–राज्य पुनः एक हो गए। खरग्रह प्रथम का कुछ समय तक उज्जैन पर भी अधिकार था।

11.6 सिंध का राज्य

हुएनसांग के अनुसार सिंध में गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद शूद्र–राज्य की स्थापना हुई थी। यह शूद्र शासक कौन था, इस संबंध में हमारी जानकारी नहीं के बराबर है। प्रभाकरवर्धन के समय सिंध राज्य पर आक्रमण हुआ था। परंतु उस आक्रमण का क्या नतीजा निकला, यह कहना कठिन है। हर्ष के समय सिंध उसके

राज्य के अधीन था। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि उसने सिंध को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। सिंध का महत्त्व पुनः 711 ई० में अरब–आक्रमण के समय बढ़ा और अरब आक्रमण के फलस्वरूप ही सिंध आक्रमण का अंत हुआ। उस समय वहाँ ब्राह्मणों और बौद्धों में काफी मतभेद चल रहा था।

11.7 विद्या का केंद्र वल्लभी

वल्लभी विद्या का प्रसिद्ध केंद्र थी। उस समय यह अंतरराष्ट्रीय व्यापार का प्रधान केंद्र था और उस व्यापारिक पद्धति के चलते सांस्कृतिक आदान–प्रदान भी होता था। इत्सिंग के अनुसार इसका यश नालंदा के यश की प्रतिस्पर्धा करता था। उस समय वल्लभी में लगभग 100 बौद्धविहार थे और वहाँ छह हजार भिक्षुक रहते थे, जो अपने अध्ययन में तल्लीन रहते थे। स्थिरमति और गुणमति (7वीं शती) इस विश्वविद्यालय के प्रख्यात शिक्षक थे। वहाँ बौद्धधर्म के अतिरिक्त अन्य विषयों की शिक्षा भी दी जाती थी। दूर–दूर से अध्ययन के लिए यहाँ विद्यार्थी आया करते थे। यह विश्वविद्यालय अपनी बौद्धिक स्वतंत्रता और धार्मिक सहिष्णुता के लिए प्रसिद्ध था। न्याय, अर्थशास्त्र, साहित्य, धर्म आदि की शिक्षा दी जाती थी। इस विश्वविद्यालय को व्यापारियों का सहयोग प्राप्त था और वे लोग ही इसका आर्थिक भार वहन करते थे। वल्लभी के मैत्रक शासकों से भी विश्वविद्यालय को काफी आर्थिक सहायता मिलती थी। अरब आक्रमण के बाद इस विश्वविद्यालय को काफी धक्का लगा।

11.8 मालवा का शासक यशोधर्मन

गुप्त साम्राज्य सामंत–व्यवस्था पर आधारित था और जैसे– जैसे केंद्रीय शक्ति कमजोर होती गई, वैसे–वैसे सामंत लोग शक्तिशाली होते गए। प्रारंभिक काल में मंदसोर एक महत्वपूर्ण उपशासित प्रांत था। यहाँ औलिकर वंश के शासकों की राजधानी थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त के समय यहाँ सामंत शासन करते थे। 533 ई0 में यशोधर्मन यहाँ का शक्तिशाली सामंत शासक बन गया। हूणों के आक्रमण के बाद तो इस स्थिति में और भी तेजी आ गई। यशोधर्मन ने हूणों को पराजित करने में बहुत बड़ा पार्ट अदा किया था और 528 ई० के आसपास उसने मिहिरकुल को मुलतान में पराजित कर दिया था। इससे यशोधर्मन की प्रतिष्ठा काफी बढ़ गई थी और गुप्त साम्राज्य के कमजोर होते ही उसने मालवा में आपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया। वह संभवतः मालवा के औलिकर वंश का था और उसका पूरा नाम जनेन्द्र यशोधर्मन था। उसके संबंध में जानकारी के लिए मात्र एक ही साधन उपलब्ध है और वह है उसका मंदसोर अभिलेख। उस अभिलेख में जो भी वर्णन है, उसे अगर अतिशयोक्ति न मानकर सच मान लिया जाए तो यशोधर्मन के मुकाबले का कोई दूसरा शासक मालूम ही न पड़ेगा। उसके साम्राज्य की सीमा

के संबंध में कहा गया है कि ब्रह्मपुत्र से लेकर महेन्द्रपर्वत तक और हिमालय–गंगा से लेकर पश्चिम–पयोधि तक के प्रदेशों के सामंत उसके चरण चूमते थे और जिन प्रदेशों में गुप्तों का प्रवेश नहीं हो पाया था, उन प्रदेशों पर उसने अधिकार कर लिया था। उस अभिलेख में हूणों से भारत को मुक्त करने का श्रेय भी यशोधर्मन को ही दिया गया है, यद्यपि इस प्रश्न पर इतिहासकारों के बीच बहुत मतभेद है। हूणों के संबंध में मंदसोर अभिलेख में जो भी बातें हैं, उन पर विश्वास करना कठिन होगा, परंतु इसमें अतिशयोक्ति के जो अंश है, उन्हें अलग कर इसका अध्ययन करना समीचीन होगा। इस अभिलेख में मिहिरकुल के संबंध में कहा गया है कि जिसने भगवान शिव के अतिरिक्त और किसी के सामने सिर नहीं झुकाया, उससे भी यशोधर्मन नेअपने चरणों की अर्चना करवायी। इससे इतना तो स्पष्ट होता है कि यशोधर्मन एक शक्तिशाली शासक था और गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद उसने अपने–आपको स्वतंत्र घोषित कर लिया था। हूणों की पराजय के बाद उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई थी। मंदसोर अभिलेख ही उसके अध्ययन का एकमात्र साधन है। मंदसोर अभिलेख के अतिरिक्त उसके संबंध में हमलोग और कुछ नहीं जान सके है। हूणों पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद से ही (533 ई०) उसने गुप्त–सम्राट् की आज्ञाओं को मानने इनकार कर दिया। उसने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। उसने जगह–जगह विजयस्तंभ बनवाए। उसकी मृत्यु के पश्चात गुप्त राजाओं ने पुनः पूर्वी मालवा पर अधिकार कर लिया। पश्चिमी मालवा पर गुप्तों का अधिकार नहीं हो सका और उसके एक भाग पर मैत्रकों ने अधिकार कर लिया।

11.9 सारांश

गुप्त साम्राज्य आंतरिक विच्छेद तथा बाह्य आक्रमणों से दुर्बल हो चुका था। प्रांतीय क्षत्रप तथा सामंत प्राय स्वतंत्र शासकों की भाँति व्यवहार कर रहे थे। कुछ ही दिनों में यशोधर्मन ने सम्राट के विरुद्ध विद्रोह कर विजयों का सिलसिला आरंभ कर दिया। यशोधर्मन के सैन्य अभियान से गुप्त साम्राज्य को भारी आघात पहुँचा। उसने गुप्तों की गिरती हुई शक्ति का लाभ उठाया और गुप्तों के अधिकांश क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। मंदसौर के स्तंभ–लेख से पता चलता है कि जिन प्रदेशों के ऊपर गुप्त नरेशों ने अपने प्रताप में शासन नहीं किया था प्रदेशों पर भी उसने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। नरसिंहगुप्त बालादित्य ने मिहिरकुल को पराजित कर गुप्त साम्राज्य की साख को बचाने का सफल प्रयत्न किया। बाद में मौखरियों तथा परवर्ती गुप्तों की उभरती शक्ति और कुछ सीमा तक बंग तथा गौड़ का राजनीतिक शक्तियों के रूप में उत्थान अधीश्वर गुप्तों के पतन में सवार्धिक महत्वपूर्ण कारक थे।

इस प्रकार लगभग तीन सौ वर्ष तक शासन करने वाले गुप्तवंश के अधःपतन में उत्तराधिकारियों की दुर्बलता, आंतरिक झगड़ों, सामंत–संघीय संगठन, बाह्य आक्रमण, राजनीतिक सामंतवादी व्यवस्था के चलते नवीन शक्तियों के उदय को पनपने का अवसर प्राप्त हुआ और वे स्वतंत्र हो गये।

11.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद किन–किन नये राज्यों का उदय हुआ? उनके उदय के क्या कारण थे?

   .....

2. परवर्ती गुप्त वंश के पतन के क्या–क्या कारण थे? प्रकाश डालिये।

   .....

3. यशोधर्मन कौन था? उत्तर भारतीय इतिहास में उसके योगदान पर प्रकाश डालिये।

   .....

4. वल्लभी के मैत्रक वंश की स्थापना कब और किसने की? मैत्रक वंश के शासकों के बारे में विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

   .....

11.11 संदर्भ ग्रन्थ

आरवामुथन, टी.जी. : दि कावेरी, दि कौखरीज एण्ड दि संगम ऐज, मद्रास, 1925.

बसक, आर.जी. : हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, 1937.

जगन नाथ : 'न्यू लाईट ऑन मौखरी जेनोलॉजी', वूलनर कोमेमोरशन वाल्यूम, पी.पी. 116–8

मजूमदार, आर.सी. (एड.) : दि क्लासिकल एज.

पाइरेस ई. : दि मौखरीज, 1934

संकालिया, एच0डी0 : ऑर्क्यालॉजी ऑफ गुजरात, 1941.

त्रिपाठी, आर0एस0 : हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, 1937.

विरजी, के0जे0 : एनसियेन्ट हिस्ट्री ऑफ सौराष्ट्र, 1952.

इकाई 12 इलाहाबाद स्तंभ अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 इलाहाबाद स्तंभ अभिलेख

12.3 समुद्रगुप्त पराक्रमांक

12.4 उत्तराधिकार

12.5 समुद्रगुप्त की विजयें

12.5.1 दक्षिण में विजय

12.5.2 उत्तर में विजय

12.5.3 आटविक राज्य

12.5.4 सीमावर्ती राज्य

12.5.5 विदेशी राज्य

12.5.6. अश्वमेध

12.6 सारांश

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.8 संदर्भ ग्रन्थ

12.0 प्रस्तावना

समुद्र गुप्त के दरबारी कवि और मंत्री हरिषेण ने इलाहाबाद स्तंभ शिलालेख या प्रयाग प्रशस्ति की रचना की थी। यह स्तंभ अशोक द्वारा छह शताब्दी पूर्व निर्मित एक अशोक स्तंभ था। यह शिलालेख समुद्रगुप्त की प्रशस्ति है और इसमें समुद्रगुप्त की विजय और गुप्त साम्राज्य की सीमाओं का उल्लेख है।

यह स्तंभ प्रयाग में मौर्य शासक अशोक के ६ स्तम्भ लेखों में से एक है। प्रयाग के संगम–तट पर पूर्व में सम्राट अशोक द्वारा बनवाये गए किले में अवस्थित १०.६ मी. ऊँचा अशोक स्तम्भ २३२ ई.पू. का है, जिस पर तीन शासकों के लेख खुदे हुए हैं। इस स्तंभ को २०० ई. में में समुद्रगुप्त द्वारा कौशाम्बी से प्रयाग लाया गया और तब उसके दरबारी कवि हरिषेण रचित प्रयाग–प्रशस्ति लेख इस पर

खुदवाया गया था। बाद में १६०५ ई. में इस स्तम्भ पर मुगल सम्राट जहाँगीर के राजतिलक का उल्लेख भी इस पर खुदवाया गया। ब्रिटिश काल में १८०० ई में इस किले की दीवार के निर्माण करते हुए दीवार के रास्ते में इसके आने के कारण स्तम्भ को गिरा दिया गया और पुनः १८३८ में अंग्रेजों ने इसे पुनः स्थापित कर दिया।

इस लेख के आधार पर ही हमें गुप्तकालीन प्रशासन की महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है। उदहारण के लिए हरिषेण को इस अभिलेख में कुमारामात्य, महादण्डनायक और संधिविग्रहिक भी कहा गया है। परवर्ती वंशों के काल में भी गुप्तकालीन प्रशासनिक शब्दावली प्रचलित रही और हमें देश भर से कई ऐसे ताम्रपत्र मिलते हैं जिनकी भाषा और शैली प्रयाग प्रशस्ति के समान ही है।

गुप्तकाल के शासकों राजधानी काफी समय तक प्रयाग रही है। इसी कारण गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने प्रयाग–प्रशस्ति को उस स्तम्भ पर खुदवाया था। यहीं प्राप्त ४४८ ई. के एक गुप्त कालीन अभिलेख से ५वीं शताब्दी में भारत में दशमलव पद्धति प्रयोग होने के बारे में भी जानकारी मिलती है।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको इलाहाबाद स्तंभ अभिलेख के इतिहास तथा समुद्रगुप्त के शासनकाल एवं राज्य विस्तार से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

12.2 इलाहाबाद स्तंभ अभिलेख

सिक्कों की बहुत बड़ी संख्या के अतिरिक्त समुद्रगुप्त के राज्य के लिए इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख का महत्त्व सबसे अधिक है। यह अभिलेख अशोक के एक स्तम्भ पर अंकित है। अब यह स्तम्भ इलाहाबाद के किले में है और कौशाम्बी में स्थित अपने मूल स्थान से इसे हटा लिया गया था। इस अभिलेख की कोई तिथि नहीं है। फ्लीट का विचार था कि यह अभिलेख समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् लिखा गया था। किन्तु अब यह विचार त्याग दिया गया है। कारण यह है कि इसमें अश्वमेध का उल्लेख नहीं किया गया है और सिक्कों तथा अन्य अभिलेखों पर अश्वमेध का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार इस अभिलेख की तिथि दक्षिण से लौटने के बाद और अश्वमेध यज्ञ से पहले रखनी होगी।

अभिलेख असाम्प्रदायिक और पूर्णतः ऐतिहासिक है। इसकी रचना समुद्रगुप्त के राजकवि हरिषेण ने की। अभिलेख की भाषा एवं शैली से स्पष्ट है कि इसका रचयिता उच्चकोटि का कवि था हरिषेण शान्ति तथा युद्ध का मन्त्री (सन्धिविग्रहिक') था। प्रशस्ति का लेखक संस्कृत पद्य की सूक्ष्मताओं से पूर्णतः परिचित था। अभिलेख

का कुछ अंश पद्य में और कुछ गद्य में है। वी०ए० स्मिथ के अनुसार, ''राजकवि द्वारा रचित प्रलेख आज भी लगभग पूर्णतः प्राप्य है औरउस समय की घटनाओं का तत्कालीन विस्तृत वर्णन इससे प्राप्त होता है। असंख्य भारतीय अभिलेखों से यह सम्भव अधिक श्रेष्ठ है।''

इस अभिलेख में समुद्रगुप्त की बहुत प्रशंसा की गई है। कहा गया है कि समुद्रगुप्त ने अच्छाई का संचार किया और बुराई का नाश किया। वह दयालु था। वह नम्र था जिसे अभीष्ट सेवा तथा आज्ञापालन से मोहित किया जा सकता था। उसने कई लाख गायें दान में दीं। उसका मस्तिष्क दीन, निर्धन, पीड़ित और असहाय व्यक्तियों की पालना के साधन जुटाने में व्यस्त रहता था। मानव मात्र के प्रति करुणा का वह प्रतीक था। वह कुबेर, वरुण, इन्द्र और अतक देवताओं के समान था। जिन राजाओं को वह परास्त करता था उनकी सम्पत्ति उन्हें वापस दिलाने में उसके कर्मचारी दत्तचित्त रहते थे। अपनी तीक्ष्ण तथा परिष्कृत बुद्धि और गायन तथा संगीत में दक्षता से उसने देवताओं के स्वामी, इन्द्र के गुरू और टुम्बुरु और नारद को भी लज्जित कर दिया। अपने काव्यों से उसने कविराज की उपाधि प्राप्त की। उसकी रचनाएँ इतनी उत्कृष्ट कोटि की थीं कि वह उनके माध्यम से विद्वानों की तरह जीवन–निर्वाह के साधन जुटा सकता था। मानवता के रीति–रिवाजों को पूर्ण करने में ही वह मानव था, किन्तु वास्तव में वह पृथ्वी पर रहने वाला देवता था। वह चन्द्रगुप्त और कुमार देवी का पुत्र, घटोत्कज का पौत्र और श्रीगुप्त का प्रपौत्र था। श्रीगुप्त और घटोत्कच के लिए 'महाराज' उपाधि का प्रयोग किया गया है और चन्द्रगुप्त प्रथम के लिए 'महाराजाधिराज' उपाधि प्रयुक्त की गई है। अभिलेख की उनतीसवीं पंक्ति में कहा गया है कि यह स्तम्भ पृथ्वी की एक भुजा की भांति है जो समुद्रगुप्त की ,ख्याति की घोषणा कर रहा है।

12.3 समुद्रगुप्त पराकमांक

इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख ने समुद्रगुप्त के अभियानों को चार श्रेणियों में विभक्त किया है। पहली श्रेणी में दक्षिण के राजाओं के विरुद्ध अभियान है। दूसरी श्रेणी में 'आर्यावर्त' के नौ राजाओं के नाम हैं और उनसे साथ कुछ अन्य राजा भी हैं जिनके नाम नहीं दिए गए हैं। तीसरी श्रेणी में वनवासी असभ्य जातियों के नेता हैं और चौथी श्रेणी में सीमावर्ती राज्य तथा प्रजातन्त्र हैं। कुछ विदेशी शासकों के साथ समुद्रगुप्त के सम्बन्धों का उल्लेख भी किया गया है।

अभिलेख का प्रारम्भिक भाग पद्य में है। इसमें आठ श्लोक हैं। इसमें समुद्रगुप्त की प्रारम्भिक शिक्षा तथा राजा बनने की योग्यता का उल्लेख है। पहले दो श्लोक तो लगभग पूर्णतः लुप्त हो चुके हैं। उनके अवशेषों से प्रतीत होता है कि अपने पिता के समय उसने कुछ युद्धों में सफलतापूर्वक भाग लिया। पहले श्लोक में

कहा गया है कि समुद्रगुप्त एक योग्य विद्वान् था। वह शास्त्रों का ज्ञात था और विद्वान् व्यक्तियों की संगति का अत्यन्त इच्छुक था। चौथे श्लोक में बताया गया है कि समुद्रगुप्त को उसके पिता ने अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया और यह आशीर्वाद दिया : ''समस्त संसार पर राज्य करो।'' यह दरवारियों की उपस्थिति में किया गया और वे अति प्रसन्न हुए। कुछ अन्य व्यक्ति ईर्ष्यावश पीले पड़ गए। पाँचवें और छठे श्लोकों में सम्भवतः उन युद्धों का वर्णन है जिनमें उसने अपने शत्रुओं को परास्त किया। प्रतीत होता है कि उन्हें क्षमादान दिया गया था। उन्होंने पश्चात्ताप किया और उनके मन प्रसन्नता तथा स्नेह से भर गए। सातवें और आठवें श्लोकों में समुद्रगुप्त के सैनिक अभियानों तथा विजयों के विवरण दिए गए हैं।

अभिलेख की तेरहवीं पंक्ति कहा गया है कि समुद्रगुप्त ने उत्तरी भारत के तीन राजाओं को पराजित किया जिनके नाम थे अच्युत नाग, नाग सेन और गणपति नाग। ये राजा क्रमशः अहिछत्र, मथुरा और पद्मावती में राज्य करते थे। यही तीन नाम इक्कीसवीं पंक्ति में 'आर्यावर्त' के अन्य राजाओं के साथ भी दिए गए हैं जिन्हें समुद्रगुप्त ने दक्षिणी अभियान के पश्चात् परास्त किया।

उन्नीसवीं और बीसवीं पंक्तियों में समुद्रगुप्त के दक्षिणी अभियानों का वर्णन दिया गया है। कहा गया है कि दक्षिण के बारह राज्यों के शासकों को समुद्रगुप्त ने बन्दी बना लिया और फिर मुक्त कर दिया। उनके राज्यों को साम्राज्य में विलीन नहीं किया गया था। उनके नाम कौशल का महेन्द्र, महाकाण्टार का व्याघ्रराज, कोरल का मण्टराज, पिष्टपुर का महेन्द्रगिरि, कोट्टूर का स्वामीदत्त, एरण्डपल्ल का दमन, काँची का विष्णुगोप, अवमुक्त का नीलराज, वेंडी का हस्तिवर्मा, पलक्क का उग्रसेन, देवराष्ट्र का कुबेर और कुस्थलपुर का धनंजय थे। यह संतोष का विषय है कि इनमें से अधिकाँश का तादात्म्य निश्चित कर लिया गया है। इनसे ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त के अभियान दक्षिण के पूर्वी तट तक ही सीमित थे। पहले फ्लीट और स्मिथ द्वारा प्रस्तावित विचार यह था कि समुद्रगुप्त पश्चिमी तट के रास्ते वापस आया। यह विचार अब त्याग दिया गया है क्योंकि बारह राजाओं के तादात्म्य पूर्वी तट पर ही निश्चित कर लिए गए हैं। यह उल्लेखनीय है कि दक्षिण के केन्द्रीय और पश्चिमी भाग वाकाटकों के अधीन थे और दक्षिण में समुद्रगुप्त द्वारा पराजित राजाओं की सूची में वाकाटकों का नाम नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि समुद्रगुप्त के दक्षिणी अभियानों के समय में वाकाटक राज्य सुस्थिर रहा।

इक्कसवीं पंक्ति में अच्युत नाग, नाग सेन, गणपति नाग, रुद्र देव, मतिल, नागदत्त, चंद्रवर्मा, नन्दी और बलवर्मा के नाम दिए गए हैं। इन सब राजाओं का समुद्रगुप्त ने पूर्ण उन्मूलन किया। सम्भव है कि ये नौ राजा समुद्रगुप्त के विरुद्ध एक संघ में सम्मिलित हुए हों, इसीलिए अच्युत नाग, नागसेन और गणपति नाग के

नाम फिर दिए गए हैं। यह स्पष्ट नही है कि युद्ध कहाँ हुआ। शायद कौशाम्बी के निकट हुआ होगा।

समुद्रगुप्त ने 'आटविक' राजाओं या जंगली जातियों को भी आत्मसमर्पण करने विवश कर दिया। डॉ० फ्लीट का विचार था कि ये जंगली प्रदेश उत्तर प्रदेश में गाजीपुर जिले से जब्बलपुर तक थे। इस प्रदेश की विजय की पुष्टि समुद्रगुप्त के ऐरण अभिलेख से होती है। बाईसवीं पंक्ति में कहा है पाँच 'प्रत्यान्त' या सीमावर्ती प्रदेशों के शासक भी उसकी आज्ञानुसार आत्मसमर्पण करने आये और उन्होने शुल्क भी दिया। उन पाँच राज्यों के नाम समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल और कर्तृपुर थे।

मालव, अर्जुनायन, यौधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनाकानीक, काक और खरपारिक नौ जातीय गणों ने समुद्रगुप्त के प्रति आत्मसमर्पण किया। इन सबके निवास स्थान निश्चित कर लिए गए हैं।

तेईसवीं और चौबीसवीं पंक्तियों में कुछ विदेशी शासकों के नाम हैं जिन्होंने आत्म–समर्पण किया और राजनिष्ठा का प्रमाण देकर शान्ति मोल ली। ये उपहारस्वरूप कन्याएँ लाए। उन्होंने गरुड़ के प्रतीक दिए। उन्होंने अपने राज्य भी अर्पित कर दिए और आज्ञा की प्रतीक्षा की। इस श्रेणी में देवपुत्र, शाही, शाहानुशाही, शक, मुरुण्ड और सिंहल के लोग तथा द्वीपों के अन्य निवासी थे।

12.4 उत्तराधिकार

इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख में कहा गया है कि समुद्रगुप्त के पिता ने उसकी योग्यता के कारण उसे सिंहासन के लिए चुन लिया और परामर्शदाताओं की उपस्थिति में इसकी घोषणा करके राजकुमार से कहा, ''इस पृथ्वी की रक्षा करो।'' यह भी कहा गया है कि जब यह घोषणा की गई तो उसके बराबर के अन्य सम्बन्धी ('तुल्य कुलज') निराशा के कारण पीले पड़ गए। सभा के सदस्य अति प्रसन्न हुए। ऋद्धपुर अभिलेख में समुद्रगुप्त के लिये 'तत्पाद–परिगृहीत' शब्द का प्रयोग किया गया है। यदि डॉ० छाबड़ा द्वारा दिए गए इसके अर्थ को स्वीकार किया जाए तो चन्द्रगुप्त प्रथम ने राज्य त्याग कर दिया और समुद्रगुप्त को राजा बना दिया। ऐरण अभिलेख से ऐसे ही अर्थ की पुष्टि होती है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि अभिलेख का यह कथन कि समुद्रगुप्त के सम्बन्धी पीले पड़ गये, उत्तराधिकार के लिये झगड़े का केवल काव्यात्मक वर्णन है। कई सिक्कों पर 'कच' नाम और एक मुद्रा लेख दिखाई देता है। कहा गया है कि कच समुद्रगुप्त का बड़ा भाई था जो राजा बन गया और उसका वध करने पर समुद्रगुप्त सिंहासन प्राप्त कर सका। किन्तु यदि हम यह स्वीकार करें कि चन्द्रगुप्त

प्रथम ने समुद्रगुप्त के पक्ष में राज्य त्याग किया तो उत्तराधिकार युद्ध का विचार कदापि मान्य नहीं है। इसके अतिरिक्त कच के सिक्के समुद्रगुप्त के सिक्कों से इतने मिलते हैं कि एलन ने यह निष्कर्ष निकाला कि "सम्राट् का वास्तविक नाम कच था और अपनी विजयों के संकेत में उसने समुद्रगुप्त नाम धारण किया।'' इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि कच के सिक्कों के पृष्ठ–भाग पर 'सर्वराजोच्छेत्ता' मुद्रा–लेख पाया गया है। वंश के विश्वसनीय लेखों में यह उपाधि केवल समुद्रगुप्त को दी गई है, इसलिए कच समुद्रगुप्त का दूसरा नाम माना जा सकता है। सम्भव है कि महासागर तक अपनी विजय कर लेने के बाद कच ने समुद्रगुप्त का नाम धारण किया। 'समुद्रगुप्त' शब्द को दो भागों में बाँट लिया गया हैः 'समुद्र' को व्यक्तिगत नाम और 'गुप्त' को उपनाम माना गया है। यह विचार इस तथ्य पर आधारित है कि समुद्रगुप्त के पूर्वतम सिक्कों के मुख–भाग पर 'समुद्र' नाम अंकित है और इसके पृष्ठ–भाग पर मुद्रा–लेख 'पराक्रम' है।

समुद्रगुप्त के सिंहासनारोहण की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। यदि हम कृत्रिम नालन्दा पत्र को स्वीकार कर लें तो समुद्रगुप्त गुप्त संवत् 5 या 325 ई० से पहले ही राजा बना। कुछ लेखक समुद्रगुप्त को ही गुप्त संवत् का संस्थापक मानते हैं और यदि उनका विचार स्वीकार कर लिया जाये तो समुद्रगुप्त 320 ई० में राजा बना। डॉ० आर०सी० मजूमदार के अनुसार समुद्रगुप्त की सिंहासनारोहण की तिथि 340 और 350 ई० के मध्य में रखी जा सकती है। कृत्रिम गयाताम्र–पत्र के अनुसार 328 ई० में वह राज्य कर रहा था। डॉ० आर०के० मुकर्जी के अनुसार समुद्रगुप्त ने लगभग 335 ई0 से 380 ई० तक राज्य किया।

12.5 समुद्रगुप्त की विजयें

समुद्रगुप्त अपनी विजयों के लिए प्रसिद्ध था। इसीलिए डॉ० वी०ए० स्मिथ ने उसे 'भारतीय नेपोलियन' की उपाधि प्रदान की। उसकी विजयें विभिन्न दशाओं में की गईं और कई प्रकार की थीं। बताया गया है कि आर्यावर्त में उसने 'दिग्विजयी' का कार्य किया किन्तु दक्षिणापथ यादक्षिण में उसने 'धर्मविजयी' का कार्य किया।

12.5.1 दक्षिण में विजयें

समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के कई राजाओं को बन्दी बना लिया और फिर उन्हें मुक्त कर दिया। उनके नाम कोशल का महेन्द्र, महाकण्टार का व्याघ्रराज, पिष्टपुर का महेन्द्रगिरि, कोट्टूर का स्वामीदत्त, कोरल का मण्टराज, वेंङी का हस्तिवर्मा, काँची का विष्णुगोप, पल्लक का उग्रसेन, एरण्डपल्ले का दमन, अवमुक्त का नीलराज, देवराष्ट्र का कुबेर, कुस्थलपुर का धनंजय तथा अन्य राजा थे।

डॉ० एच०सी० रायचौधरी का मत है कि दक्षिणापथ में कोशल राज्य में

वर्त्तमान विलासपुर, रायपुर और सम्भलपुर के जिले और सम्भवतः गंजाम का कुछ भाग सम्मिलित थे और राजधानी श्रीपुर थी।

डॉ० भण्डारकर का विचार है कि महाकाण्टार का व्याघ्रराज निश्चय ही उच्चकल्प वंश के जयनाथ का पुत्र व्याघ्र ही था जिसने बुन्देलखण्ड के जासो और अजयगढ़ राज्यों में राज्य किया। किन्तु इससे महाकाण्टार राज्य विन्ध्य पवर्त के उत्तर में आ जाएगा और दक्षिणापथ में नहीं जैसा कि इलाहाबाद अभिलेख में कहा गया है। जी० रामदास ने महाकाण्टार को गंजाम और विशाखापतनम को झाड़खण्ड प्रदेश माना है। कुछ लेखक इसे महावन ही समझते हैं जो उड़ीसा में वर्तमान जयपुर वन प्रदेश है। डॉ० रायचौधरी के अनुसार, महाकाण्टार मध्य प्रदेश का एक जंगली प्रदेश था जिसमें सम्भवतः काण्टार भी सम्मिलित था जिसे ''महाभारत'' में वैनगंगा की घाटी और कोशल के पूर्वी भाग के बीच बताया गया है।

पिष्टपुर गोदावरी जिले में वर्तमान पिठापुरम है। पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल अभिलेख में भी इसका उल्लेख किया गया है।

कुराल को विभिन्न विद्वानों ने क्रमशः कोलेयर झील, जिसे पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल अभिलेख में कुराल कहा गया है, मध्य प्रदेश में सोनपुर जिला अर्थात् ''ययाति नगर के इर्दगिर्द का प्रदेश जिसे 'पवनदूत' के लेखक ने केरलों का घर बताया है,'' और दक्षिण भारत में कोराड, स्वीकार किया है। डॉ० रायचौधरी का विचार है कि कुराल को कोल्लेरू या कोलेयर नहीं माना जा सकता क्योंकि वे वङ्गी के हस्तिवर्मा के राज्य में सम्मिलित होंगे। डॉ० बार्नेट का विचार है कि कुराल एक गाँव था जिसका वर्तमान नाम दक्षिण भारत में कोराड़ है। गंजाम में रस्सलकुण्ड के निकट भी कोलाड़ नामक एक स्थान है। बी०वी० कृष्ण राव ने लिखा है कि कुराल को कोल्लेरू झील नहीं समझना चाहिए क्योंकि वह वेङ्गीपुर के अत्यधिक निकट है जिसे दण्डिन् ने झील पर स्थित आन्ध्र नगरी कहा है। उसका मत है कि कुराल को मध्य प्रान्त के चान्दा जिले में स्थित कुलूट राज्य स्वीकार करना चाहिए।

जे० डब्रयूल का विचार है कि कोट्टूर को गंजाम जिले में कोठूर स्वीकार करना चाहिए। कहा गया है कि कोट्टूर का स्वामीदत्त दो प्रदेशों का राजा था। एक प्रदेश की राजधानी पिष्टपुर थी और दूसरे की कोट्टूर थी।

फ्लीट ने एरण्डपल्ल को खानदेश में एरण्डोल माना है और जे० डब्रयूल ने एरण्डपलि माना है जो गंजाम जिले में चीकाकोल के निकट स्थित है। जी० रामदास के अनुसार, एरण्डपल्ल को विशाखापतनम में येण्डीपल्लि या एल्लोर ताल्लुके में एण्डपल्लि मानना चाहिए।

डॉ० रायचौधरी का मत है कि काँची मद्रास के निकट वर्त्तमान कांजीवरम है। विष्णुगोप पल्लव वंश का राजा था।

डॉ० रायचौधरी का विचार है कि अवमुक्त का तादात्म्य सन्तोषजनक ढंग से निश्चित नहीं किया जा सकता। किन्तु इसके राजा नीलराज के नाम से नीलपल्लि का स्मरण हो आता है जो गोदावरी जिले में यनाम के निकट एक बन्दरगाह था। डॉ० आर०के० मुकर्जी लिखता है कि ''अवमुक्त अवश्य ही एक छोटा राज्य रहा होगा जो काँची और वेंङी के निकट स्थित होगा। नीलराज गोदावरी जिले में नील पल्लिम से सम्बन्धित हो सकता है। वह पल्लव संघ का भी सदस्य था जिसका समुद्रगुप्त ने सामना किया। काँची राज्य उस समय कृष्णा नदी के मुहाने से पालर नदी और किसी समय में कावेरी नदी तक दक्षिण में फैला हुआ था। इस प्रदेश के पूर्व की ओर वेङ्गी, पल्लक और अवमुक्त राज्य स्थित थे।''

स्मिथ तथा अन्य लेखकों ने देवराष्ट्र को महाराष्ट्र माना है। किन्तु इस तादात्म्य को अनेक विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है। कहा गया है कि देवराष्ट्र को विशाखापतनम जिले में पाए गए ताम्र पत्र अनुदान में उल्लिखित देवराष्ट्र मानना चाहिये। यह भी कहा गया है कि किसी समय पिष्टपुर भी देवराष्ट्र में ही था।

वेंङी को कृष्णा और गोदावरी के बीच में स्थित एल्लोर से सात मील उत्तर की ओर स्थित वेंङी या पेड्डा–वेङ्गी माना गया है। डॉ० हुल्ट्श ने वेङ्गी के हस्तिवर्मा को आनन्द वंश का अतिवर्मा स्वीकार किया। डॉ० रायचौधरी के अनुसार हस्तिवर्मा सम्भवतः शालंकायन वंश का था।

जे0 डब्रयूल का मत है कि पलक्क वही राजधानी है जो कृष्णा नदी के दक्षिण की ओर स्थित थी और जो अनेक पल्लव ताम्र–पत्रों में भी उल्लिखित है। डॉ० रायचौधरी ने माना है कि पल्लक या पलट्कट मानना चाहिए जो पल्लववंश का निवास–स्थान था या दक्षिण भारत में गुन्नूर या नैल्लोर में किसी वाइसरॉय का निवास–स्थान था। एलन और जी० रामदास इसे नैल्लोर जिले में स्थित मानते हैं।

डॉ० बार्नेट ने कुस्थलपुर को उत्तरी अर्काट में पोलूर के निकट कुट्टालूर माना है। स्मिथ का विचार था कि कुस्थलपुर वास्तव में कुशस्थलपुर था जो द्वारिका के धार्मिक नगर का ही दूसरा नाम था।

12.5.2 उत्तर में विजयें

समुद्रगुप्त ने रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मा, गणपति नाग, नागसेन, अच्युत, नन्दिन, बलवर्मा और अन्य अनेक राजाओं को पूर्णतः समाप्त किया। ये सब उसके पड़ोसी और आर्यावर्त में राज्य करते थे। कहा गया है कि अच्युत सम्भवतः अहिच्छत्र प्रदेश (बरेली जिले में वर्त्तमान रामनगर) में राज्य करता था और उसके

कुछ ताँबे के सिक्के प्राप्त हुए हैं। डॉ० आल्टेकर का विचार है कि ''चौथी शती ई० के मध्य तक अच्युत नामक एक राजा अहिच्छत्र (रुहेलखण्ड) में राज्य करने लगा था। उसके सिक्के नाग वंशों के कुछ सिक्कों से बहुत कुछ मिलते–जुलते हैं और सम्भव है कि वह स्वयं भी नाग वंश का ही था, सम्भवतः वह मथुरा के वंश की एक गौण शाखा का ही एक शासक था।''

नागसेन के विषय में बाण–कृत ''हर्षचरित'' से यह जानकारी मिलती है : ''पद्मावती में नाग–वंशी नागसेन का पतन हुआ क्योंकि उसने मूर्खता से एक सारिका की उपस्थिति में अपनी नीति की चर्चा की जिसने उस नीति की घोषणा कर दी।'' पुराणों में कहा गया है कि नागसेन ने पद्मावती और मथुरा में राज्य किया।

रुद्रदेव को रुद्रसेन प्रथम वाकाटक समझा गया है। सम्भवतः यमुना और विदिशा या बुन्देलखण्ड के बीच का प्रदेश उससे छिन गया था।

गणपति नाग को वह राजा समझा गया है जिसकी राजधानी पद्मावती या नाखाड़ थी जो भूतपूर्व ग्वालियर राज्य में अब भी विद्यमान है। गणपति नाग के सिक्के नाखाड़ और बेसनगर में पाए गए हैं। वह सम्भवतः नागसेन का उत्तराधिकारी था। उसे 'घराधीश' या पृथ्वी का स्वामी कहा गया है। "भावशतक'' से ज्ञात होता है कि वह एक महान् शासक था। सम्भवतः समुद्रगुप्त के विरुद्ध किसी विद्रोह का वह नेता था। गणपति नाग के सिक्के मथुरा में भी पाए गए हैं। किन्तु मथुरा एक मुख्य तीर्थ तथा व्यापारिक केन्द्र था इसलिए निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वह मथुरा का भी शासक था। कुछ विद्वान ''भावशतक'' की प्रामाणिकता में सन्देह करते हैं।

12.5.3 आटविक राज्य

समुद्रगुप्त ने वन प्रदेश के सभी राजाओं को 'परिचारक' या सेवक बनाया। फ्लीट के अनुसार, यह प्रदेश केन्द्रीय भारत में स्थित था। डॉ० रायचौधरी मानता है कि आटविक राज्यों में आलवक (गाजीपुर) और डभाल या जब्बलपुर प्रदेश से सम्बन्धित वन राज्य भी सम्मिलित होंगे। इस प्रदेश की विजय का संकेत ऐरण अभिलेख में भी है।

12.5.4 सीमावर्ती राज्य

पूर्व तथा पश्चिम के सीमावर्ती राज्यों ने ''सब प्रकार के कर देकर, आज्ञाएँ मान कर तथा राजनिष्ठा का प्रमाण देकर'' समुद्रगुप्त को आत्मसमर्पण कर दिया। पूर्व की ओर राज्य थे समतट, कामरूप, डबाक, कर्तृपुर और नेपाल पश्चिम की ओर मालव, अर्जुनायन, यौधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनाकानाक, काक, खरपारिक तथा

अन्य गणतन्त्र थे।

12.5.5 विदेशी राज्य

इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख में विदेशी राज्यों का भी उल्लेख किया गया है जिन्होंने समुद्रगुप्त के साथ सम्बन्ध स्थापित किए ''देवपुत्रों, शाहियों, शाहानुशाहियों, शकों और मुरुण्डोंतथा सिंहल के लोगों और अन्य द्वीपों के सभी निवासियों ने सम्मानसूचक सेवा की, उदाहरणतया स्वयं को बलि के रूप में प्रस्तुत करना, कन्याओं को उपहार स्वरूप देना, अपने प्रदेश अर्पित करने के चिन्ह–स्वरूप गरुड़–मुद्रा देना, उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करना आदि। इस प्रकार समुद्रगुप्त ने अपनी भुजाओं की प्रचण्डता से समस्त संसार को बाँध कर एक कर दिया।''

12.5.6 अ□वमेध

अपनी विजयें सम्पन्न करने के बाद समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किया। कुछ सोने के सिक्के प्राप्त हुए हैं जो इस अवसर पर चलाए गए थे तथा ब्राह्मणों को प्रदान किए गए थे। इन सिक्कों पर एक वेदि के सामने बलि किए जाने वाला घोड़ा अंकित है और उसका मुद्रा–लेख है ''पृथ्वी–विजय के पश्चात् अजेय राज एवं शक्तिशाली महाराजाधिराज ने स्वर्ग–विजय की।'' इन सिक्कों के पृष्ठ–भाग पर महारानी का चित्र है तथा 'अश्वमेघ पराक्रमः' मुद्रा–लेखअंकित है। इस प्रकार ये शब्द भी अंकित हैं : 'अश्वमेध से उसकी प्रभुता स्थापित हो गई है। लखनऊ अजायबघर में घोड़े की एक पत्थर की मूर्ति है जो सम्भवतः अश्वमेध यज्ञ की ओर संकेत करती है। उस पर एक अपूर्ण प्राकृत मुद्रा–लेख है 'छागुत्तस्स देयाधम्म।'

12.6 सारांश

डॉ० आर०सी० मजूमदार ने लिखा है कि समुद्रगुप्त एक प्रभावशाली व्यक्ति था। उसने इतिहास में एक नए युग की स्थापना की। वह एक अखिल भारतीय साम्राज्य के आदर्श से प्रेरित हुआ था। छोटे राज्यों की विनाशकारी प्रवृत्तियों को रोकने में समर्थ एक महान् राज्य की उसने स्थापना की। दूरवर्ती प्रदेशों पर उसने नियन्त्रण रखने की चेष्टा नहीं की क्योंकि इससे वे शत्रु बन जाते। मैत्रीपूर्ण नीति से उन्हें मोह लेने की उसने चेष्टा की। उसने उन्हें आन्तरिक स्वराज्य प्रदान किया लेकिन भारत के राजनीतिक जीवन में फूट और भेद डालने की छूट उन्हें नहीं दी। सेनानी और राजनीतिज्ञ दोनों ही दृष्टियों से वह कुशाग्रबुद्धि था। स्मिथ का उसे भारतीय नेपोलियन कहना सर्वथा संगत है।

महापराक्रमी, शौर्यवान, कुशल राजनीतिज्ञ और श्रेष्ठ शासक होने के साथ ही उसके अनेक मानवीय गुणों का ज्ञान प्रयाग प्रशस्ति द्वारा होता है। उसके अनुसार समुद्रगुप्त मृदु–हृदय और अनुकम्पा युक्त, दरिद्र, दुःखी और असहायों की सहायता

के लिए तत्पर और उदारता की प्रतिमूर्ति था। वह विद्याव्यसनी और उच्चकोटि का कला–प्रेमी व मर्मज्ञ था। हरिषेण के शब्दों में वह सुखमनः प्रज्ञनुसंगोचित, शास्त्रतत्वज्ञ था। उसके दरबार में गुणीजनों का बाहुल्य था, जिसकी सहायता से वह अन्य गुणीजनों को परख कर स्वयं भी कविताओं की रचना करता था। वह अपनी विद्वत्सभा का उपजीव्य था। राजशेखरकृत काव्यमीमांसा के अनुसार जो राजा अपनी विद्वत्सभा के अध्यक्ष होते हुए राजकवियों को नवीन विचार प्रदान करने वाली काव्य रचना करने में सक्षम होते थे उन्हें उपजीव्य कहा जाता था। इसीलिए हरिषेण ने उन्हें अनेक कविताएँ करने वाला महान कविराज कहा है। (अनेक काव्य क्रियाभिः प्रतिष्ठित कविराज)

महाकवि होने के साथ ही वह महान संगीतज्ञ भी था, जिसकी तुलना हरिषेण ने वृहस्पति, तुम्बरु, नारद आदि संगीतकारों से की है। उसके सिक्कों से भी वीणा–वादन के प्रति उसकी अभिरुचि प्रदर्शित होती है।

इस प्रकार हरिषेण रचित प्रयाग प्रशस्ति से समुद्रगुप्त के कुशल राजनीतिज्ञ, पराक्रमी साम्राज्य विस्तारक, अतीव शौर्यशाली होने के साथ ही सहृदयी, कला–प्रेमी व मर्मज्ञ, दुःखीजनों के त्राता, विद्वान आदि होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. इलाहाबाद स्तंभ अभिलेख के इतिहास के विषय में वर्णन कीजिये।

   .....

2. इलाहाबाद स्तंभ अभिलेख को किसने और कब बनवाया था? विभिन्न इतिहासकारों के द्वारा दिये गये मतों की विवेचना कीजिये।

   .....

3. इलाहाबाद स्तंभ अभिलेखके अनुसार समुद्रगुप्त के जीवन पर प्रकाश डालिये।

   .....

12.8 संदर्भ ग्रन्थ

आयंगर, एस0. कृष्णास्वामी : स्टडीज इन गुप्ता हिस्ट्री

बनर्जी,आर.डी. : द ऐज ऑफ द इम्पीरियल गुप्ताज

डाण्डेकर, आर.एन. : ए हिस्ट्री ऑफ द गुप्ताज, 1941

गोखले, बी.जी. : समुद्रगुप्त, लाइफ एण्ड टाइम्स (बम्बई, 1962)

गुप्ता, पी.एल. : लेगिटीमेसी ऑफ समुद्रगुप्त, सक्सेशन

मुखर्जी, आर.के. : द गुप्ता एम्पायर (1947)

उपाध्याय, पी. : गुप्त साम्राज्य का इतिहास (हिन्दी)

इकाई 13–चंद्र का महरौली लौह स्तंभ अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 मेहरौली–स्तंभ

13.3 मेहरौली–स्तंभ में वर्णित 'चन्द्र'

13.4 'चन्द्र' और चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विकमादित्य'

13.5 राज्य विस्तार

13.5.1 दक्षिण भारत

13.5.2 कुन्तल

13.6 सारांश

13.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.8 संदर्भ ग्रन्थ

13.0 प्रस्तावना

लौह स्तंभ दिल्ली में कुतुब मीनार के निकट स्थित एक विशाल लौह स्तम्भ है। यह अपनेआप में प्राचीन भारतीय धातुकर्म की पराकाष्ठा है। यह कथित रूप से राजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (राज 375 – 413) द्वारा निर्माण कराया गया, किंतु कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि इसके पहले निर्माण किया गया, संभवतः 912 इ0पू0 में। स्तंभ की उँचाई लगभग सात मीटर है और पहले हिंदू व जैन मंदिर का एक हिस्सा था। तेरहवीं सदी में कुतुबुद्दीन ऐबक ने मंदिर को नष्ट करके कुतुब मीनार की स्थापना की। लौह–स्तम्भ में लोहे की मात्रा करीब 98% है और अभी तक जंग नहीं लगा है। मूलतः यह विष्णुपद पहाड़ों पर स्थापित किया गया था जो पंजाब के अम्बाला जिले में पड़ता हैए इसके संपादन का प्रयास 1834 ई0 से चल रहा था। अन्ततः फ्लीट महोदय ने इसका सम्पादन 1875 ई0 के बाद किया।

लगभग 1600 से अधिक वर्षों से यह खुले आसमान के नीचे सभी मौसमों में अविचल खड़ा है। इतने वर्षों में आज तक उसमें जंग नहीं लगी, यह बात दुनिया के लिए आश्चर्य का विषय है। जहाँ तक इस स्तंभ के इतिहास का प्रश्न है, यह चौथी सदी में बना था। इस स्तम्भ पर संस्कृत में जो खुदा हुआ है, उसके अनुसार

इसे ध्वज स्तंभ के रूप में खड़ा किया गया था। चन्द्रराजा द्वारा पंजाब में विष्णु पहाड़ी पर निर्मित भगवान विष्णु के मंदिर के सामने इसे ध्वज स्तंभ के रूप में खड़ा किया गया था। इस पर गरुड़ स्थापित करने हेतु इसे बनाया गया होगा, अतः इसे गरुड़ स्तंभ भी कहते हैं। 1050 में यह स्तंभ दिल्ली के संस्थापक अनंगपाल द्वारा लाया गया।

इस स्तंभ की ऊंचाई 735.5 से.मी. है। इसमें से 50 सेमी. नीचे है। 45 से.मी. चारों ओर पत्थर का प्लेटफार्म है। इस स्तंभ का घेरा 41.6 से.मी. नीचे है तथा 30.4 से.मी. ऊपर है। इसके ऊपर गरुड़ की मूर्ति पहले कभी होगी। स्तंभ का कुल वजन 6096 कि.ग्रा. है। 1961 में इसके रासायनिक परीक्षण से पता लगा कि यह स्तंभ आश्चर्यजनक रूप से शुद्ध इस्पात का बना है तथा आज के इस्पात की तुलना में इसमें कार्बन की मात्रा काफी कम है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के मुख्य रसायन शास्त्री डॉ० बी.बी. लाल इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इस स्तंभ का निर्माण गर्म लोहे के 20–30 किलो को टुकड़ों को जोड़ने से हुआ है। माना जाता है कि 120 कारीगरों ने कई दिनों के परिश्रम के बाद इस स्तम्भ का निर्माण किया। आज से सोलह सौ वर्ष पूर्व गर्म लोहे के टुकड़ों को जोड़ने की उक्त तकनीक भी आश्चर्य का विषय है, क्योंकि पूरे लौह स्तम्भ में एक भी जोड़ दिखाई नहीं देता। सोलह शताब्दियों से खुले में रहने के बाद भी उसके वैसे के वैसे बने रहने (जंग न लगने) की स्थिति ने विशेषज्ञों को चकित किया है। इसमें फास्फोरस की अधिक मात्रा व सल्फर तथा मैंगनीज कम मात्रा में है। स्लग की अधिक मात्रा अकेले तथा सामूहिक रूप से जंग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ा देते हैं। इसके अतिरिक्त 50 से 600 माइक्रोन मोटी (एक माइक्रोन = 1 मि.मी. का एक हजारवां हिस्सा) आक्साइड की परत भी स्तंभ को जंग से बचाती है।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको मेहरौली लौह स्तंभ लेख तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल एवं राज्य विस्तार से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

13.2 मेहरौली–स्तंभ

प्रस्तुत अभिलेख लोहे के एक स्तम्भ पर अंकित है जो दिल्ली से नौ मील दक्षिण मेहरोली नामक स्थान पर स्थापित है। इस अभिलेख को प्रकाश में लाने का श्रेय लेफ्टिनेन्ट डब्ल्यू० ईलियट को दिया जाताहै, किन्तु जेम्स प्रिन्सेप ने इसे सर्वप्रथम प्रकाशित किया। चौथी शती ई0 के गुप्ता ब्राम्ही में लिखे इस अभिलेख की भाषा संस्कृत है।

छः पंक्तियों के इस अभिलेख में तीन पद्य हैं जो शार्दूल विक्रीडित छंद में हैं। प्रथम पद्य अथवा पहली और दूसरी पंक्तियों में उल्लेख है कि राजा ने अपने भुजबल से 1) बंग (बंगाल) को विजित किया था तथा (2) सिन्धु नदी के सातों मुखों को पारकर बाह्लीक देश (पंजाब अथवा बल्ख तक पहुँच गया) इसके अतिरिक्त उसका प्रभुत्व दक्षिण समुद्र तट तक था। दूसरे पद्य अथवा तीसरी और चौथी पंक्तियों में उल्लेख है कि यद्यपि राजा अब इस संसार में नहीं रहा, किन्तु कीर्तिके रूप में वह अब भी इस संसार में वर्तमान है। तीसरे पद्य अथवा पाँचवी और छठी पंक्तियों से मालूम होता है कि राजा का नाम ''चन्द्र था। जिसने अपने भुजबल से एकाधिराज स्थापित कर विष्णुपद गिरि पर विष्णु ध्वज स्थापित किया। (जिस पर प्रस्तुत लेख अंकित है।)

प्रशस्ति के स्वरूप से ऐसा प्रतीत होता है कि उसका उल्लेख आलेखन 'चन्द्र' के मृत्योपरान्त हुआ था। जिसका प्रभाव समुद्र तट तक विस्तृत था। ''यह राजा चन्द्र'' कौन था एक विवादास्पद प्रश्नहै विभिन्न विद्वानों के इसका समीकरण विभिन्न ऐतिहासिक राजाओं से किया है। इस विवाद ग्रस्त प्रश्न पर विचार करने से पूर्व निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक प्रतीत होता है –

1. मेहरौली का लौह स्तम्भ अपने मूल स्थान पर स्थित है। इसे किसी दूसरे स्थान से नहीं लाया गया है जैसा कि रसायन परीक्षण से विदित होता है।
2. लिपि–शास्त्र के अनुसार प्रस्तुत अभिलेख का आलेखन – गुप्तकाल में हुआ क्योंकि इसमें पाँचवी सदी ई0 की उत्तर भारतीय ब्राम्ही लिपि का प्रयोग किया गया है।
3. राजा चन्द्र का राज्य पश्चिम में कम से कम पंजाब और पूर्वदिशा में बंगाल तक अवश्य ही विस्तृत था
4. राजा चन्द्र वैष्णव धर्म का अनुयायी था।
5. उसने वंश प्रदेश से आये हुए शत्रुओं को विजय किया।
6. बाहलीकों को विजय किया।
7. उसका प्रभुत्व दक्षिण भारत पर भी था।
8. उसकी उपस्थिति देव थी।
9. मरणोपरान्त यह लेख उत्कीर्ण किया गया था।

प्रोफेसर एच.सी. सेन ने राजा चन्द्र का समीकरण चन्द्रगुप्त मौर्य से किया है। उनके मतानुसार समुद्रगुप्तने चन्द्रगुप्त मौर्य को अपना आदर्श नायक मानकर सम्मान में लेख अंकित करवाया था। समुद्रगुप्त सम्भवतः वैष्णव था। उसके लिए आदर्श नायक रघु और सम हो सकते थे जिसकी स्तुति में कालिदास ने रघुवंश की रचना की। उस समय तक तो चन्द्रगुप्त मौर्य को सम्भवतः भुला भी दिया गया है।

लिपि विकास के क्रम में मेहरौली का लेख प्रयाग प्रशस्ति से बाद का मालूम पड़ता है। अतः किसी भी हालत में राजा चन्द्र का समीकरण चन्द्रगुप्त मौर्य से नहीं किया जा सकता है।

एच. सी. राय चौधरी ने चंन्द्र का समीकरणनागवंश के राजा चन्द्रांश से किया है। यर्थात वह स्वयं अपने विचार पर दुविधा प्रकट करते हैं। पुराणों में इस नाग राजा का उल्लेख मिलता है। किन्तु मेहरौली अभिलेख के के चन्द्र के समान महत्वपूर्ण, पराक्रमी, क्रियाम और महान विजेता नहीं प्रतीत होता।

13.3 मेहरौली–स्तंभ में वर्णित 'चन्द्र'

मेहरौली–स्तंभ में वर्णित 'चन्द्र' को अधिकतर विद्वान चन्द्रगुप्त द्वितीय मानते हैं, अतः चन्द्रगुप्त की दिग्विजय के संबंध में इसपर विचार कर लेना आवश्यक है। इस स्तंभ लेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सिंधु नदी के सातों स्रोतों को पार कर 'बाह्लीक' (बल्ख) के शासकों को जीता (तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिंधुर्जिता बाह्लिकाः)। उसने बंग में सम्मिलित रूप से आए हुए शत्रुओं को पराजित किया। उसके यश से दक्षिणसमुद्र भी सुवासित हो रहा था। उसने 'सुचिरं एकाधिराज्य' को अपने भुजबल से अर्जित किया। अभिलेख उसकी मृत्यु के बाद लिखा गया। इस अभिलेख के अनुसार उसने विष्णुपर्वत पर 'विष्णुध्वज' की स्थापना की। देवीचन्द्रगुप्तम् में चन्द्रगुप्त के राज्य के संबंध में 'स्वभुजार्जित' कहा गया है। चन्द्रगुप्त द्वितीय का ही यह अभिलेख है, इसका एक प्रमाण यह भी दिया जा सकता है कि चन्द्रगुप्त के कतिपय ताम्र–सिक्कों पर केवल 'चन्द्र' नाम ही मिलता है। वह वैष्णव था, इसका भी प्रमाण इससे मिलता है। 'बाह्लीक' शब्द को लेकर ही कुछ विवाद उठता है। शक कुषाणों को द्वितीय चन्द्रगुप्त ने पराजित किया था। सुधाकर चटोपाध्याय 'बाह्लीक' की स्थिति पंचनदप्रदेश में मानते हैं और डॉ० अल्तेकर इस विजय से किदारा कुषाण वीरों पर उसकी विजय समझते हैं। चन्द्रगुप्त की बंगाल–विजय पर शंका की गुंजाइश है ही नहीं, क्योंकि वहाँ गुप्त–शासन के प्रमाण उसके बाद भी मिलते रहे हैं। मेहरौली–स्तंभलेख के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने बंगाल पर अपना पूरा अधिकार कर लिया और उत्तर–पश्चिम में शक– कुषाणों का अवशेष सर्वथा नष्ट कर दिया।''

13.4 'चन्द्र' और चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विकमादित्य'

मेहरौली लेख की पंक्तियों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने के पश्चात् हमें 'चन्द्र' नामक शासक की मुख्य उपलब्धियों का पता चलता है–

(1) बंगाल के युद्ध क्षेत्र में उसने शत्रुओं के एक संघ को पराजित किया था।

(2) सिन्धु के सातों मुखों को पार कर उसने वाहिकों को जीता था।

(3) दक्षिण भारत में उसकी ख्याति फैली हुई थी।

(4) वह भगवान विष्णु का परम भक्त था।

यदि उपर्युक्त विशेषताओं को हम चन्द्रगुप्त द्वितीय के पक्ष में लागू करें तो वे सर्वथा तर्कसंगत प्रतीत होती है। समुद्रगुप्त के प्रयाग अभिलेख से पता चलता है कि उसने चन्द्रवर्मा को हराकर बंगाल का पश्चिमी भाग जीत लिया था। कुमारगुप्त प्रथम के लेखों से पता चलता है कि उत्तरी बंगाल पर भी उसका अधिकार था और यहाँ पुण्ड्रवर्धन गुप्तों का एक प्रान्त (भुक्ति) था। हमें यह भी पता है कि स्वयं कुमारगुप्त प्रथम ने कोई विजय नहीं की थी। ऐसी स्थिति में यही मानना तर्कसंगत प्रतीत होता है कि उत्तरी बंगाल का क्षेत्र चन्द्रगुप्त ने ही जीतकर गुप्त साम्राज्य में मिलाया था। समुद्रगुप्त के समय गुप्तों की पूर्वी तथा उत्तरी–पूर्वी सीमाओं पर पाँच राज्य थे – समतट, डवाक, कामरूप, कर्तृपुर तथा नेपाल इन्होंने उसकी अधीनता मान ली थी। लगता है रामगुप्त के निर्बल शासन में ये राज्य पुनः स्वतन्त्र हो गये और उन्होंने अपना एक संघ बना लिया। इसी संघ को बंगाल के किसी युद्ध–क्षेत्र में परास्त कर चन्द्रगुप्त ने उत्तरी बंगाल को जीत लिया और इसी घटना का उल्लेख काव्यात्मक ढंग से मेहरौली लेख में किया गया है। सम्भवतः यह विजय उसके राज्यकाल के अन्त में की गयी थी और यही कारण है कि इसको पुष्टि किसी अभिलेख अथवा सिक्के से नहीं हो पाती।

जहाँ तक 'बाह्लिक' शब्द का प्रश्न है, इससे तात्पर्य निश्चय ही बल्ख (बैक्ट्रिया) से है। परन्तु यहाँ इससे तात्पर्य बैक्ट्रिया देश से कदापि नहीं है। भण्डारकर ने रामायण और महाभारत से प्रमाण प्रस्तुत करते हुये यह सिद्ध कर दिया है। कि प्राचीन काल में पंजाब की व्यास नदी के आस–पास का क्षेत्र भी 'बाह्लिक' नाम से प्रसिद्ध था। रामायण के अनुसार वशिष्ठ ने भरत को बुलाने के लिये कैकय देश को जो दूत–मण्डल भेजा था वह 'बाह्लिक' प्रदेश के बीच से होकर गया था। वहाँ पर उसने सुदामन पर्वत, विष्णुपद, विपाशा एवं शाल्मली नदी के भी दर्शन किये थे। स्पष्ट है कि यहाँ पंजाब की व्यास नदी के समीपवर्ती क्षेत्र को ही बाह्लिक कहा गया है। महाभारत में इस क्षेत्र को 'वाहीक' कहा गया है। टालमी ने भी इसे 'बाहीक' कहा है जिसका अर्थ है 'पाँच नदियों की भूमि।' इसका प्रमुख कारण यह था कि यहाँ पर कुषाणों का निवास था जो पहले बल्ख पर शासन कर चुके थे तथा फिर पंजाब में आकर बस गये थे। अतः कुषाणों को कृष्णा 'बाह्लिक' कहा जाने लगा। मेहरौली लेख के 'बाह्लिक' का तात्पर्य 'परवर्ती कुषाणों' (Later Kushanas) से है जो गुप्तों ' समय में पंजाब में निवास करते थे। समुद्रगुप्त को उन्होंने अपना राजा मान लिया था। रामगुप्त के काल में शकों के साथ–साथ

उन्होंने भी अपने को स्वतन्त्र कर दिया। चन्द्रगुप्त ने शकों का उन्मूलन करने के बाद पंजाब में जाकर कुषाणों को भी परास्त किया और इसी को 'बाह्लिक– विजय' की संज्ञा दी गयी है। सिन्धु के सात मुखों से तात्पर्य उसके मुहाने से है कहाँ उसकी सात पृथक–पृथक धारायें थीं। सिन्धु के मुहाने से होते हुये ही उसने पंजाब में प्रवेश किया होगा तथा षाहिको (कुषाणों) को परास्त किया होगा। सुधाकर चट्टोपाध्याय के अनुसार मेहरौली लेख परोक्ष रूप से चन्द्रगुप्त को शक–विजय की भी सूचना देता है। शकक्षत्रप रुद्रदामन ने निचली सिन्धुघाटी (सौवीर) को कुषाणों से जीता था। इस का कोई प्रमाण नहीं है कि परवर्ती कुषाणों में से किसी ने पुनः इस भाग को शकों से जीत हो। अतः यहाँ गुप्तकाल एक सत्ता बनी रही। चूँकि चन्द्रगुप्त ने शकों के राज्य को जीता, वह स्वाभाविक रूप से सिन्धु के सातों मुखों को कर गया। निचली सिन्धु घाटी से ही उसने पंजाब में प्रवेश किया होगा।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की ख्याति दक्षिण भारत में भी पर्याप्त रूप से फैली हुई थी। दक्षिण के वाकाटक एवं कदम्ब कुलों में अपना वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसने उन्हें अपने प्रभाव क्षेत्र में कर लिया था। उसकी पुत्री प्रभावती गुप्ता के शासनकाल में तो वाकाटक लोग पूर्णतया गुप्तों के प्रभाव में आ गये थे। भोज के ग्रन्थ 'श्रृंगारप्रकाश' से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त ने कालिदास को अपना राजदूत बनाकर कुन्तलनरेश काकुत्सवर्मा के दरबार में भेजा था। कालिदास ने लौटकर से सूचना दी कि 'कुन्तल नरेश अपना राज्य–भार आपके (चन्द्रगुप्त) ऊपर सौंपकर मुक्त होकर भोग–विलास में निमग्न हैं।क्षेमेन्द्र ने कालिदास द्वारा विरचित एक श्लोक का उद्धरण दिया है जिससे लगता है कि कुन्तल प्रदेश का शासन वस्तुतः चन्द्रगुप्त ही चलाता था। इस विवरण से इतना तो स्पष्ट ही है कि दक्षिण के कुन्तलप्रदेश पर चन्द्रगुप्त का प्रभाव था। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हीं प्रभावों को ध्यान में रखकर मेहरौली लेख के रचयिता ने काव्यात्मक ढंग से वह लिखा है कि 'चन्द्र के प्रताप के सौरभ से दक्षिण के समुद्र तट आज भी सुवासित हो रहे हैं।' वाकाटकों एवं कदम्बों से मैत्री के कारण पूर्वीघाट के बाह्य राज्य जिन्हें समुद्रगुप्त ने विजय किया था, भी चन्द्रगुप्त से प्रभावित थे।

मेहरौली लेख की अन्य विशेषतायें भी चन्द्रगुप्त के पक्ष में सही लगती हैं। इसके अनुसार चन्द्र ने अपने बाहुबल द्वारा अपना राज्य प्राप्त किया, उसने चिर–काल तक शासन किया और वह भगवान विष्णु का महान् भक्त था। रामगुप्त के समय में गुप्त साम्राज्य संकट ग्रस्त हो गया था। यदि चन्द्रगुप्त ने शकपति की हत्या नहीं की होती तो गुप्त राज्य शकों के अधिकार में चला जाता। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त ने अपने बाहुबल से ही अपना राज्य प्राप्त किया था। उसने लगभग 40 वर्षों (375–415 ईस्वी) तक शासन किया और इस प्रकार उसका शासन चिरकालीन रहा। वह विष्णु का अनन्य भक्त था जिसकी

सर्वप्रिय उपाधि 'परमभागवत' की थी।

इस प्रकार मेहरौली लेख के चन्द्र की सभी विशेषतायें चन्द्रगुप्त द्वितीय के व्यक्तित्व एवं चरित्र में देखी जा सकती हैं। लेख की लिपि भी गुप्तकालीन है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी मृत्यु के बाद कुमारगुप्त प्रथम ने पिता को स्मृति में इस लेख को उत्कीर्ण करवाया था। लिपि की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही इसमें चन्द्रगुप्त के नाम का केवलप्रथमार्ध 'चन्द्र' ही प्रयुक्त किया गया है। उसकी कुछ मुद्राओं पर भी केवल 'चन्द्र' नाम ही प्राप्त है। अतः मेहरौली लेख को चन्द्रगुप्त द्वितीय का मानने में अब संदेह का कोई स्थान नहीं रह जाता।

13.5 राज्य विस्तार

चन्द्रगुप्त का राज्य समुद्रगुप्त के राज्य से अधिक विशाल था। हिमालय की घाटियों से लेकर नर्मदा नदी तक और पूर्व बंगाल से लेकर काठियावाड़ तक का समस्त प्रदेश उसके राज्य के अंतर्गत था। मेहरौली अभिलेख से ज्ञात होता है कि चन्द्र के प्रताप से दक्षिणी सागर सुगंधित हो उठा। उसका साम्राज्य अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक था। मत्स्यपुराण में वर्णित प्रमाति नामक सम्राट का समीकरण डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने चन्द्रगुप्त द्वितीय से किया है। यदि इस समीकरण को माना जाए तो चन्द्रगुप्त द्वितीय का साम्राज्य उत्तराखंड (उदीच्य), पूर्वी (प्राच्य), पश्चिमी (प्रतीच्य), विंध्यदेशीय (विंध्य–पृष्ठ), कोंकस्थ (अपरांतक), पार्वत्य (पर्वतीय), मध्यदेशीय एवं दक्षिणीय (दाक्षणात्य) तक फैला हुआ था। चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय का साम्राज्य सबसे विशाल था। उसने अनेक बर्बर जातियों को परास्त किया। शकसत्ता को निर्मूल कर देना उसकी प्रशंसनीय कीर्ति है। इसके फलस्वरूप गुजरात, काठियावाड़ और पश्चिमी मालवा पर गुप्तों का एकाधिपत्य हो गया और साथ ही उन्हें भृगुकच्छ का बंदरगाह भी प्राप्त हो गया, जो व्यापारिक केंद्र होने के साथ–साथ एक सुप्रसिद्ध तीर्थ भी था। यही कुर्मपुराण का भृगु तीर्थ है। नहपान के दामाद उषभदात ने यहाँ यात्रियों के विश्राम एवं सुविधा के लिए सार्वजनिक गृह, कुआँ एवं सरोवर का निर्माण कराया था। बल्कि विजय के स्मरण में पंजाब में व्यास नदी पर स्थितविष्णुपद पर उसने विष्णुध्वज (लौहस्तंभ) की स्थापना की, जिसे बाद में फिरोजशाह तुगलक ने वहाँ से हटाकर दिल्ली में कुतुबमीनार के समीप स्थापित कर दिया।

13.5.1 दक्षिण भारत

शकों को परास्त कर अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लेने के बाद उसने दक्षिण भारत की ओर ध्यान दिया। उसने दक्षिण– नरेशों से मित्रता और वैवाहिक संबंध स्थापित किया। नाग, वाकाटक और कुंतल के शासक इस प्रकार उसके मित्र

बन गए। इन नरेशों को अपने वंश में करना उसकी राजनीतिज्ञता का ज्वलंत प्रमाण है। उसने नागकन्या कुबेरनागा' से विवाह किया। कुबेरनागा प्रथम महारानी थी और उसी से प्रभावती गुप्त का जन्म हुआ था। दक्षिण के राज्यों में वाकाटक एक प्रतिष्ठित राजवंश था चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह वाकाटक रुद्रसेन द्वितीय के साथ किया। पुरा ताम्रपत्र अभिलेख से ज्ञात होता है कि गुप्तों और वाकाटकों में घनिष्ठ राजनीतिक संबंध भी था। यह वैवाहिक संबंध भी राजनीतिक महत्त्व से खाली नहीं था। इस विवाह का एक मुख्य कारण यह भी था कि गुप्त राजाओं द्वारा विजित शक– कुषाण– प्रदेशों पर दक्षिणी नरेशों का आक्रमण न हो। गुप्त साम्राज्य को संगठित रखने के लिए यह अत्यंत लाभकारी था, इसलिए इस वैवाहिक संबंध का बहुत महत्त्व है। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि उसने अपनी साम्राज्य नीति को सफल बनाने के दृष्टिकोण से ही वैवाहिक संबंधों का आयोजन किया था। इसे 'राजनीति की एक अद्‌भुत चोट'' कहा गया है। वाकाटकों की भौगोलिक स्थिति इस प्रकार की थी, जिससे वे शकों के विरुद्ध चन्द्रगुप्त द्वितीय के शत्रु–मित्र दोनों ही हो सकते थे। इस वैवाहिक संधि से उसने कूटनीति का परिचय दिया। प्रवरसेन द्वितीय के शासनकाल में गुप्त प्रभाव वाकाटक–राज्य पर बना रहा। कहा जाता है कि प्रवरसेन चन्द्रगुप्त द्वितीय के दरबार में रहता था और कालिदास ने उसकी एक कविता का संशोधन किया था।

13.5.2 कुन्तल

कुछ इतिहासकार इस प्रवरसेन को कुन्तल शासक मानते हैं। बम्बई का दक्षिणी मैसूर का उत्तरी भाग कुन्तल प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध था। सातवाहनों के बाद इस प्रदेश पर चुटुवंश का शासन हुआ और उसके बाद कुन्तल पर कदंबों का अधिकार हुआ। कुन्तलेवर के साथ भी चन्द्रगुप्त द्वितीय के घनिष्ठ संपर्क का यदा–कदा उल्लेख मिलता है। भोज के श्रृंगारप्रकाश के आठवें प्रकाश में कालिदास तथा चन्द्रगुप्त में कुन्तल नरेश के बारे में बातचीत होने का उल्लेख है। यह भी कहा जाता है कि कुन्तल नरेश के यहाँ कालिदास चन्द्रगुप्त के राजदूत बनकर गए थे। कदंब शासक मयूरशर्मन् के पुत्र और पौत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन थे। कर्दयों का चौथा राजा ककुत्स्थवर्मन् उस समय कुन्तल नरेश था। तालगुंड प्रशस्ति में कहा गया है कि कुन्तल नरेश ने अपनी कन्या गुप्त नरेश को ब्याही थी। इस अभिलेख से स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कुन्तल नरेश की कन्या से विवाह किया, अर्थात उसके साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया था। कालिदास के दूत होने का प्रमाण भी कई साधनों से मिलता है। क्षेमेंद्रकृत औचित्य विचारचर्चा के भी इसकी पुष्टि होती है। भोज ने कालिदास की जिस कविता का उल्लेख किया है उसमें कुन्तल नरेश की विलासिता का चित्रण है। शान्तिवर्मन के तालगुंडा अभिलेख के अनुसार कदंब–शासक ककत्स्थवर्मन ने गुप्तवंश एवं अन्य वशों के साथ वैवाहिक

संबंध स्थापित किया था डुब्रेल के अनुसार प्रवरसेन द्वितीय के पुत्र नरेद्रसेन से ककुत्स्थवर्मन ने वैवाहिक संबंध स्थापित किया था। डी० सी० सरकार का विश्वास है कि कदंब–शासक ने अपनी एक कन्या का विवाह नरेन्द्रसेन से तथा दूसरी का विवाह चन्द्रगुप्त के पुत्र अथवा पौत्र से किया था। कुन्तल के बाद के शासकों ने भी गुप्तों को अपना पूर्वज माना। कुन्तल के लोगों ने चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य को उज्जनीपुरवराधीश्वर' और 'पाटलीपुरवराधीश्वर' भी कहा है। इस प्रकार हम देखते है कि चन्द्रगुप्त ने अपने वैवाहिक संबंधों के द्वारा नाग, वाकाटक और कुन्तल के शासकों के साथ मित्रता का संबंध स्थापित कर लिया। इससे गुप्त साम्राज्य और भी सुरक्षित हो गया। राजनीतिक दृष्टिकोण से ये सारे विवाह संबंध बड़े ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए। उसने केवल शस्त्र का ही प्रयोग नहीं किया बल्कि नीति से भी काम लिया और इसमें वैवाहिक संबंध भी एक था, जिसका उपयोग उसने असंतुष्ट या शक्तिशाली राज्यों को अपने अधीन लाने में किया।

13.6 सारांश

इतिहासकारों ने मेहरौली के लौह स्तंभ को सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय के काल में रखा है और लौह स्तंभ में वर्णित राजा चंद्र को चंद्रगुप्त द्वितीय से जोड़ दिया है।

कुछ इतिहासकार मानते है कि उस लौह स्तंभ में जो लेख है वो गुप्त लेखो की शैली का है और कुछ कहते है कि चंद्रगुप्त द्वितीय के धनुर्धारी सिक्को में एक स्तंभ नजर आता है जिसपर गरुड़ है ,पर वह स्तंभ कम और राजदंड अधिक नजर आता है।

लौह स्तंभ के अनुसार राजा चंद्र ने बंग देश को हराया था और सप्त सिंधु नदियों के मुहाने पर वह्लिको को हराया था।

जेम्स फेर्गुसनजैसे पश्चिमी इतिहासकार मानते है कि यह लौह स्तंभ गुप्त वंश के चंद्रगुप्त द्वितीय का है।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह स्तंभ सम्राट अशोक का है जो उन्होंने अपने दादा चंद्रगुप्त मौर्य की याद में बनवाया था। इस संबंध में एक तथ्य और है कि राजा ''चंद्र'' शब्द की पहचान सूर्यवंशी राजा रामचंद्र से भी है। जिनका साम्राज्य लंका के समुद्र तट तक था। यह सब मनगढ़ंत बाते हैं। इसका कोई प्रमाणिक उल्लेख नहीं है।

स्तम्भ की सतह पर कई लेख और भित्तिचित्र विद्यमान हैं जो भिन्न–भिन्न तिथियों (काल) के हैं। इनमें से कुछ लेख स्तम्भ के उस भाग पर हैं जहाँ पर पहुँचना अपेक्षाकृत आसान है। फिर भी इनमें से कुछ का व्यवस्थित रूप से अध्ययन

नहीं किया जा सका है। इस स्तम्भ पर अंकित सबसे प्राचीन लेख 'चन्द्र' नामक राजा के नाम से है जिसे प्रायः गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा लिखवाया गया माना जाता है। यह लेख 33.5 इंच लम्बा और 10.5 इंच चौड़े क्षेत्रफल में है। यह प्राचीन लेखन अच्छी तरह से संरक्षित है है क्योंकि यह स्तम्भ जंग–प्रतिरोधी लोहे से बना है। किन्तु उत्कीर्णन प्रक्रिया के दौरान, लोहे का कुछ अधिक भाग कटकर दूसरे अक्षरों से मिल गया है जिससे कुछ अक्षर गलत हो गए हैं।

13.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

4. मेहरौली लौह स्तंभ के इतिहास के विषय में वर्णन कीजिये।

   ....

   ....

5. मेहरौली लौह स्तंभ किसने और कब बनवाया था? विभिन्न इतिहासकारों के द्वारा
   दिये गये मतों की विवेचना कीजिये।

   ....

   ....

6. मेहरौली–स्तंभ में वर्णित 'चन्द्र' को परिभाषित कीजिये। इतिहासकारों द्वारा
   पभिाषित 'चन्द्र' का वर्णन कीजिये।

13.8 संदर्भ ग्रन्थ

आयंगर, एस0. कृष्णास्वामी : स्टडीज इन गुप्ता हिस्ट्री

बालसुब्रामण्यम, आर. : स्टोरी ऑफ द देलही आयरन पिलर

बनर्जी,आर.डी. : द ऐज ऑफ द इम्पीरियल गुप्ताज

चकवर्ती, डी.के. : द अर्ली यूज ऑफ आयरन इन इण्डिया

दाण्डेकर, आर.एन. : ए हिस्ट्री ऑफ द गुप्ताज, 1941

गाइल्स, एच. : ट्रैवेल्स ऑफ फाहियान (कैम्ब्रिज, 1923)

मेहता, जी.पी. : चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (हिन्दी)

उपाध्याय, पी. : गुप्त साम्राज्य का इतिहास (हिन्दी)

इकाई 14—स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख

14.3 स्कन्दगुप्त पराकमाँक

14.4 उत्तराधिकार

14.5 स्कन्दगुप्त की उपलब्धियाँ

14.5.1 हूणों की पराजय

14.5.2 वाकाटकों से साम्राज्य की रक्षा

14.5.3 नागवंश का विनाश

14.5.4 विद्रोहों का दमन

14.6 राज्य विस्तार एवं उसका पराक्रम

14.6.1 भासन

14.6.2 धर्म

14.6.3 आर्थिक जीवन

14.6.4 मुद्रायें

14.7 सारांश

14.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.9 संदर्भ ग्रन्थ

14.0 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र में लिखी कई बातें कई प्राचीन ग्रंथों में भी पाई जाती हैं। देश के प्रायः हरेक भाग में कई कालखंडों के कई शिलालेख पाए गए हैं जिनमें तालाबों, तटबंधों के रखरखाव और प्रबंधन की सूचनाएं खुदी हुई हैं। जूनागढ़ (गुजरात) में दो शिलालेखों में बाढ़ से नष्ट तटबंध की मरम्मत के बारे में दिलचस्प सूचनाएं हैं।

पहला शिलालेख शक संवत् 72 (150—151 ई.) का है, शक शासक रुद्रदमन

का इस शिलालेख में महाक्षत्रप रुद्रदमन द्वारा सुदर्शन झील की मरम्मत आदि के दिलचस्प विवरण हैं। शुरू में इस झील का निर्माण चंद्रगुप्त मौर्य के अधिकारी पुष्यगुप्त ने करवाया था। बाद में अशोक के शासन में इसमें और सुधार किया गया। यवन राजा तुशाष्य ने इस झील से नहर निकलवाया। यह झील उर्जयत (गिरनार) में उर्जयत पहाड़ी से निकले सुवर्णसिकता और पालसिनी झरनों के पानी को जमा करके बनाई गई थी। 150–151 ई. में थोड़ा पहले उर्जयत पहाड़ी के सुवर्णसिकता, पालसिनी और दूसरे झरनों में बाढ़ के कारण तटबंधों में दरार पड़ गई और सुदर्शन झील समाप्त हो गई। बांध को फिर से बनाने का काम राजा रुद्रदमन के पल्लव मंत्री सुविसाख ने किया। सुविसाख की नियुक्ति सुवर्ण और सौराष्ट्र प्रांतों का शासन चलाने के लिए की गई थी।

शिलालेख से कई बातें सामने आती है। झील के पानी का उपयोग राजा तुशाप्य द्वारा खुदवाई गई नहरों से सिंचाई के लिए होता था। चार शताब्दी बाद उसकी मरम्मत एक पहलव या पल्लव सामंत ने करवाई। दोनों ही काम विदेशियों ने किए। इस तरह यह शिलालेख केवल बांध ही नहीं, झील का भी एक रिकॉर्ड है। इससे पता चलता है कि ई.पू. चौथी शताब्दी में भी लोग बांधल सिंचाई प्रणाली का निर्माण जानते थे।

तीन सौ साल बाद मरम्मत आदि का काम पूरा होने पर 455–456 ई. में सुदर्शन झील भारी बरसात के कारण फिर टूट गई। 456 ई. में चक्रपालित के आदेश पर इस विशाल दरार की मरम्मत करके तटबंधों को दो महीने में दुरुस्त किया गया। सम्राट स्कंदगुप्त (455–467 ई.) के काल के जूनागढ़ के एक शिलालेख से पता चलता है कि चक्रपालित ने सुदर्शन झील के तटबंध की मरम्मत करवाई।

दोनों शिलालेखों में कई समान बातें दर्ज हैं। दोनों में झील का नाम सुदर्शन तातक या ताड़क बताया गया है। यह भी बताया गया है। कि झील पालसिनी नदी (रुद्रदमन के शिलालेख में सुवर्णसिकता नाम भी दिया गया है) और दूसरे झरनों पर सेतुबंधन या तटबंध बनाकर तैयार की गई। कौटिल्य ने भी तटबंध के लिए सेतु शब्द का प्रयोग किया है। सेतु और सेतुबंधन शब्द कई संस्कृत ग्रंथों में भी मिलते हैं। रुद्रदमन के शिलालेख में दूसरे शब्द जो प्रयोग किए गए हैं वे हैं – नहर के लिए प्रणाली, कचरा बंधारा के लिए परिवह, झील से गाद की सफाई के लिए मिधविधान। प्रत्येक शिलालेख ने दरार का पूरा नाप–जोख बताया है और तटबंध के पुनर्निर्माण में लगे समय का पूरा ब्यौरा दिया है। इन तटबंधों को शुरू में मिट्टी से बनाया गया था जिनके दोनों तरफ पत्थर लगाए गए थे। देश भर में निर्माण का यह ठोका बजाया तरीका तब तक अपनाया जाता रहा जब तक सीमेंट और कंक्रीट

नहीं आ गए। सुदर्शन झील पर अपने अनुसंधान के दौरान प्रख्यात इतिहासज्ञ आर. एन. मेहता ने कचरा बंधारा का पता लगाया जिसे जोगनियो पहाड़ी को काटकर बनाया गया था। इसे स्थानीय भाषा में डुंगर कहा जाता है। ऐसे कचरा बंधारे पहाड़ों में कई जगह पाए जा सकते हैं। तटबंध के नष्ट हो जाने के कारण सुदर्शन झील शायद आठवी या नौंवी ई. में बेकार हो गई और फिर से प्रयोग में नहीं लाई जा सकी। इस तरह इसका जीवन काफी लंबा करीब एक हजार वर्षों का रहा।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको जूनागढ़अभिलेख के इतिहास तथा स्कन्दगुप्त के शासनकाल एवं राज्य विस्तार से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

14.2 स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख

जूनागढ़ (गुजरात) जिले में गिरनार पर्वत पर प्राप्त स्कन्दगुप्त का यह अभिलेख संस्कृत भाषा और दक्षिणी ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण है।

इस अभिलेख का मुख्य विषय स्कन्दगुप्त के शासन काल में सुदर्शन झील के बाँध का टूटना और सौराष्ट्र प्रांत के राज्यपाल पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालिक द्वारा उसका पुनः निर्माण कराना है।

अभिलेख का आरम्भ विष्णु की स्तुति से हुआ। इस अभिलेख के पाँचवे श्लोक में कहा गया है कि लक्ष्मी स्वयं यं वरयाञ्चकार अर्थात् राजलक्ष्मी ने अन्य सभी राजपुत्रों का परित्याग कर स्कन्दगुप्त को अपना वर चुना। रमेशचन्द्र मजूमदार बी०पी० सिन्हा, पी०एल० आदि विद्वानों ने उपर्युक्त कथन के आधार पर यह मत प्रतिपादित किया कि कुमारगुप्त की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्रों स्कन्दगुप्त आदि में सिंहासन के लिए युद्ध हुआ। इस संघर्ष में स्कन्दगुप्त विजयी हुआ और लक्ष्मी ने उसका वरण किया।

समस्त भूमण्डल पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त स्कन्दगुप्त ने अपने साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तों में राज्यपाल (गोप्ता) नियुक्ति किये। जूनागढ़ अभिलेख के अनुसार सौराष्ट्र का प्रान्त उसके साम्राज्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रान्त था।

स्कन्दगुप्त ने पर्णदत्त को यहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया। गुप्त – सम्वत् 136 में सुदर्शन झील का बाँध टूट गया। सुदर्शन झील का निर्माण चन्द्रगुप्त मौर्य के सौराष्ट्र के राज्यपाल पुष्यगुप्त वैश्य ने गिरनार पर्वत पर कराया था।

स्कन्दगुप्त के समय में घनघोर वर्षा के कारण यह बाँध पुनः टूट गया, जिससे जनता को भीषण कष्ट होने लगा। अतः पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने राज्य और नागरिकों के कल्याण के लिए 137 गुप्त – सम्वत् में (456 ई०) सुदर्शन झील

को फिर से बँधवा दिया। अब यह बाँध एक सौ हाथ लम्बा, अड़सठ हाथ चौड़ा, सात पुरूषों के बराबर ऊँचा तथा दो सौ हाथगहरा हो गया।

गुप्त सम्वत् 168 में चकपालित ने इसके किनारे चकधारी विष्णु के एक मन्दिर का भी निर्माणकराया।

14.3 स्कन्दगुप्त पराक्रमांक

कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद गुप्त शासन की बागडोर उसके सुयोग्य पुत्र स्कंदगुप्त ने संभाली। जूनागढ़ लेख में उसके शासन की प्रथम तिथि गुप्त संवत्136 (455 ई0) उत्कीर्ण मिलती है। गढ़वा अभिलेख तथा रजत सिक्कों में उसकी अंतिम तिथि गुप्त संवत् 148 (467 ईस्वी) प्राप्त होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्कंदगुप्त ने 455 से 457 ई0 तक शासन किया। राजनीतिक घटनाओं की दृष्टि से स्कंदगुप्त का शासनकाल व्यापक उथल–पुथल का काल था।

स्कन्दगुप्त राज्यारोहण के पूर्व से ही राज्य के कार्यों में सक्रिय भाग ले रहा था। कुमारगुप्त के दो पुत्र थे – पुरूगुप्त और स्कन्दगुप्त। पुरुगुप्त की माता का नाम अनंत देवी था, परंतु स्कन्दगुप्त की माता का नाम उसके अभिलेख से नहीं ज्ञात होता है। उसके राज्यारोहण के संबंध में विद्वानों में मतभेद है और ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि गद्दी के लिए उसे संघर्ष करना पड़ा था। जूनागढ़ अभिलेख के अनुसार लक्ष्मी ने अनेक राजकुमारों के बीच से स्कन्दगुप्त का वरण किया था। संदिग्ध साधनों के आधार पर विद्वान उसे राजगद्दी का वैध उत्तराधिकारी नहीं मानते हैं। स्कन्दगुप्त ज्येष्ठ न होते हुए भी राज्य का उत्तराधिकारी बना। उसके शासन के अध्ययन के लिए अग्रलिखित साधन उपलब्ध हैं–

बिहार का स्तंभलेख– तिथि के अभाव में भी यह लेख महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें कुमारामात्य, अग्रहारिक, शौल्किक और गैल्मिक जैसे अफसरों के नाम मिलते हैं।

भितरी का स्तंभलेख– इसमें भी तिथि का अभाव है, परंतु इसमें स्कन्दगुप्त की जीवन– घटनाओं का विश्लेषण है।

जूनागढ़–अभिलेख (गुप्त–संवत 136–455–56 ई०) –यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण लेख है। इससे निम्नलिखित बातों पर प्रकाश पड़ता है–(क) हूणों का परास्त करने के बाद स्कन्दगुप्त ने सौराष्ट्र में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया, (ख) मौर्यो द्वारा निर्मित सुदर्शन झील का उसने जीर्णोद्धार करवाया, (ग) उसी के बगल में विष्णु मंदिर की स्थापना की गई और (घ) इसमें गुप्त–संवत का उल्लेख है।

कहोम का स्तंभलेख (गुप्त–संवत 141–465 ई०) – इसमें जैन तीर्थंकर की प्रतिमा स्थापित करने का वर्णन मिलता है।

इंदार का ताम्रपत्र (गुप्त–संवत 146–465 ई०) – इसमें सूर्य को दीपक दिखाने के निमित्त दान का उल्लेख है।

गढ़वा–अभिलेख (गुप्त–संवत 148) – इसका प्रबंध इंद्रपुर के तैलिक श्रेणी के हाथ था।

स्कन्दगुप्त के दो प्रकार के सिक्के उपलब्ध हुए हैं जिनमें एक पर एक ओर धनुष–बाण लिए सम्राट का है और दूसरी ओर पद्मासना लक्ष्मी का चित्र है और दूसरे पर एक ओर सम्राट् और राजमहिषी का चित्र है और बीच में गरुड़ध्वज स्थित है। ताँबे और चाँदी के भी सिक्के मिले हैं। ऐसा देखा जाता है कि गुप्तवंश में बड़ा लड़का किसी–न–किसी कारणवश राज्य का उत्तराधिकारी नहीं हो सका था, राजगद्दी से उसे हाथ धोना पड़ा था, उदाहरणार्थ – रामगुप्त, गोविन्दगुप्त, पुरुगुप्त इत्यादि।

इन अभिलेखों के आधार पर स्कन्दगुप्त का शासनकाल गुप्त–संवत 136 से गुप्त–संवत 148 माना जाता है, यानी उसने 455 से 467 ई० तक शासन किया। बारह वर्षों तक सुचारु रूप से उसका शासन चलता रहा। यों राज्य कार्य में तो वह पहले से भाग ले ही रहा था।

14.4 उत्तराधिकार युद्ध

कुमारगुप्त की पटरानी का नाम महादेवी अनंतदेवी था जिसका पुत्र पुरुगुप्त था। स्कंदगुप्त की माता संभवतःपटरानी या महादेवी नहीं थी। रमेशचंद्र मजूमदार का अनुमान है कि कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद पुरुगुप्त गुप्तवंश का शासक हुआ। स्कंदगुप्त ने राजगद्दी के इस उत्तराधिकर युद्ध में पुरुगुप्त को पराजित कर गुप्त राजसत्ता पर अधिकार किया। स्कंदगुप्त के भितरी स्तंभ–लेख के एक श्लोक से भी पता चलता है कि गुप्तवंश की राजलक्ष्मी चंचल हो गई थी जिसे स्कंदगुप्त ने अपने बाहुबल से प्रतिष्ठित किया। वे शत्रु का नाशकर अपनी माता देवकी के पास उसी प्रकार गये, जिस प्रकार शत्रुओं का नाश करके कृष्ण अपनी माता देवकी के पास गये थे।

जूनागढ़ लेख से पता चलता है कि सभी राजकुमारों का परित्याग कर लक्ष्मी ने स्वयं उसका वरण किया था (व्यपेत्य सर्वान् मनुजेंद्रपुत्रान् लक्ष्मी स्वयं यं वरयांचकार) स्कन्दगुप्त की लक्ष्मी प्रकार की स्वर्ण मुद्राओं पर भी इस दृश्य का अंकन मिलता है, जिसके मुख पर दायें तरफ लक्ष्मी और बायें तरफ राजा का चित्र है। लक्ष्मी राजा को कोई वस्तु प्रदान करत चित्रित की गई है।

किंतु इन उल्लेख से ऐसा नहीं लगता कि स्कंदगुप्त को किसी गृहयुद्ध का सामना करना पड़ा था। भितरी लेख से स्पष्ट है कि उसके पिता के शासनकाल में पुष्यमित्रों का विद्रोह इतना भयंकर रूप धारण कर चुका था कि गुप्तकाल की कुललक्ष्मी विचलित हो गई थी और उसे पुनः स्थापित करने के लिए स्कंदगुप्त को कई रातें जमीन पर सोकर बितानी पड़ी थी। जिस प्रकार कृष्ण शत्रुओं को परास्त कर अपनी माता देवकी के पास गये थे, उसी प्रकार स्कन्दगुप्त भी शत्रु को नष्ट कर अपनी माता के पास गया और उसकी माता की आँखो में आँसू छलक आये थे। राज्यश्री ने स्वयं ही स्कन्दगुप्त को स्थायी रूप से वरण किया था। इस प्रकार पुष्यमित्रों को पराजित करके स्कन्दगुप्त ने अपनी अपूर्व प्रतिभा और वीरता का परिचय दिया था।

14.5 स्कन्दगुप्त की उपलब्धियाँ

वैसे तो स्कन्दगुप्त की अनेक उपलब्धियाँ थी, किन्तु सबसे प्रमुख उपलब्धि हूणों पर विजय प्राप्त करना थी, आइये स्कन्दगुप्त की कुछ प्रमुख उपलब्धियों के विषय में प्रकाश डालते हैं –

14.5.1 हूणों की पराजय

स्कन्दगुप्त के शासनकाल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना बर्बर हूणों की पराजय थी। हूण मध्य एशिया में निवास करने वाली एक खानाबदोश बर्बर जाति थी। उन्हीं के आक्रमणों के कारण यू–ची लोग अपना प्राचीन निवास स्थान छोड़कर शकस्थान की और बढ़ने को बाध्य हुए थे। यूचियों द्वारा खदेड़े जाने पर शक लोग ईरान और भारत की तरफ आ गये थे। हूणों के आक्रमणों का ही परिणाम था कि शक और यू–ची लोग भारत में प्रविष्ट हुए थे। कालांतर में हूणों की दो शाखाएं हो गई पश्चिमी शाखा और पूर्वी शाखा। पश्चिमी शाखा के हूणों ने सुदुर पश्चिम में आक्रमण कर रोमन साम्राज्य को छिन्न–भिन्न कर दिया। हूण राजा एट्टिला के अत्याचार और बर्बरता के कारण समस्त पाश्चात्य विश्व में त्राहि–त्राहि मच गई थी। पूर्वी शाखा के श्वेत हूणों ने हिंदुकुश पर्वत को पार करके पहले गांधार पर कब्जा किया और फिर गुप्त साम्राज्य को चुनौती देने लगे।

हूणों का प्रथम आक्रमण स्कंदगुप्त के समय में हुआ जिसका नेता संभवतः खुशनेवाज था। हूण आक्रमण का सफल प्रतिरोध कर गुप्त साम्राज्य की रक्षा करना स्कंदगुप्त के राज्यकाल की सबसे बड़ी घटना है।

भितरी स्तंभलेख के अनुसार स्कंदगुप्त की हुणों से इतनी भयंकर मुठभेड़ हुई कि संपूर्ण पृथ्वी काँप उठी (**हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्या धरा कम्पिता। भीमावर्त करस्य**)। किंतु अंत में स्कंदगुप्त की विजय हुई और उसकी इस विजय

के कारण उसकी अमल शुभ–कीर्ति कुमारी अंतरीप तक सारे भारत में गाई जाने लगी। बौद्ध ग्रंथ चंद्रगर्भ–परिपृच्छा के अनुसार हूणों के साथ हुए इस युद्ध में गुप्त सेना में सैनिकों की संख्या दो लाख थी और हूणों की सेना तीन लाख थी। तब भी विकट और हूणोंके मुकाबले में गुप्त सेना की विजय हुई। चंद्रगोमिन् के व्याकरण में भी एक सूत्र मिलता है कि गुप्तों ने हुणों को पराजित किया (अजयत् जर्तो हूणान्) जो स्कन्दगुप्त के हूण विजय की ओर संकेत करता है।

स्कंदगुप्त का हूणों से युद्ध किस स्थान पर हुआ था, स्पष्ट नहीं है। भितरी लेख में उल्लिखित 'श्रोत्रेषु गांगध्वनिः' के आधार पर वी.पी. सिन्हा का अनुमान है कि यह युद्ध गंगाघाटी में कहीं लड़ा गया था, किंतु यह शब्द युद्धस्थल का सूचक नहीं माना जा सकता है। अत्रेयी विश्वास के अनुसार स्कंदगुप्त और हूणों के मध्य युद्ध गुप्त साम्राज्य की उत्तरी–पश्चिम सीमा पर हुआ होगा।

उपेंद्र ठाकुर का विचार है कि हूण युद्ध या तो सतलज नदी के तट पर या पश्चिमी भारत के मैदानों में लड़ा गया था। जूनागढ़ लेख से पता चलता है कि स्कंदगुप्त पश्चिमी प्रदेश की सीमाको लेकर चिंतित था और गहन विचार–विमर्श के बाद ही योग्य पर्णदत्त को इस प्रदेश का रक्षक नियुक्त किया था।

इस प्रकार पश्चिमी भारत के किसी भाग को ही युद्ध–स्थल मानना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। युद्ध कहीं भी हुआ रहा हो, इतना निश्चित है कि स्कंदगुप्त ने हूणों को पराजित कर गुप्त साम्राज्य को एक भीषण संकट से बचा लिया। इस वीर–कृत्य के कारण वह समुद्रगुप्त एवं चंद्रगुप्त द्वितीय की भाँति 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण करने का अधिकारी हो गया। स्कंदगुप्त ने हूणों को 460 ई. के पूर्व पराजित किया होगा क्योंकि इस तिथि के कहोम लेख में ज्ञात होता है कि उसके राज्य में शांति थी। बाद के इंदौर और गढ़वा लेखों से भी उसके सामाज्य में शांति और समृद्धि की सूचना मिलती है। इस प्रकार हूण आक्रमण उसके शासन के प्रारंभिक वर्षों में हुआ रहा होगा।

उसने पश्चिम और पश्चिमोत्तर के सभी प्रांतों में गोप्ता (सैनिक शासन) की नियुक्ति की और उन्होंने गरुड़ों की तरह फण उठाए सर्पों को खा लिया। फिर भी, पश्चिमोत्तर सीमा पर हूणों का दबाव बढ़ता रहा और उनकी बाढ़ को रोकने के लिए स्कन्दगुप्त को बड़ी जागरूकता और परिश्रम से काम करना पड़ा तथा पानी की तरह धन बहाना पड़ा। स्कन्दगुप्त के नकली धातु के पिछले सिक्के इस बात के प्रमाण हैं। फिर भी, आंतरिक और बाह्य कठिनाइयों को सहते हुए वह देश की रक्षा करने में समर्थ रहा। सुराष्ट्र से लेकर बंगाल तक और उत्तर भारत से मध्यप्रदेश तक सभी प्रांत अक्षुण्ण रूप से उसके साम्राज्य में थे और सारे भारत पर गुप्तों का आधिपत्य बना हुआ था।

14.5.2 वाकाटकों से साम्राज्य की रक्षा

मंदसौर शिलालेख से ज्ञात होता है कि स्कंदगुप्त की प्रारंभिक कठिनाइयों का लाभ उठाते हुए वाकाटक शासक नरेंद्रसेन ने मालवा पर अधिकार कर लिया। वाकाटक शासक नरेंद्रसेन को बालाघाट लेख में कोशल, मेकल तथा मालवा का शासक बताया गया है (**कोशल मेकल मालवाधिपतिः अभ्यर्चितशासनः**)। किंतु स्कंदगुप्त ने वाकाटक शासक को पटालित कर इस प्रदेश पर अपना अधिकार सुदृढ़ कर लिया।

14.5.3 नागवंश का विनाश

जुनागढ़ अभिलेख में कहा गया है कि स्कंदगुप्त की गरुडध्वजांकित राजाज्ञानागरूपी उन राजाओं का मर्दन करनेवाली थी जो मान और दर्प से अपने फन उठाए रहते थे।

नरपति भुजंगानांमानदर्पोत्फणानाम्।

प्रतिकृति गरुड़ाज्ञां निर्विर्षीचावकर्त्ता।।

इस आधार पर फ्लीट जैसे इतिहासकारों का अनुमान है कि स्कंदगुप्त ने नागवंशी राजाओं को पराजित किया था। किन्तु इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना असंभव है।

14.5.4 विद्रोहों का दमन

कुछ इतिहासकारों का विचार है कि गोविंदगुप्त स्कन्दगुप्त का छोटा चाचा था, जो मालवा के गर्वनर पद पर नियुक्त था, उसने स्कन्दगुप्त के विरूद्ध विद्रोह कर दिया था और स्कन्दगुप्त ने इस विद्रोह का सफलतापूर्वक दमन किया था।

14.6 राज्य विस्तार एवं उसका पराक्रम

कथासरितसागर में स्कन्दगुप्त द्वारा दिग्विजय के लिए महती सेना भेजी जाने और दक्षिणी प्रदेशों, मध्यप्रदेश, सुराष्ट्र, गंगा के पूर्व के प्रदेशों तथा कश्मीर की विजय का उल्लेख है। अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए उसने कुछ उठा नहीं रखा। वह अपने पैतृक साम्राज्य पर सुचारु रूप से शासन करता रहा। विभिन्न प्रांतों से प्राप्त उसके सिक्कों से उसके राज्य की अखंडता का परिचय मिलता है। काहौम–अभिलेख में उसके पराक्रम का वर्णन इस प्रकार है– ''सैकड़ों राजाओं के सिर दरबार में नमस्कार करते समय उसके चरणों में नत हुए। वह सैकड़ों नरपतियों का सम्राट था (क्षितिपशतपतिः)वह इंद्र का समकक्ष (शक्रोपम) और अपने साम्राज्य में शांति का संस्थापक था। उसने अपने बाहुबल से आक्रांत शत्रुओं द्वारा

विलुप्त और विचलित गुप्तकुल लक्ष्मी को पुनः संस्थापित किया और शांति तथा स्थायित्व प्रदान किया। वह एक महान विजेता, राष्ट्र का मुक्तिदाता, गुप्त साम्राज्य के गौरव का पुनःस्थापक, उदार एवं महान शासक तथा संगठनकर्ता था। अपने यौवनकाल में ही उसने अपनी प्रबल वीरता का परिचय दिया। उसकी वीरता से उसका प्रताप सर्वव्यापी हो गया। वह 'विक्रमादित्य'नाम से भी प्रसिद्ध था। उसका यश विपुल था। करुणा और दया का उसे अवतार कहा गया है। मनुष्य को उन्नति की चोटी पर पहुँचानेवाला दया, धर्म, विनय, आर्जव, औदार्य आदि जितने गुण हैं, सब उसमें विराजमान थे।

कहौम–अभिलेख में उसकी पवित्र आत्मा' (अमलात्मा) की चर्चा है। वह प्रजापालक था। उनके शत्रु भी उसकी प्रशंसा करते थे। उसने काफी लोकोपकारी कार्य भी किए। उसने लड़खड़ाते हुए गुप्त साम्राज्य को नष्ट होने से बचा लिया। क्रमादित्य–विक्रमादित्य के अतिरिक्त मंजुश्रीमूलकल्प में उसे देवराज भी कहा गया है। काहौम अभिलेख में उसे 'शक्रोपम' कहा गया है।

14.6.1 शासन

जूनागढ़–लेख से ज्ञात होता है कि उसने पर्णदत्त को सौराष्ट्र–प्रदेश का गोप्ता (सैनिक राज्यपाल) नियुक्त किया। यह एक कठिन कार्य था। गिरनार में नगराध्यक्ष का भी उल्लेख मिलता है। नगराध्यक्ष को एक आकस्मिक आपत्ति का सामना करना पड़ा। उज्जैन और रैवतक पर्वतों की ढालों से निकलती पलाशिनी, सुवर्णसिकता आदि नदियों के जल को बाँधकर जो सुदर्शन झील बनाई गई थी, उसके पुश्त में दरार पड़ने से नगर की जल व्यवस्था संकट में पड़ गई थी। झील (जो समुद्र के समान गहरी थी–निधितुल्य) के जल को निकालकर उसे खाली किया गया। इससे झील भद्दी लगने लगी। किंतु, चक्रपाणिन ने समयानुकूल व्यय की चिंता न कर 100 हाथ लंबे 68 हाथ चौड़े और 7 पोरसे ऊँचे बाँध की मरम्मत करा दी। स्कन्दगुप्त के शासनकाल की यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इस झील का निर्माण चन्द्रगुप्त मौर्य के समय हुआ था। अशोक ने उसमें से लहरें निकाली थीं। रुद्रदामन ने उसकी सीमाओं का जीर्णोद्धार कराया था। 456 ई. में पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित (या चन्द्रपालित, जो नगराध्यक्ष था) ने उसे पक्का करा दिया। इसके सफल स्मारक में चक्रभूत अथवा विष्णु का एक मंदिर 458 ई० में बनवाया गया। इसके प्रमुख पदाधिकारियों के नाम हैं –(1) पर्णदत्त (सौराष्ट्र का राज्यपाल), (2) शर्वनाग अंतर्वेदी का विषयपति (गंगा–यमुना दोआब) (3) भीम वर्मा कोसम क्षेत्र का शासक (4) चक्रपालित (गिरनार का पदाधिकारी)। पदाधिकारियों में अग्रहारिक शौल्किक तथा गैल्मिक का उल्लेख विहार लेख में मिलता है।

14.6.2 धर्म

शिलालेखों से विभिन्न धर्मो के मंदिरों की स्थिति का पता चलता है। हम चक्रभूत के मंदिर का उल्लेख ऊपर कर चुके हैं। विहार स्तंभलेख में भगवान स्कंद और देवमातृकाओं के मंदिरों के मंडल और एक यूप का वर्णन मिलता है। एक शिलालेख में सूर्य के मंदिर का उल्लेख है। आकाश जैसे ऊँचे एक सतंभ के कोनों में जैन आदिकर्ताओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण थीं। स्कन्दगुप्त स्वयं वैष्णव था और साथ ही धर्मसहिष्णु भी। भितरी में स्कन्दगुप्त ने विष्णु मंदिर और विष्णुप्रतिमा की स्थापना की। काहौम–अभिलेख से ज्ञात होता है कि मद्र नामक एक व्यक्ति ने जैन तीर्थंकरों की पत्थर की पाँच मूर्तियाँ स्थापित कराई। अंतवेंदों के विषयपति सर्वनाग की सीमा में सूर्य भगवान के दीपक के निमित्त दान का वर्णन मिलता है, जिसके व्यय के लिए राणाणीय शाखावाले एक ब्राह्मण ने क्षत्रियवीर चलवर्मा तथा भृकुटीसिंह के द्वारा स्थापित मंदिर में अग्रहार दान में दिया था। इसका प्रबंध इंद्रपुर के तैलकार–संघ के अधीन था। प्रजा धर्म के मामले में पूर्णरूपेण स्वतंत्र थी। इन सब बातों से उसकी धार्मिक सहिष्णुता तथा विशालहृदयता का परिचय मिलता है। उसके कुछ सिक्कों पर 'नंदी' का भी चित्र मिलता है।

14.6.3 आर्थिक जीवन

उद्योगों का संचालन श्रेणियों द्वारा होता था। उस समय एक अभिलेख में तैलिक–श्रेणी का उल्लेख मिलता है। बैंकों की तरह श्रेणियाँ कोष के ब्याज को दान के निर्दिष्ट उद्देश्य के लिए व्यतीत करती थीं। यह दानपत्र लिखित होता था (दायमिनं निबद्धम्)। इस प्रकार के स्थायी कोष को अक्षयनिधि कहते थे।

14.6.4 मुद्राएँ–

उसने तीन प्रकार की मुद्राएँ चलाई – (1) धनुर्धर, (2) राजलक्ष्मी तथा (3) अश्वारोही। उसमें पश्चिम और मध्य भारत में चाँदी की मुद्राएँ भी जारी की।पश्चिमी मुद्राओं में वृषभ–शैली की मुद्राएँ 'विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्हें बाद में वल्लभी के मैत्रक सम्राटों ने अपना लिया। वल्लभी गुप्त राजाओं के अधीन था और वहाँ सेनापति भटार्क शासक था। उसका पुत्र था धरसेन प्रथम और पौत्र द्रोणसिंह। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद वल्लभी एक स्वतंत्र राज्य हो गया।

14.7 सारांश

स्कन्दगुप्त के शासनकाल में गुप्त साम्राज्य अपने उत्कर्ष पर रहा. इसमें संदेह नहीं। वीर योद्धा और पराक्रमी तो वह था ही। पुष्यमित्रों और हूणों को परास्त कर उसने अपने कौशल और कठोरता का परिचय दिया और राजलक्ष्मी को स्थिर रखा। साम्राज्य–काल के गुप्तों में वह अंतिम नरेश था, इसलिए इस वंश के

इतिहास में उसके शासनकाल का बड़ा महत्त्व है। 467–68 ई० के प्रभाकर के मंदसोर–अभिलेख के आधार पर उसके शासन के अंतिम वर्ष में हूण–आक्रमण प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है। इस अभिलेख में स्कन्दगुप्त का नाम न होना पश्चिम मालवा व उसके अधिकार की समाप्ति का प्रमाण नहीं माना जा सकता है। उसके शासनकाल के अंतिम वर्षों के संबंध में तरह–तरह की आशंकाएँ उठाई जाती हैं, परंतु वे सब निराधार हैं। वह विक्रमादित्य, क्रमादित्य और क्षितिपशपति उपाधियों से विभूषित था। उसके बाद से ही गुप्तों का अवनति काल प्रारंभ होता है।

14.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जूनागढ़ अभिलेख के इतिहास के विषय में वर्णन कीजिये।

   .....

   .....

2. जूनागढ़ अभिलेख को किसने और कब बनवाया था? विभिन्न इतिहासकारों के द्वारा दिये गये मतों की विवेचना कीजिये।

   .....

   .....

3. जूनागढ़ अभिलेखके अनुसार स्कन्दगुप्त के जीवन पर प्रकाश डालिये।

   .....

   .....

14.9 संदर्भ ग्रन्थ

आयंगर, एस0. कृष्णास्वामी : स्टडीज इन गुप्ता हिस्ट्री

बनर्जी,आर.डी. : द ऐज ऑफ द इम्पीरियल गुप्ताज

ब्राउन, पर्सी : इंडियन ऑर्किटेक्चर (बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू)

डाण्डेकर, आर.एन. : ए हिस्ट्री ऑफ द गुप्ताज, 1941

मुखर्जी, आर.के. : द गुप्ता एम्पायर (1947)

शेमबावनेकर, के.एम. : द ग्लैमर एबाउट द गुप्ताज (बॉम्बे, 1953)

उपाध्याय, पी. : गुप्त साम्राज्य का इतिहास (हिन्दी)

इकाई 15–कुमारगुप्त प्रथम का मंदसौर अभिलेख एवं भानुगुप्त का एरण अभिलेख

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 कुमारगुप्त प्रथम का मंदसौर अभिलेख

15.3 भानुगुप्त का एरण अभिलेख

15.4 सारांश

15.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.6 संदर्भ ग्रन्थ

15.0 प्रस्तावना

मंदसौर अप्रशस्ति की रचना वत्सभट्टि ने की थी। यह एक वैयक्तिक लेख है, जिसे कुमारगुप्त द्वितीय के शासनकाल मैं रचा गया। ऐतिहासिक दृष्टि से यह अभिलेख महत्त्वपूर्ण है। इसमें कुमारगुप्तकालीन कई विशिष्ट घटनाओं का उल्लेख हुआ है। इसमें रेशम बनाने की श्रेणी का उल्लेख हुआ है, जिसने विलक्षण सूर्यमन्दिर का निर्माण करवाया। कालान्तर में इस मन्दिर के कुछ भाग नष्ट हो गये। फिर उसी पट्टवाय श्रेणी के सदस्यों ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार किया। मन्दिर का निर्माण मालव संवत् 493 (436 ई व मालव–संवत् 529 (472 ई.) में हुआ।

एरण मध्य प्रदेश के सागर जिले में विदिशा के निकट बेतवा नदी के किनारे विन्ध्याचल पर्वतमालाओं के उत्तर में एक पठार पर स्थित एक वैष्णव क्षेत्र है, जो मंदिरों की एक महान श्रंखला के रूप में जाना जाता है। इस स्थल पर चार सांस्कृतिक स्तर मिले हैं। प्रथम ताम्राश्मीय कालीन, द्वितीय लौहयुगीन तथा अन्य दो परवर्ती हैं। यहाँ से पंचमार्क सिक्कों के भारी भण्डार मिले हैं।

यहाँ से गुप्तकाल के अनेक अभिलेख प्राप्त हुये हैं। एरण से एक अभिलेख प्राप्त हुआ है, जो 510 ई. का है। इसे 'भानुगुप्त का अभिलेख' कहते हैं। अनुमान है कि भानुगुप्त राजवंश से सम्बन्धित था। यह लेख महाराज भानुगुप्त के अमात्य

गोपराज के विषय में जो उस स्थान पर भानुगुप्त के साथ सम्भवतः किसी युद्ध में आया था और वीरगति को प्राप्त हुआ था। गोपराज की पत्नी यहाँ सती हो गई थी। इस अभिलेख को एरण का 'सती अभिलेख' भी कहा जाता है।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको मंदसौर एवं एरणअभिलेखों के इतिहास तथा कुमारगुप्त एवं भानुगप्त के शासनकाल से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

15.2 कुमारगुप्त का मंदसौर अभिलेख

यह लेख मन्दसौर (मध्य प्रदेश) नगर में नदी के बायें किनारे स्थित महादेव घाट की सीढ़ियों पर लगे एक शिला–फलक पर अंकित मिला था। इसे १८८५ में पीटर पेटर्सन ने प्रकाशित किया था किंतु इसे ढूँढनिकालने का श्रेय फ्लीट के एक लिपिक को दिया जाता है जिसे उन्होंने वहाँ यशोधर्मन के अभिलेख की प्रतिलिपि करने के लिए भेजा था। तब फ्लीट ने इसे सम्पादन कर प्रकाशित किया है। तदन्तर उनके पाठ अनुवाद एवं व्याख्या सम्बन्धी भूलों को लेकर अनेक लेख प्रकाशित हुए हैं।

इस लेख में दशपुर (मन्दसोर) में रेशम के बुनकरों की श्रेणी द्वारा सूर्य–मन्दिर के निर्माण और पुनरुद्धार का वर्णन काव्य के रूप में किया गया है। इस काव्य की रचना वत्सभट्टि नामक कवि ने की थी, इस कारण अनेक विद्वानों ने इसका परिचय वत्सभट्टि काव्य अथवा प्रशस्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि ने अपने इस काव्य को पूर्वा नाम दिया है। फ्लीट ने पूर्वा का अर्थ प्रशस्ति किया है और इसे प्रशस्ति के प्रस्तारांकित लेखों के लिए प्रयुक्त होनेवाला परम्परागतात्मक पारिभाषिक शब्द बताया है। किन्तु पूर्वा को किसी भी प्रकार प्रशास्ति का पर्याय नहीं कहा जा सकता। पूर्वा का सीधा–सादा अर्थ पूर्व– कथित अर्थात् इतिहास है। इस प्रकार काव्य के रूप में प्रस्तुत यह सूर्य–मन्दिर के निर्माण का इतिहास–वर्णन है।

वैदर्भी रीति का आश्रय लेकर कवि ने इस काव्य को प्रस्तुत किया है। किन्तु स्थान–स्थान पर इसमें गौड़ी–बन्ध भी सन्निविष्ट है, इसमें लम्बे समासों का प्रयोग हुआ है। ३३वीं श्लोक तो समूचा समायुक्तवाक्य है। ४४ श्लोकों के इस काव्य में कम–से–कम १२ छन्दों का प्रयोग कर कवि ने अपना काव्य–कौशल प्रदर्शित किया है। छन्दों की यह विविधता काव्य को जहाँ रोचकता प्रदान करती है, वहीं उसमें काव्य की दुर्बलता भी निहित दिखायी पड़ती है। बार–बार के छन्द–परिवर्तन से लयगति निर्बल हो गयी है और छन्द–सौन्दर्य पूरी तरह उभर न सका है। छन्द की तरह अलंकारों के प्रयोग में भी विविधता है। कवि ने शब्द और अर्थ दोनों प्रकार के

अलंकारों का प्रयोग किया है।

काव्य के रूप में संस्कृत–साहित्य में इस रचना का महत्व जो भी हो, गुप्तकालीन इतिहास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इसे पूर्वा में कहा गया है कि मालव संवत् ४६३ पौष शुक्ल त्रयोदशी को, जिन दिनों पृथिवी पर कुमारगुप्त का शासन था इस सूर्य मन्दिर का निर्माण हुआ था। तदनन्तर कुछ दिनों (३६ वर्ष) बाद इस मन्दिर का कुछ भाग गिर गया तब उसका पुनर्निर्माण (मालव) संवत् 529 की फाल्गुन शुक्ल द्वितीया को किया गया।

पुनर्निर्माण की तिथि के साथ उसके न तो मालव संवत् होने का उल्लेख है और न तत्कालीन नरेश की चर्चा। साथ ही इतने विशाल मन्दिर का ३६ वर्ष के भीतर गिर जाना के० राम पिसरौटी को अविश्वसनीय जान पड़ा इसलिए उनकी उन्होंने अपना यह मत प्रकट किया है कि यह मन्दिर निर्माण के 529 वर्ष बाद अर्थात् 453+529=१०२२ मालव संवत् (966 ई०) ध्वस्त हुआ और पुनर्निर्मित किया गया। अपनी इस धारणा के पक्ष में उन्होंने जो तर्क प्रस्तुत किये हैं, उनके विवेचन में जाने की आवश्यकता नहीं है। सीधी सी बात तो यह है कि किसी भी प्रबुद्ध जन के गले यह बात नहीं उतरेगी कि अभिलेख की लिपि दसवीं शर्ती ई० की है। दूसरी बात यह कि मन्दिर का पुनर्निर्माण निर्माण करानेवाली श्रेणी ने ही कराया था। यह श्लोक 29, 37 और 44 से स्पष्ट है। यह कल्पनातीत है कि कोई श्रेणी मालव संवत् 493 से 1023 तक (529 वर्ष तक) बनी रही। इस प्रकार पिसरौटी की कल्पना स्वतः निरर्थक और हास्यास्पद है। स्वीकार यही करना होगा कि मन्दिर केपुनर्निर्माण की आवश्यकता केवल 36 वर्ष बाद ही मालव संवत् 529 में ही हुई थी और तभी उसका पुनर्निर्माण हुआ था।

इस सम्बन्ध में अभिलेख में जो कुछ कहा गया है, उसका फ्लीट ने इस प्रकार अनुवाद प्रस्तुत किया है –अन्य राजाओं के काल में बहुत दिन बीत जाने पर मन्दिर का कुछ भाग गिर गया। निर्माण और पुनर्निर्माण के बीच के 36 वर्ष के छोटे से अन्तराल को बहुत दिन कहने जैसी अत्युक्ति कदापि कोई कवि नहीं करेगा और न इस अवधि के बीच अनेक राजाओं के होने की कल्पना की जा सकती हैं। स्पष्टतः फ्लीट का यह अनुवाद किसी भी रूप में बुद्धिगम्य नहीं कहा जा सकता। अतः दशरथ शर्मा ने इस अनुवाद के दोषों की ओर इंगित करते हुए उन्होंने अनुवाद किया है – ''बहुत दिन बीत जाने पर दूसरे राजाओं द्वारा इस भवन का एक भाग नष्ट कर दिया गया और इस प्रसंग में उन्होंने मध्य भारत पर हूणों के आक्रमण की कल्पना की है। किन्तु हूणों द्वारा मन्दिर के ध्वस्त करने की कल्पना नहीं की जा सकती। वे भारत के भीतरी भाग में बुधगुप्त के काल अर्थात् गुप्त संवत् 175 (493 ई०) के बाद ही प्रविष्ट हुए थे अतः यहाँ अभिप्राय उनसे कदापि

नहीं हो सकता। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो अभिलेख में कहीं भी कुछ ऐसा नहीं है जिससे किसी शासक द्वारा, वे हूण हों, किदार कुषांण हों या कोई अन्य मन्दिर के ध्वस्त किये जाने की कल्पना उभरती हो यहाँ व्यशीर्यते शब्द ध्यातव्य है। आप्टे के कोश के अनुसार विश्रि का अर्थ टुकड़े–टुकड़े होना अथवा बिखर जाना होता है। तदनुसार व्यशीर्यते इसका तात्पर्य ध्वस्त की अपेक्षा टुकड़े ही होगा। इस दृष्टि से यह सहज अनुमान किया जा सकता है कि बिजली गिरने या किसी ऐसी ही दैवी आपदा से ही मन्दिर का एक भाग छिन्न–भिन्न हो गया होगा, तभी उसी श्रेणी के लोगों ने, जिन्होंने उसका निर्माण कराया था.. पुनर्निर्माण कराया होगा। अस्तु, सूर्य मन्दिर का निर्माण मालव संवत् 493 के पौष शुक्ल त्रयोदशी को (जिन दिनों कुमारगुप्त शासक था,) और पुनर्निर्माण (मालव) संवत् 529 के फाल्गुन शुक्ल द्वितीया को किया गया। इसमें कुमारगुप्त के पृथिवी पर शासन करने का उल्लेख 23वें श्लोक में और उक्त दोनों तिथियों का उल्लेख क्रमशः 34वें और 36वें श्लोक में हुआ है। इस आधार पर समझा जाता है कि ये दोनों ही घटनाएँ कुमारगुप्त के शासन काल में घटीं। इस लेख में उल्लिखित कुमारगुप्त गुप्त वंशीय सम्राट् था, ऐसा सभी विद्वानों का अनुमान रहा है। फ्लीट के समय तक गुप्त वंश में केवल एक ही कुमारगुप्त (कुमारगुप्त प्रथम) ज्ञात था अतः यह अनुमान कर उन्होंने लेख में अंकित मालव संवत् को आधार मानकर गुप्त–संवत् का आरम्भ निश्चित करने का प्रयास किया था। उस समय इस दृष्टि से इस लेख का विशेष महत्त्व था।

आज हमें अभिलेखों और सिक्कों से गुप्तवंश में कुमारगुप्त नाम के तीन शासक होने की बात ज्ञात है। अतः लेख में जो भी सूचनाएँ उपलब्ध हैं, मात्र उनके आधार पर अभिलेख में उल्लिखित कुमारगुप्त इनमें से कौन है निश्चय नहीं किया जा सकता। किन्तु, यह एक प्रकार से निश्चित हो गया है कि गुप्त–संवत् का आरम्भ 319 ई० में हुआ था। अतः इस लेख में अंकित मालव–संवत् 493 और 529 का आकलन गुप्त–संवत् में क्रमशः 116 और 152 के रूप में किया जा सकता है। उपलब्ध जानकारी के अनुसार कुमारगुप्त (प्रथम) का शासन काल गुप्त संवत् 93 (बिलसड़ अभिलेख) और 129 (मानकुँवर बुद्धमूर्ति लेख) के बीच ही सीमित है। अतः कहना होगा कि सूर्य मन्दिर के निर्माण के समय मालव संवत् 493 में कुमारगुप्त (प्रथम) का शासन था। मन्दिर का पुनर्निर्माण उसके शासन काल में नहीं हुआ। पुनर्निर्माण–कालीन शासक के नाम का उल्लेख कवि ने नहीं किया है। अतः कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इस समय भी कुमारगुप्त नामक शासक का ही शासन था, इसलिए कवि ने शासक का दुबारा नामोल्लेख की आवश्यकता नहीं समझी। उनके इस अनुमान को इस बात से बल मिलता है कि कुमारगुप्त नाम के एक दूसरे शासक का ज्ञान सारनाथ से प्राप्त एक बुद्ध मूर्ति के गुप्त–संवत् 154 के आसन–लेख से होता है। उसमें कहा गया है भूमिम् रक्षति कुमारगुप्त।

सहज भाव से कहा जा सकता है कि इसी दूसरे कुमारगुप्त के शासन काल में सूर्य–मन्दिर का पुनर्निर्माण हुआ होगा। स्कन्दगुप्त के शासन की अन्तिम तिथि इन्दौर ताम्रलेख से गुप्त–संवत् 146 ज्ञात होती है। अतः उसके बाद किसी समय भी कुमारगुप्त (द्वितीय) के शासनारूढ़ होने की सम्भावना का अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार इस अभिलेख से कुमारगुप्त (द्वितीय) के लिए एक नयी तिथि का मिलता है, ऐसा कहा जा सकता है।

स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि देश के शासक को गोप्ता कहते थे। देश सम्भवतः गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत सबसे बड़ी इकाई को कहते थे। जूनागढ़ अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि समुचित शासन, लोकहित और साम्राज्य की समृद्धि गोप्ता का मुख्य दायित्व था। आन्तरिक शान्ति रखने के अतिरिक्त उसे बाह्य आक्रमणों के प्रति भी सजग रहना पड़ता था। कुमारगुप्त (प्रथम) के शासनकाल में दशपुर का गोप्ता विश्ववर्मा का पुत्र बन्धुवर्मा था, ऐसा इस अभिलेख में कहा गया है। मन्दसोर के क्षेत्र से चार अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनसे इस प्रदेश में वर्मन नामान्त स्थानीय वंश के शासकों का परिचय मिलता है। इस वंश के प्रथम दो शासक कृ जयवर्मन और उसके पुत्र सिंहवर्मन चतुर्थ शती ई० के उत्तरार्ध में इस प्रदेश के स्वतन्त्र शासक थे। तदन्तर सिंहवर्मन के पुत्र नरवर्मन के 404 ई० और उनके पुत्र विश्ववर्मन के 423 ई० में शासक रहने का परिचय मिलता है। इन दोनों के अभिलेखों में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे अनुमान किया जा सके कि वे किसी बड़े शासक के करद या सामन्त थे। पहली बार प्रस्तुत अभिलेख में विश्ववर्मा के पुत्र बन्धुवर्मा का उल्लेख कुमारगुप्त प्रथम के गोप्ता के रूप में हुआ है। इससे अनुमान होता है कि 423 और 436 ई० के बीच किसी समय कुमारगुप्त ने इन शासकों को अपने अधीन किया था और उन्हें ही अपनी ओर से उनके ही प्रदेश का गोप्ता नियुक्त कर दिया था।

पैंतीस वर्ष पश्चात् 471 ई० (मालव संवत् 529) में जब सूर्य–मन्दिर का पुनर्निर्माण हुआ उस समय दशपुर का गोप्ता कौन था इसका उल्लेख इस अभिलेख में नहीं है। किन्तु मन्दसोर से ही प्राप्त मालव संवत् 524 के एक अन्य लेख (अभिलेख 14) से ज्ञात होता है कि इस समय यहाँ का भूमिपति (सम्भवतःगोप्ता) प्रभाकर था। उसे यह पद बन्धुवर्मन के बाद ही मिला होगा। बहुत सम्भव है वह बन्धुवर्मन का उत्तराधिकारी एवं पुत्र रहा हो।

फ्लीट के अनुवाद से ऐसा ध्वनित होता है कि लाट देश से दशपुर आनेवाले लोग केवल रेशमी वस्त्र बुननेवाले बुनकर (तन्तुवाय) थे। दशपुर में बस जाने के बाद उन्होंने विविध व्यवसाय अपना लिया (पंक्ति 9)। इस आधार पर दिनेशचन्द्र सरकार ने यह अभिमत प्रकट किया है कि पश्चिमी भारत में जातियों का स्वरूप

रूढ़िबद्ध नहीं था। किन्तु पंक्ति में ऐसा कोई शब्द नहीं है जिससे प्रकट होता हो कि आनेवाले लोग केवल पट्टवाय थे। लाट से आनेवाले लोगों को मात्र शिल्पाः कहा गया है। अतः हमारी धारणा है कि लाट से आनेवाले लोगों में अनेक वर्ग के शिल्पी थे। उनमें एक वर्ग अथवा श्रेणि पट्टवायों की थी, जिनका उल्लेख पंक्ति 16 में हुआ है और जिन्होंने मंदिर निर्माण कराया।

इसी प्रकार पंक्ति में विविध व्यवसाय करनेवालों की जो चर्चा है, उसमें ऐसा कोई शब्द नहीं है, जिससे ध्वनित होता हो कि लाट विषय से आनेवाले शिल्पियों ने अपने व्यवसाय छोड़कर दूसरे व्यवसाय अपना लिये थे। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि कवि प्रवासी शिल्पियों के विविध व्यवसायों का परिचय दें रहा है या यह कह रहा है कि दशपुर में रहनेवाले विविध व्यवसाय करनेवाले लोग थे। अभिलेख में कहीं ऐसा कुछ नहीं है जिससे समाज के अस्थिर स्वरूप की किसी प्रकार की कोई कल्पना की जा सके।

15.3 भानुगुप्त का एरण अभिलेख

सागर (मध्य प्रदेश) जिला अन्तर्गत एरण से आध मील दक्षिण–पूर्व वीणा नदी के बायें तट पर स्थित एक स्तम्भ है, जिसका नीचे का भाग अनुपलब्ध है। शेष भाग लगभग 3 फुट 11 इंच लम्बा और डेढ़ फुट के घेरे में है। इसका निचला भाग अठपहल है। इस भाग के ऊपरी हिस्से के तीन पहलों पर यह लेख अंकित है। इस भाग के ऊपर स्तम्भ सोलह पहल है और फिर अठपहल। इस अठपहल भाग में स्त्री– पुरुषों के चित्र उकेरे गये हैं। अभिलेख के मध्यभाग के ठीक ऊपरवाले पहल में एक दम्पती का अंकन है। इस अठपहल के ऊपर स्तम्भ पुनः सोलह पहल और फिर अठपहल है। इस अठपहल भाग के दो पहलों पर चार पंक्तियों का एक अन्य लेख था जो अब अपाठ्य है। इसके ऊपर के भाग ने सोलह पहलों में मुड़कर गोलशीर्ष का रूप धारण कर लिया है। कालान्तर में लोगों ने इसे शिवलिंग का रूप दे दिया।

1874–75 अथवा 1876–77 ई० में कनिंगहम ने इसे ढूँढ निकाला था। अभिलेख को उन्होंने 1880 ई० में प्रकाशित किया। तदनन्तर फ्लीट ने इसका सम्पादन किया।

प्रस्तुत अभिलेख से ज्ञात होता है कि शरभराज का दौहित्र और सुलक्ख वंशीय माधव नामक राजा का पुत्र गोपराज था। उसके पितामह का नाम भी इस लेख में था पर वह अब अनुपलब्ध है। वह महाराज श्री भानुगुप्त के साथ किसी युद्ध में गया था, वहाँ वह मारा गया और उसकी पत्नी ने उसका अनुसरण करते हुए अग्नि में प्रवेश किया अर्थात् सती हो गयी। इस प्रकार यह एक सती–स्मारक

है और यह सती प्रथा की सूचना देनेवाला अद्यतम लेख हैं।

गोपराज मैत्रों के साथ युद्ध करते हुए मारा गया था। मैत्र नाम संदिग्ध होते. हुए भी भण्डारकर की दृष्टि में निश्चित साही है। ये मैत्र कौन थे यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। हो सकता है वे बलभी के मैत्रक के पूर्ववर्ती हो और वलभी प्रवास से पूर्व इस क्षेत्र में रहते रहे हो।

लेख से ज्ञात होता है कि गोपराज भानुगुप्त नामक किसी शासक के अधीन कोई सामन्त था। उसे जगति प्रवीरो राजा महान् पार्थसम अति शूर कहा गया है। लेख की तिथि के सम्बन्ध में अनुमान किया जाता है कि वह गुप्त संवत् का द्योतक है। इसके साथ ही भानुगुप्त नाम भी इस बात का संकेत प्रस्तुत करता है कि वह गुप्त वंश का ही कोई व्यक्ति था। किन्तु अभिलेख में जगत प्रवीर, पार्थ के समान शूर और राजा महान् (जो स्पष्टतः महाराज की ओर संकेत करता है) सदृश विरुद होते हुए भी लोग भानुगुप्त को गुप्त कुल के शासक के रूप में स्वीकार करने में कतराते रहे हैं। उसे वे मालवा का स्थानिक शासक ही कहते रहे हैं। सबसे पहले राधागोविन्द बसाक ने उसे गुप्त वंश के शासक के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने यह मत प्रतिपादन किया कि गुप्त संवत् 224 का दामोदरपुर का पाँचवाँ ताम्र–लेख (अभिलेख 57), जिसमें शासक का नाम अस्पष्ट है उसीके काल का है। किन्तु प्रस्तुत लेख और दामोदरपुर ताम्र–शासन के बीच 35 वर्ष का अन्तर है और इस काल के बीच कई अन्य गुप्त वंशीय शासकों के होने का परिचय मिलता हैय अतः उनकी यह पहचान कठिन ही नहीं, असम्भव भी है।

दिनेशचन्द्र सरकार भानुगुप्त को गुप्त वंशीय शासक होने की बात स्वीकार करते हैं। उनकी धारणा है कि इस समय तक गुप्त साम्राज्य का तीन खण्डों में विभाजन हो गया था। पूर्वी भाग (बंगाल) में वैन्यगुप्त का शासन, पश्चिमी भाग में भानुगुप्त का राज्य और मध्य भाग पर गुप्त वंश के किसी अन्य शाखा का अधिकार था। पूरुगुप्त के पुत्र के रूप में बुधगुप्त, वैन्यगुप्त और नरसिंहगुप्त के नाम शासकों के रूप मेंहमारे सामने नालन्द के विभिन्न मुद्रा लेखों से आये हैं। अतः कहा जा सकता था कि इन तीनों भाइयों ने राज्य का आपस में बँटवारा कर लिया होगा। किन्तु बुधगुप्त को हम न केवल साम्राज्य के पश्चिमी भाग (मध्य भारत), वरन् मध्य भाग (मथुरा) (अभिलेख 47) और पूर्वीभाग (बंगाल) (अभिलेख 45, 48) में शासक के रूप में पाते हैं। इसी प्रकार नरसिंहगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त (तृतीय) का धातु मुद्रा–लेख मितरी से प्राप्त हुआ है, जो किसी ताम्र शासन में लगा रहा होगा। वह इस बात का परिचायक है कि उसके समय तक राज्य का मध्य भाग उसके अधीन था। वैन्यगुप्त की मुहर की छाप नालन्द से मिली है, वह भी इसी बात का द्योतक है कि उसका मध्य भाग पर अधिकार रहा होगा। इस प्रकार बँटवारे जैसी कोई बात

सामने नहीं आती है। इस प्रकार दिनेशचन्द्र सरकार की धारणा का कोई औचित्य नहीं है।

भानुगुप्त का गुप्त वंश की वंश–परम्परा में क्या स्थान था यह किसी सूत्र से स्पष्ट नहीं है। अभिलेखों में उपलब्ध गुप्त–संवत् की तिथियों के आधार पर वह वैन्यगुप्त का परवर्ती ज्ञात होता है। अतः यह सहज कल्पना उभरती है कि वह वैन्यगुप्त का उत्तराधिकारी रहा होगा। इस रूप में वह कदाचित् उसका पुत्र था। किन्तु साधार प्रमाण के अभाव में सम्भावित अनुमान ही मानना उचित होगा।

15.4 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुमारगुप्त के मंदसोर अभिलेख और भानुगुप्त के एरण अभिलेख से हमें गुप्त साम्राज्य के विषय में बहुत अधिक जानकारी नहीं मिलती है। कुमारगुप्त के मंदसोर शिलालेख में वर्णित गिल्ड संगठन को तंतुवाया के नाम से जाना जाता था। यह शिलालेख हमें बताता है कि वह गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम का एक सामंत था। यह उसके शासनकाल के दौरान, मालवा संवत 493 (436 सीई) में दशापुरा में रेशम–बुनकरों के संघ द्वारा सूर्य को समर्पित एक मंदिर का निर्माण किया गया था। वहीं भानु गुप्त के एरण के अभिलेख से मिलता है, जिसमें किसी भोजराज नामक सेनापति की मृत्यु पर उसकी पत्नी के सती होने का उल्लेख है। 'एरण' जो कि मध्य प्रदेश के सागर जिले में विदिशा के निकट बेतवा नदी के किनारे स्थित है। वहाँ से एक अभिलेख प्राप्त हुआ है, जो 510 ई. का है। इसे भानुगुप्त का अभिलेख कहते हैं।

15.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एरण के अभिलेख के इतिहास के विषय में वर्णन कीजिये। एरण अभिलेख से क्या जानकारी मिलती है?

   .....

   .....

2. कुमारगुप्त के मंदसौर अभिलेख का लेखक कौन था तथा इस अभिलेख में किसका उल्लेख है?

   .....

3. मंदसौर अभिलेखका दूसरा नाम क्या है?

   .....

15.6 संदर्भ ग्रन्थ

ए0 शामशास्त्री : एन्युएल रिपोर्ट, माइसोर आर्क्यालाजिकल डिपार्टमेंट 1923 पृ0 24।

डी0एन0 मुखर्जी .इण्डियन कल्चर, 5, पृ0 331

दशरथ शर्मा .इण्डियन कल्चर, 3, पृ0 379

आर0एन0 शास्त्री : इण्डियन कल्चर, 4, पृ0 361

कनिंगहम : आर्क्यालाजिकल सर्वे रिपोर्ट, 10, पृ0 89

दिनेशचन्द्र सरकार .सेलेक्ट इन्सकृप्शन्स, पृ0 345–346

भण्डारकर : इन्सकृप्शन्स आफ द अर्ली गुप्त किंग्स

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

प्रयागराज

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333